इकाई 1- पद्य साहित्य की सैद्धांतिकी

इकाई की रूपरेखा

1.1 **प्रस्तावना**
1.2 **उद्देश्य**
1.3 **पद्य/कविता क्या है**
1.3.1 **गद्य और पद्य का अन्तर**
1.3.2 **कविता की परिभाषाएँ**
1.4 **प्राचीन और नयी कविता की सैद्धान्तिकी**
1.4.1 **प्राचीन कविता की सैद्धान्तिक**
1.4.2 **नवीन कविता का सैद्धान्तिक**
1.5 **प्राचीन कविता का काव्यरूप और सामाज**
1.6 **नयी कविता का काव्य रूप और समाज**
1.7 **कविता के ढलने की प्रक्रिया**
1.8 **सारांश/मूल्यांकन**
1.9 **शब्दावली**
1.10 **अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**
1.11 **संदर्भ ग्रन्थ सूची**
1.12 **सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री**
1.13 **निबन्धात्मक प्रश्न**

1.1 प्रस्तावना

पद्य साहित्य की सैद्धान्तिकी का प्रश्न साहित्य का मूल प्रश्न है। पद्य और गद्य का विभाजन क्रमशः हमारे साहित्यशास्त्रियों ने कर दिया, लेकिन प्राचीन काल में साहित्य मात्र को पद्य की कहा जाता था। अतः इस दृष्टि से पद्य अथवा कविता साहित्य की सर्वाधिक प्राचीन विधा है। कविता की परिभाषा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'मुक्तावस्था' कहा है मुक्तावस्था का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी ने 'मनुष्य को लोक सामान्य की भाव भूमि पर पहुँचना' बताया है। यानी कविता के माध्यम से हम अपने को जानने का सूत्र पाते हैं। कविता बाहरी आवरणों के भेदकर मनुष्य को उसके मूल तक पहुँचाने का कार्य करती है। कविता की भाषा बिम्ब बहुला एवं सघन भाषा होती है। इसीलिए गद्य की स्थूलता एवं तथ्यात्मकता से कविता अपने को अलग कर लेती है। गद्य को विचार की भाषा कहा गया है और कविता को संवेदना-अनुभूति की...अपनी प्रमुखता में कविता का काम हमारी संवेदना को ही जाग्रत करना होता है। संवेदना जाग्रत कर कविता हमें मनुष्य बनाने का काम करती है। मनुष्य बनाने की यह प्रक्रिया बहुत ही सूक्ष्म स्तर पर घटित होती है या कहें कि उसकी प्रक्रिया बहुत ही सूक्ष्म होती है। इस सूक्ष्म प्रक्रिया के लिए कल्पना, बिम्ब, प्रतीक, वक्रोक्ति जैस तत्वों का कविता में प्रयोग होता है। गद्य की भाषा की अपेक्षा कविता की भाषा इसीलिए ज्यादा कल्पनात्मक हाती है। ज्यादा कल्पनात्मक, इसीलिए ज्यादा सृजनात्मक कविता में विस्तारित करने की क्षमता गद्य की अपेक्षा ज्यादा शीघ्रता से होता है। सामाजिक गति की प्रक्रिया को कविता ज्यादा तेजी से पकड़ती है, इसीलिए कविता में हर मोड़ की सूचना हमे मिल जाती है। प्राचीन काल की कविता के तेवर और नवीन कविता के तेवर में इसीलिए स्पष्ट रूप से हमें पार्थक्य देखने को मिलता है।

1.2 उद्देश्य

यह इकाई पद्य साहित्य की सैद्धान्तिकी पर केन्द्रित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- कविता क्या है ? इसे समझ सकेंगे।
- कविता के भारतीय एवं पाश्चात्य परिभाषाओं से परिचत हो सकेंगे
- प्राचीन और नयी कविता के सैद्धान्तिक भेद को जान सकेंगे।
- प्राचीन और नयी कविता के काव्य रूपों से परिचित हो सकेंगे।
- कविता की रचना प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- कविता की काव्यानुभूति एवं रसानुभूति की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- कविता के समाजशास्त्र को समझ सकेंगे।

1.3 पद्य / कविता क्या है?

कविता या पद्य को समझने के लिए इसकी मूल संरचना इसके कार्य और इसके समाजिक गतिशीलता से अंतर्सम्बन्ध को समझना आवश्यक है। अगर कविता गतिशील कर्म है तो जाहिर है कि इसकी परिभाषा हो या इसकी संरचना यह भी लगातार बदलती रहेगी। ऐसी स्थिति में कविता क्या है? इसे पूरी तरह बता देना संभव नहीं है और न पूरी तरह एक बार में समझ लेना यह जरूर है कि हम कविता को जानने की दिशा में थोड़ा आगे बढ़ जाते हैं और यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है।

1.3.1 पद्य और गद्य में अन्तर

गद्य और पद्य का विभाजन साहित्य के प्रारम्भ से ही हो गया था, लेकिन यह विभाजन रेखा इतनी स्थूल नहीं है कि इसे आसानी से स्पष्ट किया जा सके। गद्य और पद्य के इस आवाजाही को स्पष्ट करने के लिए 'चम्पू काव्य' की एक

नई श्रेणी विकसित की गई। 'चम्पू काव्य' गद्य -पद्य की मिश्रित विधा का नाम है। गद्य और पद्य के विभाजन को स्पष्ट करने के प्राथमिक उपकरण क्या हैं? यह प्रश्न उठाया जा सकता है। गद्य और पद्य के विभाजन का प्राथमिक आधार तय करते हुए छन्द संबंधी मान्यता को आधार बनाया गया है। कविता या पद्य के लिए छन्द संबंधी मान्यता को आधार बनाया गया है। अक्षर या वर्ण के निश्चित अनुपात को छन्द कहा गया है। इस दृष्टि से वर्णों की मात्रा के आधार पर दोहा, सोरठा, पद, कुण्डलिया, सवैया, हरिगीतिका जैसे कई छन्द प्रचलित हुए। पद्य के लिए छन्द की अनिवार्यता है जबकि गद्य इससे मुक्त है। आधुनिक काल में आकर मुक्त छन्द संबंधी अवधारणा प्रचलन में आई। वाल्ट व्हीटमैन इसके आरम्भिक प्रयोक्ता हैं। हिन्दी में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने मुक्त छन्द पर बल दिया। मुक्त छन्द में कविता लिखने का कारण यह था कि मुक्त छंद के प्रयोक्ता कवि चाहते थे कविता का भाव-विस्तार हो कविता भाव की संकीर्ण धारा से मुक्त होकर सामान्य जन-जीवन तक भी पहुँचे। मुक्त छन्द से कविता को हानि भी हुई। कुछ लोग कम परिश्रम और तुकबंदी करके कविता करने लगे। तो कह सकते हैं कि आधुनिक कविता में छन्द की अनिवार्यता उस रूप में वैसी नहीं है जैसी प्राचीन कविता में है। लेकिन यहाँ हमें एक बात स्मरण रखनी चाहिए **'मुक्त छन्द'** का तात्पर्य छन्दहीन कविता से नहीं है अपितु इसका तात्पर्य छन्द की जटिलता की मुक्ति से है। तो फिर गद्य और पद्य में क्या अन्तर है? गद्य और पद्य के विभाजन का दूसरा आधार क्रिया-रूपों के आधार पर तय किया गया है।अर्थात् गद्य के लिए जहाँ विराम चिह्न अनिवार्य है वहीं पद्य में विराम चिह्न नहीं होते हैं। (हांलाकि नई कविता में विराम चिह्नों का प्रयोग बहुतायत हुआ है) पद्य में विराम चिह्न की जगह पंक्ति परिवर्तन का प्रचलन है । जैसे अज्ञेय की कविता पंक्ति देखें- 'हम नदी के द्वीप हैं हम धारा नहीं हैं' इस पंक्ति में विराम चिह्न नहीं है, हालाँकि क्रिया-रूप वर्तमान है। इसी पंक्ति को यदि ऐसे लिखें- 'हम नदी के द्वीप हैं।' तो वह गद्य में परिवर्तित हो जायेगा। इसलिए कहा गया है कि पद्य और गद्य में अन्तर का बहुत बड़ा कारण विराम चिह्न है। गद्य और पद्य में अन्तर का तीसरा आधारभूत कारण 'लय' है। लय कविता में एक सुर में, एक टोन में, संगीतात्मक आरोह-अवरोह के मध्य में विकसित होती है। गद्य में लय की अनिवार्यत नहीं है। हालाँकि गद्य भी लय में लिखे जाते हैं। अज्ञेय का गद्य कई बार लयात्मक रूप धारण कर लेता है। हिन्दी में रघुवीर सिंह के गद्य को **'गद्यगीत'** कहा गया है। इस संबंध में यह भी कहा गया है कि कविता में छंद उतने अनिवार्य नहीं है जितने कि लय। अर्थात् बिना लय के कविता संभव नहीं है। गद्य और पद्य के अन्तर को तुक के संबंध में रखकर भी देखा गया है। कविता के संदर्भ में यह भी कहा गया है कि वह विशिष्ट शब्दों का विशेष क्रम से किया गया चयन है । जैसा कि **Prose** का उद्गम **Prosiac** को माना जाता है जिसका अर्थ नीरस होता है। इस दृष्टि से गद्य का काम सूचना को नवीनतम करना या उस पर बातचीत करना माना है, जबकि कविता का काम भाषा को संगीतात्मक ढंग से प्रस्तुत करना। जैसा कि कार्लाइल ने भी लिखा है- **"Poetry is a musical thought"** यही कारण है कि कविता की भाषा अलंकृत, ज्यादा सौन्दर्यवान, ज्यादा लयात्मक एवं ज्यादा मधुर होती है। गद्य और पद्य के अन्तर का एक कारण यह है कि गद्य और जहाँ व्याकरण के नियम पूरी तरह लागू होते हैं, वहीं पद्य इस बन्धन से थोडा़ छूट ले लेती है। कविता में कई बार ज्यादा लय प्रदान करने के लिए, पंक्ति को ज्यादा अर्थवान बनाने के लिए या किसी शब्द पर विशेष बल देने के लिए व्याकरण के नियम का पूरी तरह पालन नहीं होता। गद्य में जहाँ यह अक्षम्य है। जैसे निराला के 'राम की शक्तिपूजा' कविता की यह पंक्ति देखें, ''है अमानिशा उगलता गगन घन अधंकार''। इस पंक्ति में क्रिया पर बल देने के लिए 'है' यानी क्रिया का पंक्ति के प्रारम्भ में प्रयोग किया गया है, जो व्याकरण की दृष्टि से तो गलत है लेकिन पंक्ति को अर्थवानल बनाने के लिए यह आवश्यक है। गद्य और पद्य के अन्तर का एक कारण यह भी है, कि कविता की भाषा ज्यादा सृजनात्मक है। कम शब्दों में ज्यादा भाव ग्रहण कराने की क्षमता कविता की निजी विशेषता है। इसके विपरीत गद्य में अर्थ को, भाव को फैलाकर कहना पड़ता ह। एक जीवन-सूत्र को समझाने के लिए गद्यकार को सामाजिक जीवन की परिस्थितियों एवं घटनाओं के जाल को बुनना पड़ता है। कह सकते हैं कि पद्य जीवन में भाव की पुनर्रचता है तो गद्य सामाजिक जीवन की जटिलता को

विश्लेषित करने का बौद्धिक प्रयास। इस संदर्भ में आइए अब हम इस प्रश्न पर विचार करें कि गद्य और पद्य के रूप ग्रहण करने का बुनियादी आधार क्या है? गद्य को विचार से जोड़ा गया है और पद्य को भाव से। गद्य इसीलिए रूककर, ठहरकर लिखा जाता है, उसमें शुष्कता होती है, जबकि पद्य में विराम नहीं होता, लय होती है, संगीत होता है, इसीलिए कविता में तन्मय करने की क्षमता, भावोद्रेक की क्षमता पद्य की अपेक्षा ज्यादा तीव्र होती है। इसीलिए सारे दर्शन, विज्ञान, गणित इत्यादि का रूप गद्यात्मक होता है, जबकि पद्य में भाव के उद्रेक पर विशेष बल होता है।

1.3.2 कविता की परिभाषाएँ

साहित्य एवं कविता को परिभाषित करने का कार्य शताब्दियों से चला आ रहा है, जो अब भी जारी है। लेकिन अभी तक इसे पूर्णरूपेण परिभाषित नहीं किया जा सका है। कारण यह कि मनुष्य की अनुभूति के असंख्य रूप हैं। जितने मनुष्य, उतनी अनुभूति। जितने लेखक-पाठक उतनी अनुभूति। हालाँकि परिभाषाओं का काम अनुभूतियों को संयोजित करना होता है, फिर भी सारी अनुभूतियों को एक परिभाषा में संयांजित करना कठिन जान पड़ता है। इसीलिए परिभाषा को एक लेखक की ही अनुभूति के रूप में स्वीकार किया गया है।

भारतीय परिभाषाएँ

साहित्य या कविता की जो सर्वाधिक प्राचीन परिभाषा मिलती है, वह है भामह की 'शब्दार्थ सहितौ काव्यम्'। यह परिभाषा शब्द और अर्थ के माध्यम से साहित्य और समाज के अंतर्सम्बन्धों पर विचार किया गया है। इसी प्रकार मम्मट की परिभाषा'तदोषों शब्दार्थौं सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि' में गुण युक्त एवं दोष मुक्त काव्य की ओर संकेत किया गया है। इस परिभाषा में ध्वनि की ओर संकेत किया गया है। आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा- ''वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्'' कहकर कविता का कार्य रस की उत्पत्ति करना मान है। आगे चलकर पंडितराज जगन्नाथ ने 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'' कहकर कविता का कार्य सौन्दर्य की वृद्धि करना माना। प्राचीन काव्यशास्त्र में काव्य की ये चार परिभाषएँ स्पष्ट, प्रचलित और प्रसिद्ध रही है। लेकिन क्या काव्य में वक्रोक्ति, रीति ध्वनि एवं औचित्य को मुख्य मानने वाले दर्शन में भी क्या कविता की परिभाषा का दर्शन नहीं है? वस्तुतः प्राचीन कविता की परिभाषा में कविता के सामाजिक, सौन्दर्यशास्त्रीय एवं साहित्यिक तत्वों को संयोजित करने पर बल दिया गया है। क्रमशः साहित्य के भेद स्पष्ट होने लगे। गद्य और पद्य के भेद स्पष्ट होने लगे और आलोचक कविता की परिभाषा की ओर मुड़े। आधुनिक काल में कविता की जो परिभाषाएँ हुईं, उनमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परिभाषा विशेष रूप से चर्चित रही। आचार्य शुक्ल ने कविता की परिभाषा देते हुए लिखा है - '' आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है तथा हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की मुक्ति के लिए मनुष्य की वाणी जो विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं।'' शुक्ल जी की इस परिभाषा में 'मुक्तावस्था' शब्द ध्यातव्य है। मनुष्य का जीवन परस्पर राग-द्वेष, स्वार्थ इत्यादि मनोभावों के संकुचित घेरे में विचरण करता रहता है। कविता इन सारे घेरे को तोड़कर मनुष्य को उसके मूल स्वरूप से परिचित कराती है। शुक्ल जी के ही शब्दों में' लोक सामान्य की भावभूमि पर ले जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के ही समकालीन जयशंकर प्रसाद ने कविता को' आत्मा की संकलपनात्मक अनुभूति' कहा है। यानी कविता का कार्य आत्मा का परिष्कार करना है। सुमित्रानंदन पंत ने कविता को 'परिपूर्ण छणों की वाणी' कहा है। यह कविता की व्यापाक परिभाषा है। प्रश्न यह है कि मनुष्य के परिपूर्ण छण कौन से होते हैं? जब हम सारे ब्राह्य बंधानों से मुक्त होकर मनुष्यता के प्रकाश से प्रकाशित हो जाते हैं, तब वह क्षण हमारे लिए परिपूर्ण झण कहा जा सकता है। इसी प्रकार मुक्तिबोध के कविता को 'जन चरित्री; कहा है। धूमिल ने उसी प्रकार कविता को आम आदमी की चीत्कार कहा है।

पाश्चात्य परिभाषा

भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा की तरह ही पश्चिम में भी कविता को परिभाषित करने का प्रयास होता रहा है। यहाँ हम पश्चिमी आचार्यों के मतों को कविता के संदर्भ में देखेंगे व उनको विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे। कॉल सानबैग ने कविता की परिभाषित करते हुए लिखा है**‘- ‘‘Poetry is the search of Syllables to Short at the barriers of the unknown adn th unknowable’’**

इसी प्रकार वड्सवर्थ की प्रसिद्ध परिभाषा देखें -

‘‘Poetry is the Spiontaneous ovesflow’’

मैथ्यूं आर्बल्ड की प्रसिद्ध परिभाषा देखें-

‘‘Poetry is a at bottom, a Critisim of life’’

इसी प्रकार शैली की परिभाषा देखें-

‘‘Poetry is a record of the best and happiest moments of the hapisest and best mind’’

कार्लाइल ने कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है - **‘‘Poetry is a musical thought’’**

अभ्यास प्रश्न **1**

(क)- रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. कविता को मुक्तिबोध ने .....कहा है। (मुक्तावस्था/जनचरित्री/परिपूर्ण छण)
2. रामचन्द्र शुक्ल ने कविता को.....कहा है। (संकल्पनात्मक अनुभूति/मुक्तावस्था/रमणीय।)
3. विश्वनाथ ने कविता को ..... माना है। (ध्वनियुक्त/ रसयुक्त/वक्रोक्तिपूर्ण)
4. पंडितराज जगन्नाथ ने कविता को ..... माना है। (रमणीय/रसयुक्त/ ध्वनियुक्त)
5. कविता की सबसे प्राचीन परिभाषा.....की है। (भामह / भारत/मम्मट)।

(ख) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. गद्य-पद्य मिश्रित विधा को चम्पू काव्य कहा गया है।
2. मुक्त छन्द का आरम्भिक प्रयोक्ता वाल्ट हिटमैन है।
3. ‘नदी के द्वीप’ कविता अज्ञेय की है।
4. कविता को संगीतमय विचार- कार्लाइल ने कहा है।
5. ‘शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्’ परिभाषा भामह की है।

2 - टिप्पणी कीजिए।

1.गद्य-पद्य में अन्तर **?**

.....

.....

.....
.....
.....
.....
.....

2. कविता की परिभाषा **?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

1.4 पुरानी और नयी कविता की सैद्धान्तिकी

साहित्य के विकासक्रम में साहित्य के सिद्धान्त एवं उसके साहित्य रूप भी बदलते जाते हैं। ऐसी स्थिति में कविता के मूल्यांकन के औजार भी बदल जाते हैं। हर युग का समाज अपनी आन्तरिक व बाह्य संरचना में पिछले समाज के मुकाबले कुछ भिन्नता लिए हुए होता है। स्वाभाविक है कि साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन हो जाता है । ऐसी स्थिति में पुरानी और नयी कविता की सैद्धान्तिकी में अन्तर आ जाता है।

1.4.1 प्राचीन कविता की सैद्धान्तिकी-

प्राचीन कविता के सिद्धान्त को समझने के लिए हमे प्राचीन समाज के आन्तरिक संगठन को भी समझना होगा। प्राचीन समाज की आधारभूत आदर्शपूर्ण जीवन, संघटित व्यक्तित्व एवं आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि हुआ करती थी। इस दृष्टि से कविता के सिद्धान्त भी तय किये जाते थे । इस प्रकार के उदात्त जीवन मूल्य केवल भारतीय समाज में ही नहीं थे, वरन् किसी भी प्राचीन संस्कृति में देखने को मिलते हैं। यूनानी संस्कृति में प्लेटो का 'आदर्श राज्य' इसी प्रकार की परिकल्पना है, जिस समाज में ऐसे साहित्य को प्रश्रय दिया जाता था जो जनता के भीतर उदात्त जीवन मूल्य का निर्माण कर सकें । अरस्तु का विरेचन सिद्धान्त इसी प्रकार का नैतिक सिद्धान्त है जिसमें मनुष्य के अपस्कृत, अस्वरूप विचारो से मुक्त कर उसे सृजनात्मक दिशा प्रदान करनी थी। एक बडा़ आदर्श एक निश्चित रूप रचना के बिना असम्भव होता है। प्राचीन कविता के सिद्धान्तकारस यह मानते थे कि बडी़ कविता बिना बड़े प्लॉट (विषयवस्तु) के संभव नहीं है। इसीलिए प्राचीन कविता में सर्वाधिक महत्व एवं प्रचलन 'महाकाव्य' विधा का रहा हें 'महाकाव्य' विधा की सैद्धान्तिकी देते हुए लिखा गया है कि रचना बडी़ हो, नायक कुलीन हो (राजा हो), रस एवं छन्द का ध्यान रखा जाये एंव किसी महत्व उद्देश्य का वर्णन हो । स्पष्ट है कि ऐसे सिद्धान्त की रचना को काम्य थे जो उदात्त जीवन मूल्य का निर्माण कर सकें । काव्य का प्रयोजन बताते हुए आचार्य मम्मट ने लिखा है-'' 'काव्यंयशसेर्थकृतेव्यवहारविदेशिवेतरक्षतयेसद्यःपरिनिर्वृतयेकान्तासम्मितयोपदेशयुजे'' अर्थात् काव्य से हमे अर्थ, यश, व्यवहारज्ञान, अशिव विचार से मुक्ति, तीव्र भावोद्रेक एवं मधुर उपदेश की प्राप्ति होती है । इस परिभाषा में अशिव विचार से मुक्ति एवं मधुर उपदेश महत्वपूर्ण है। सम्पूर्ण भारतीय साहित्यशास्त्र में एवं साहित्य में नैतिकता का प्रश्न, आनन्द का प्रश्न, आस्वादन का प्रश्न मुख्य रहा है ।

1.4.2 नवीन कविता की सैद्धान्तिकी-

नयी कविता का स्परूप एवं सैद्धान्तिकी प्राचीन कविता से भिन्न रूप लिए हुए है। प्रश्न यह है कि आधुनिक कविता की सैद्धान्तिकी या सौन्दर्यबोध क्या है? जैसा कि पूर्व में आपने पढा़ कि प्राचीन कविता अपने मूल रूप में आदर्शात्मक कविता थी, इसीलिए उसकी सैद्धान्तिकी पर भी इसक प्रभाव पडा़ । आधुनिक कालीन परिस्थितियों में प्राचीन काव्य मूल्य ढह से गये, फलतः बदली हुई परिस्थितियों में नये काव्य मूल्य या सैद्धान्तिकी विकसित हुए । आधुनिक कविता की सैद्धान्तिकी के मूल में बदली हुई परिस्थितियों के अलावा सृजनशील मानव की संवेदना, नवजागरण, वैाज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप विकसित नवीन चिन्तन -मूल्य ने नयी कविता की सैद्धान्तिकी गढ़ने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया । इस दृष्टि से देखें तो आधुनिक कविता से सिद्धान्त-निर्माण में नवजागरण का केन्द्रीय महत्व है । नवजागरण के प्रमुख आधारभूमियों की हम संक्षिप्त चर्चा करेंगे ।

आपने अध्ययन किया कि प्राचीन कविता का केन्द्रीय ढाँचा विश्वास या आस्था पर आधारित था, किन्तु आधुनिक कविता की सैद्धान्तिक तर्क पर आधारित है। तर्क ने आधुनिक कविता को धार देने का काम करता है । तर्क संवलित कविता ने पुराने विश्वासों पर प्रश्न चिह्न खडा़ किया। तर्क को विकसित करने में आधुनिक ज्ञान- विज्ञान ने महत्पूर्ण योगदान दिया। आधुनिक कविता इसी कारण नियतिवाद को अस्वीकार करती है और वह वैज्ञानिक कार्य-कारण श्रृंखला पर बल देती है । प्राचीन समाज एवं कविता हर घटना को किसी अदृश्य सत्ता से संचालित मान लेती थी जबकि आधुनिक कविता वैज्ञानिक आवष्किारों के कार्य-कारण से प्रेरणा प्राप्त करती है। इसीलिए आधुनिक कविता ज्यादा प्रामाणिक और व्यक्ति मन एवं समाज को समझने में ज्यादा सरल रही। प्राचीन कविता अपने सारे तर्क ईश्वर को केंन्द्र में 'मानव' है। 'राम तुम मानव हो/ईश्वर नहीं हो क्या' मैथिलीशरण गुप्त की इस पंक्ति में पराम्परिक रूप से व्याप्त ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न खडा़ किया गया है। कबीर भी तार्किक है फिर भी कबीर को आधुनिक संवेदना का कवित क्यों नहीं कहा गया है? क्यों कि कबीर के सारे तर्क ईश्वर की ऊर्जा, प्रेरणा से संचालित हुए हैं। इसीलिए आधुनिक कविता की संवेदना मानव-समाज को ही प्रमाण मानकर विकसित हुई है। ईश्वर की केन्दीय स्थिति के अस्वीकार ने भाव संवलित कविता के स्थान पर बुद्धि संवलित कविता को प्रतिष्ठापित किया। नवजागरणकालीन मूल्यों का प्रभाव आधुनिक कविता पर पडा़ है । इसीलिए आधुनिक कविता आधुनिक जीवन- मूल्यों को विकसित कर सकी है। ये जीवन मूल्य कई प्रकार से किसित हुए हैं। हिन्दी कविता के संदर्भ में बात करें तो हम देखते हैं कि हिन्दी कविता ने आधुनिक मूल्यों को स्वीकार करने में लम्बी अवधि का सहारा लिया है। भारतन्दुकालीन संस्कार मूलतः प्राचीन मूल्यों से जुटा हुआ था। द्विवेदीयुग संक्रान्तिकाल कहा जा सकता है/छायावाद का युग वास्तव में आधुनिक मूल्यों का वाहक बनता है और सही रूप में नयी कविता में आधुनिक मूल्य केन्द्रीय स्थान प्राप्त कर पाते हैं।

आइए अब हम आधुनिक जीवन मूल्य को स्पष्ट करने वाले कुछ परिभाषिक शब्दावलियों का परिचय प्राप्त करें। प्रतीकवाद कविता के क्षेत्र का प्रमुख आन्दोलन था, जो फ्रांस में पहले चला । जीवन की जटिलता के मध्य कविगण ऐसी शब्दावली की तलाश में थे जो जटिल जीवन के यर्थाथ का बसूबी अंकन कर सके। प्रतीकवाद ने ऐसी शब्दावली के प्रयोग पर बल दिया, जिसमें छन्द के लोकप्रचलित अर्थ की अपेक्षा शन्द के नये गूढ़ अर्थ पर बल होता था । शब्द के घिसे-पिटे अर्थ नए यर्थाथ का अंकन नहीं कर पाते तो लेखक प्रतीक का प्रयोग करता है । प्रतीकवाद का प्रयोग ऐसी ही साहित्यिक- सांस्कृतिक परिस्थितियों की देन है।

साहित्य की भाषा जब कुछ ज्यादा ही स्थूल और इकहरी हो गई, तब कवियों ने काव्य में बिम्ब के प्रयोग पर बल दिया । बिम्ब, अलंकार के ही संवेदित रूप हैं । अलंकार में जहाँ कविता को सजाने पर ज्यादा बल है वहीं बिम्ब में पाठक को संवोदित करने पर बिम्ब का काम चित्र निर्माण करना है अर्थात् पाठक जब किसी काव्य को पढ़े तो उसके

समाने वर्ण्य-विषय का चित्र उपस्थित हो जाये, ऐसी क्षमता मुक्त कविता के प्रयोग को ही बिंब कहा गया। ललित कला एंव काव्य के अंतर्सम्बन्ध पर जब से नये ढंग से विचार किया जाने लगा, तब से भी कविता में निंब का प्रयोग बढा़। काव्य में ललित कला के आग्रह ने काव्य को स्थापत्य, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत से मुक्त करने पर बल दिया। प्राचीन कविता में दर्शन जहाँ अनिवार्य पक्ष समझा जाता था वहीं आधुनिक कविता में काव्य को ज्ञान के समस्त अनुशासनों के बीच रखकर देखने की परम्परा ।इतिहास के प्रति मूल्यांकन एवं पुनर्मूल्याकन का काम आधुनिक कालीन चेतना (नवजागरण कालीन चेतना) का एक भेदक लक्षण है। बांग्ला के माइकेल मधुसूदन दास की 'मेघनाद वध' भारतीय साहित्य में इस ढंग का प्रथम प्रयास है। हिन्दी में इसी ढंग का प्रयास 'पुनरूत्थान वाद' कहा गया। जयशंकर प्रसाद, निराला, इत्यादि की कविताओं को पुररूत्थानवादी कहा गया है। नयी कविता के समय में धर्मवीर भारती की अधिकांश कविताएँ इतिहास के ट्रेजिक बोध पर आधारित है। इतिहास के ट्रेजिक बोध को व्यक करने के लिए ही आधुनिक कविता में 'मिथकों' का बहुतायत प्रयोग हुआ है। निथक, इतिहास, पुराण का मिश्रित रूप है , जिसमें यर्थाथ के गूढ़ प्रश्नों को उद्घाटित करने के लिए कवियों ने व्यंग्य का सफलतापूर्वक प्रयोग किया।

1.5 पुरानी कविता का काव्य रूप और समाज

प्राचीन कविता की समझ के लिए हमें प्राचीन समाज के धर्म- संस्कृति- भाषा या कहें कि मूल तत्व को समझना हमारे लिए आवश्यक है। प्राचीन समाज चाहै वह भारतीय समाज हो या पश्चिमी उनकी मूल प्रेरणा शक्ति धर्म और अध्यात्म रहै हैं। कविता के काव्य रूप और समाज के अंतर्सम्बन्धों पर चर्चा करने से पूर्व यहाँ प्राचीन कविता के काव्य रूप पर संक्षेप पमें विचार करना उपयुक्त होगा। हमें मालूम है कि साहित्य के इतिहास में काव्यरूपों का बहुत महत्व है। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि कोई काव्य रूप किसी युग का भी सूचक बन जाता है। जैसे अपने साहित्य के इतिहास में रामचन्द्र शुक्ल टिप्पणी की है। जिस प्रकार गाहा कहने से प्राकृत का बोध होता है उसी प्रकार दूहा कहने से अपभ्रंश का। स्पष्ट है कि उस युग में गाहा या दोहा छन्द ही उस युग की संवेदना की अभिव्यक्ति को धारण करने में सक्षम सिद्ध हुए थे। इसी प्रकार पश्चिम में भी कई प्रकार के काव्य रूप प्रचलित थे, जो क्रमशः युग- समाज के परिवर्तन के साथ समाप्त हो गये। पश्चिमी काव्य रूपों की परम्परा युनान से मानी जाती है। यूनान में काव्य रूप में महाकाव्य सर्वाधिक प्रचलित विधा थे। इलियद एवं ओडिसी होकर के प्रसिद्ध महाकाव्य माने गये है। इसी प्रकार ग्रीक-रोमन में कैटीलरू **64** जो कैटीलस की रचना है, में लम्बी कविता के फॉर्म है। राई में अंतिम शब्द के ध्वनि साम्य पर बल दिया जाता था, जबकि ऑलटेशनमें एक शब्द पर बल। इसी प्रकार गीत काव्य रचना के प्रारंभिक रूप थे जो सभी समाज में प्रचलित थे। गीत का एक प्रकार ओड है जिसमें लेखक भावनात्मक उद्रेक के साथ स्वयम् या परिवार का गुणज्ञान किया करता था। इसी प्रकार (जिसे म्च्ल्स्स्प्प्छ कहा गया है।) बैलेड गीत काव्य परम्परा भी चलती है जिसमें विशेषकार युद्ध और प्रेम (श्रृंगार) काव्य विषय हुआ करते थे। इटली का सॉनेट भी प्रसिद्ध काव्य छंद रहा है, जो **14** पंक्तियों में लिखा जाता है। सॉनेट अंग्रेजी से होता हुआ हिन्दी में आया है। हिन्दी के दोहा छंद की तरह अंग्रेजी साहित्य में कपलेटकलारूप की परम्परा रही है। फारसी साहित्य की गज़ल परम्परा तो प्रसिद्ध है ही। भारतीय काव्यरूपों की परम्परा भी काफी समृद्ध रही है। युग-समाज की विकासात्मक स्थिति ने काव्यरूपों की समृद्ध परम्परा को जन्म दिया है। काव्य रूप के सर्वाधिक प्रचलित रूप गीत एवं महाकाव्य रहै हैं। गीत जहाँ भावात्मक उद्रेक की स्थिति में निसृत हुए हैं, वहीं महाकाव्य विचारशील मनःस्थितियों के परिणाम है। गीत प्रारम्भ में सामूहिक रूप में ही गाये जाते थे विशेषकर कृषि-कर्म के समय। क्रमशः व्यक्तिगत मनःस्थितियों के उद्घाटन के माध्यम बनते गये। प्राचीन भारतीय समाज की प्रेरक भाव भूमि नैतिकता, धर्म, अध्यात्म या आदर्श रहै हैं। इन सारे लक्ष्यों की प्राप्ति महाकाव्य रूप के माध्यम से ज्यादा सुगम रही है। संस्कृत की गीत काव्य परम्परा क्षेमेन्द्र, जयदेव, विद्यापति से होती हुई सूरदास एवं मीराबाई में पदों के रूप में और पुष्ट हुई है। प्राचीन काव्य रूप में खण्डकाव्य

की भी परम्परा रही है, जो हिन्दी साहित्य तथा चली आई है। प्राकृत एवं अप्रभंश की मुक्तक काव्य परम्परा ने सामान्य जीवन की यौन भावनाओं एवं प्रणय क्रियाओं का चित्रण शुद्ध लौकिक एवं यर्थाथमूलक दृष्टि से किया है। इस परम्परा में हाल की ' गाथा सप्तशती', अभरूक की अभरूक शतक एवं बिहारी की संतसई को लिया जा सकता है। यह मुक्तक परम्परा की श्रेणी में आती है। इस परम्परा में एक धारा साखी या दोहों की है। जिसमें सामाजिक जीवन पर कवि विचार करता है। यह परम्परा सिद्धों-नाथों से होती हुई कबीरदास में अपनी पूर्णता को पहुँची है।

प्रबन्ध काव्य परम्परा में जैन कवियों द्वारा रचित चरित काव्यों का विशेष महत्व है। इस तरह के चरित काव्यों में पउमचरिउ, पद्मचरित, लायकुमार परिउ, जसहर चरिउ, भविसयन्त कहा, करकंड चरिउ इत्यादि प्रमुख है। काव्य रूपों की दृष्टि संवाद शैली भी हिन्दी काव्य में प्रचलित रही है। 'पृथ्वीराज रासो' की रचना शुक-शुकी संवाद के रूप में तथा 'कीर्तिलता' की रचना भृंग-भृंगी संवाद के रूप में हुई है। काव्य रूप की दृष्टि से चतुष्पदी काव्यों की रचना भी हुई है। चतुष्पदी, चउपई, चौपई संज्ञक प्रबन्धात्मक रचनाएँ भी बहुतायत रूप में मिलती है। रल्ह कवि की जिनगी चौपाई एवं विनयचन्द्र सूरि की नेमिनाय चउपई इस रूप की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। मध्यकाल की प्रसिद्ध पद परम्परा सिद्धों के चर्यापदों से प्रारम्भ होती है। यह परम्परा कबीर से होते हुई सूरदास और मीरा में पुष्ट होती है। अमीर खुसरो ने एक नये काव्य रूप को साहित्यिक मान्यात प्रदान की। पहै लियाँ, सुखने, और गज़ल को अमीर खुसरो ने साहित्यिक मान्यता प्रदान की। इसी प्रकार आदिकाल में बेलि काव्य-परम्परा में राउल् बेलि की गणना की जाती है। इस ग्रन्थ में पद्य के साथ गद्य का भी प्रयोग किया गया है। इसे 'चम्पू काव्य' गद्य-पद्य मिश्रित विधा भी कहा जाता सकता है। यह कृति धारा में उपलब्ध शिलाखंड पर अंकित है। कोई चाहै तो इसे शिलांकित कृति भी कह सकता है। इसी काल में लोकोक्ति काव्य परम्परा में दामोदर भट्ट ने उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण नामक ग्रन्थ की रचना की थी।

1.6 आधुनिक कविता का काव्य रूप और समाज

आपने प्राचीन काव्यरूपों के बारे में संक्षेप में पढा। आपने देखा कि महाकाव्य प्राचीन काव्यरूपों का आधार स्तम्भ रहा है। चाहै पश्चिमी समाज रहा हो यार भारतीय मूल ढाँचा, काव्य का आदर्श स्वरूप ही था। पश्चिम में ट्रेजिडी या दुखान्त नाटकों की एक परम्परा अवश्य मिलती है, लेकिन काव्य रूप में नैतिकता एवं आदर्श की ही प्रमुखता रही। प्रश्न उठाया जा सकता है कि आधुनिक काल आते ही प्राचीन काव्य रूप प्रचलन से बाहर क्यों हो गये या समाप्त क्यों हो गये। दोहा, चौपाई, सोरठ, छप्पय, हरिगीतिका, कुण्डलिया जेसे छन्द पार्श्व में चले जाते हैं और उनके स्थान पर कविता (लम्बी कविता, छाटी कविता) का रूप प्रचलन में आ जाना है। प्राचीन काव्यरूप पुराने विषयों के तो अनुकूल रहै लेकिन नवीन विषयों (समाज की गतिशीलता, व्यवस्था परिवर्तन, सामाजिक अंतर्विरोध एवं विसंगति जैसे प्रश्न) का निर्वहन कर पाने में अक्षम सिद्ध होने लगे। आधुनिक युग में कविता को भक्ति-भक्ति- श्रृंगार जैसे विषयों से युक्त किया गया

एंव उसे व्यापक सामाजिक समस्याओं से जोडा़ गया।

1.7 कविता के ढलने की प्रक्रिया या इतिहास

कविता मानवीय या कहें चराचर जगत की संवेदनाओं का लालित्यपूर्ण ढंग से किया गया अभिव्यक्तिकरण है। इसीलिए रामचन्द्र शुक्ल ने कविता को हृदय की मुक्तावस्था' या 'भावयोग' कहा है। बद्ध मनुष्य से युक्त मनुष्य के बीच कविता एक माध्यम के रूप में उपस्थित होती है। कविता के बनने की प्रक्रिया और उसके रसानुभूति की प्रक्रिया तक एक लम्बी प्रक्रिया चलती रहती है।

1.8 सारांश/मूल्यांकन

यह इकाई पद्य साहित्य की सैद्धान्तिक पर केंद्रित है। इस इकाई का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि-

- कविता 'भावयोग ' है।
- कविता का कार्य हमें संकुचित घेरे से मुक्त कर लोक सामान्य की भावभूमि पर पहुँचा देना है।
- गद्य और पद्य में तात्विक भेद है। गद्य की अपेक्षा पद्य ज्यादा कल्पनात्मक, बिम्बात्मक होता है।
- प्राचीन कविता और नवीन कविता के गठन में अन्तर है। प्राचीन कविता जहाँ मूलरूप से आदर्शत्मक गठन लिए होती थी, वहीं आधुनिक कविता यर्थाथवादी संवेदनों के आधार पर निर्मित हुई है।
- प्राचीन काव्यरूपों और नवीन काव्यरूपों में अन्तर है। महाकाव्य काव्यरूप का स्थान कविता ने ले लिया है।
- प्राचीन कविता में जो स्थान अलंकार का होता था, वही आधुनिक कविता में बिम्ब और प्रतीक का है।

1.9 शब्दावली

- मुक्तावस्था - संकुचित सीमा से मुक्त मन
- चम्पू काव्य - गद्य-पद्य मिश्रित विधा।
- गद्यगीत - गद्य को गीतात्मक रूप में कहने की शैली
- अमानिशा - अंधेरी अमावस की रात।
- बिंब - कविता में चित्र खडा़ करना/ होना।
- प्रतीक - शब्दों के माध्यम कसे किसी और अर्थ का निर्माण
- मिथक - इतिहास -पुराण के मिश्रण से उत्पन्न।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क)

1. जनचरित्री।
2. मुक्तावस्था
3. रसयुक्त
4. रमणीय
5. भामह

(ख)

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा,
2. चिंतामणि **1 -** शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी संभा।

1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिथक से आधुनिकता तक - मंघ, रमेश कुंतल, वाणी प्रकाशन, संस्करण **2008**।

2. दुस्समय में साहित्य - शंभुनाथ**,** वाणी प्रकाशन**,** संस्करण **2002**

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कविता की प्रमुख परिभाषाओं का वर्णन कीजिए।

2. 'कविता और समाज' पर निबन्ध लिखिए।

3. 'काव्यरूप और समाज' पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 2 **पद्य साहित्य का वर्गीकरण एवं अंतर्सम्बन्ध**

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पद्य साहितय का वर्गीकरण
2.3.1 पद्य साहित्य का वर्गीकरण
2.3.2 पद्य साहित्य वर्गीकरण के तात्विक आधार
2.3.3 पद्य साहित्य का इतिहास
2.4 पद्य साहित्य का ऐतिहासिक स्वरूप
2.4.1 पद्य साहित्य का प्राचीन स्वरूप
2.4.2 पद्य साहित्य का मध्यकालीन स्वरूप
2.4.3 पद्य साहित्य का आधुनिक स्वरूप
2.5 पद्य साहित्य का भाषागत संदर्भ
2.6 हिन्दी काव्य की पूर्ण पीठिका
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

यह इकाई पद्य साहित्य के वर्गीकरण एवं उनके अंतर्सम्बन्ध पर केंन्द्रित है। इसके पर्व आपने पिछली इकाई में पद्य साहित्य की सैद्धान्तिकी का अध्ययन कर लिया है। आपने उस इकाई में अध्ययन किया कि गद्य और पद्य का तात्त्विक भेद क्या हैं आने अध्ययन किया कि विभिन्न काव्यरूपों के विभाजन का तात्विक आधार क्या है। आपने यह भी अध्ययन किया कि कविता का सामजशास्त्र किन तत्वों पर आधाररित होता है और वह कैसे निर्मित होता है। इस इकाई में आप पिछली इकाई के क्रम में ही पद्य साहित्य के काव्य रूपों को ऐतिहासिक विकास क्रम में अध्ययन करेंगे।

पद्य साहित्य के अनेकों भेद एवं प्रभेद प्रचलित रहै हैं। एक विशेष समय में रचना प्रक्रिया की एक विशेष शैली प्रचलित रही है। रचना प्रक्रिया की एक विशेष शैली प्रचलित रही है। रचना प्रक्रिया की वह शैली कभी ऐतिहासिक कारणों, कभी भौगोलिक परिस्थितियों तो कभी भाषा- वैज्ञानिक कारणों के रूप में प्रचलन में रही है। पद्य साहित्य के विकास क्रम को भली-भाँति समझने के लिए हम उसके ऐतिहासिक- सांस्कृतिक विकास क्रम को इस इकाई में समझने का प्रयास करेंगे। पद्य साहित्य के ऐतिहासिक विकास क्रम के संदर्भ में सुविधा की दृष्टि से प्राचीन, मध्ययुगीन एवं आधुनिक युग का अध्ययन करना समीचीन होगा।

2.2 उद्देश्य

यह इकाई पद्य साहित्य के वर्गीकरण एवं उनके अंतर्सम्बन्ध पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- पद्य साहित्य का वर्गीकरण समझ सकेंगे।
- पद्य साहित्य के इतिहास को जान सकेंगे।
- पद्य साहित्य - वर्गीकरण के तात्विक आधार को समझ सकेंगे।
- पद्य साहित्य के भाषागत विकास क्रम को समझ सकेंगे।
- हिन्दी काव्य की पूर्ण-पीठिका या विकास क्रम को समझ सकेंगे।

2.3 पद्य साहित्य का वर्गीकरण

पद्य साहित्य संसार का सर्वाधिक प्राचीन साहित्य रूप है। विधाओं के इतिहास पर जब हम चर्चा करते हैं तो हमारे सामने प्रमुख रूप से दो विधाएँ उपस्थित होती है- कविता और कहानी। इन विधाओं में कौन सी विधा पहले अस्तित्व में आई, यह निश्चयपूर्णक नहीं कहा जा सकता। केवल अनुमान किया जा सकता है। पद्य साहित्य के साथ श्रम और कहानी के साथ आराम, फुर्सत के क्षण जुड़े हुए हैं। कविता का जन्म इसीलिए, खासतौर पर लोकगीतों का सम्बन्ध श्रम के बीच हुआ। कृषि कर्म एवं अन्य श्रम के साथ गीत गाना भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों सामाजिक परम्पराओं में हमें देखने को मिलता है। व्यक्ति जब बहुत संघर्ष में होता है, कष्ट में होता है या कभी प्रसन्न भी होता है, तब भी उसकी संवेदना कविता के रूप में प्रस्फुलित होती है। मनोवैज्ञानिक विकास क्रम की दृष्टि से भी कविता, कहानी से प्राचीन विधा ठहरती है। कविता के इतिहास पर जब हम बात करते हैं तब हम परिष्कृत साहित्य (परिनिष्ठित साहित्य) से पूव्र लोक साहित्य का इतिहास देखते हैं। पद्य साहित्य के इतिहास को जानने से पूर्व आइए हम पद्य साहित्य के वर्गीकरण को समझने का प्रयास करें-

2.3.1 पद्य साहित्य का वर्गीकरण

पद्य साहितय का वर्गीकरण

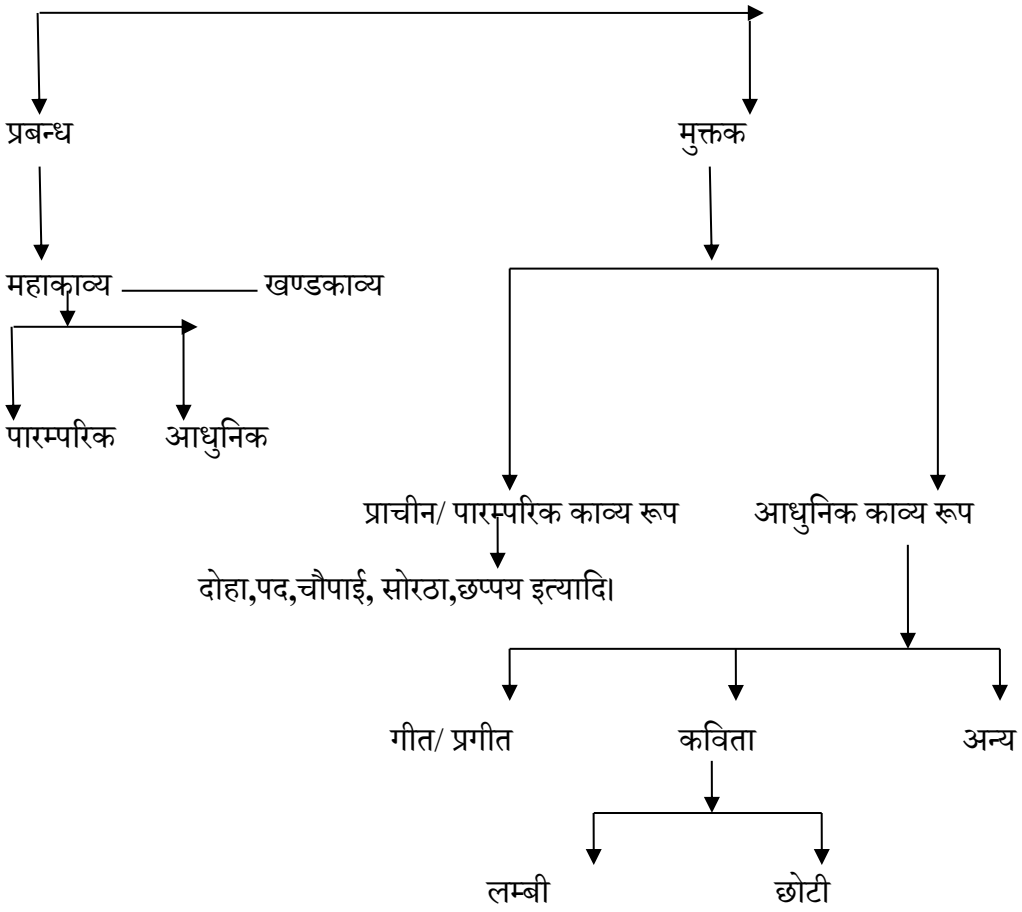
प्रबन्ध
मुक्तक
महाकाव्य
खण्डकाव्य
पारम्परिक
आधुनिक
प्राचीन/ पारम्परिक काव्य रूप
आधुनिक काव्य रूप
दोहा,पद,चौपाई, सोरठा,छप्पय इत्यादि।
गीत/ प्रगीत
कविता
अन्य
लम्बी
छोटी

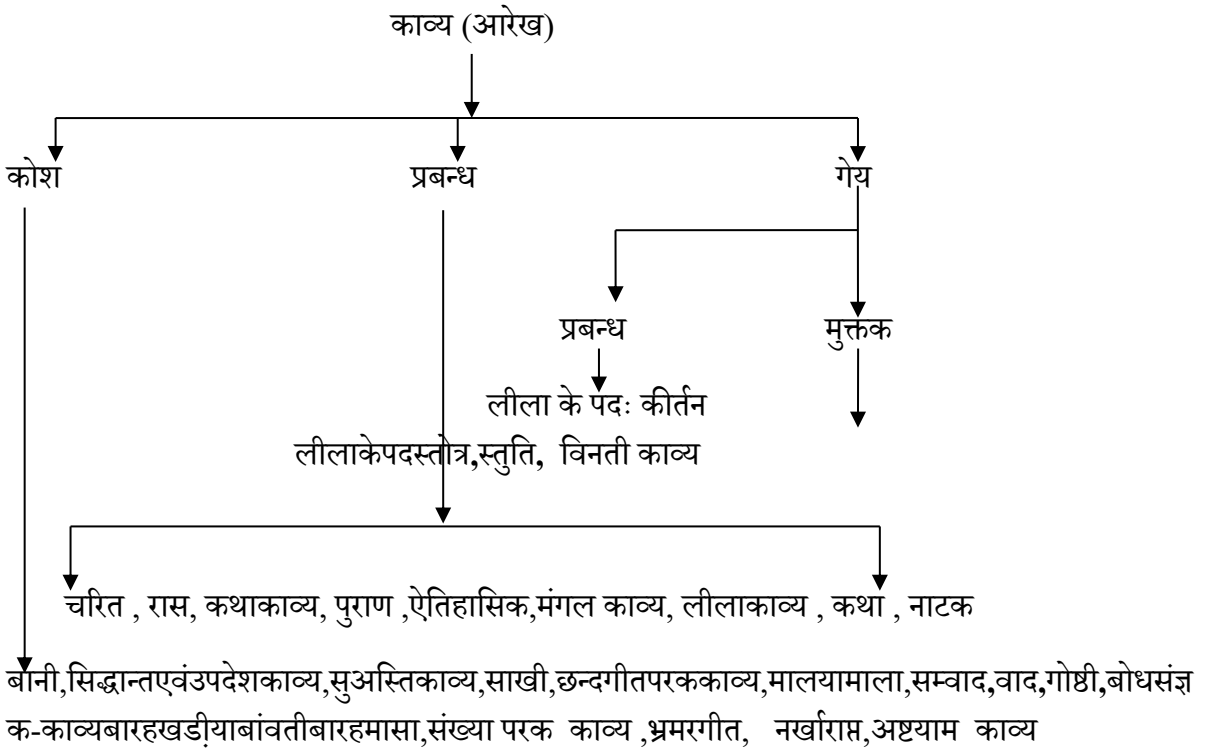
काव्य (आरेख)
कोश
प्रबन्ध
गेय
प्रबन्ध
मुक्तक
लीला के पदः कीर्तन
लीलाकेपदस्तोत्र,स्तुति, विनती काव्य
चरित , रास, कथाकाव्य, पुराण ,ऐतिहासिक,मंगल काव्य, लीलाकाव्य , कथा , नाटक
बानी,सिद्धान्तएवंउपदेशकाव्य,सुअस्तिकाव्य,साखी,छन्दगीतपरककाव्य,मालयामाला,सम्वाद,वाद,गोष्ठी,बोधसंज्ञक-काव्यबारहखडी़याबांवतीबारहमासा,संख्या परक काव्य ,भ्रमरगीत, नखाराप्त,अष्टयाम काव्य

2.3.2 पद्य साहित्य वर्गीकरण के तात्विक आधार

पूर्व में आपने अध्ययन किया कि कविता साहित्य की सबससे प्राचीन विधा हैं देशकालानुसार इसके स्वरूप एवं वर्ण्य-विषय में परिवर्तन होता रहा है। इस विधा के वर्व्य-विषय वहन करने की क्षमता के कारण इसकी विभिन्न शाखाएँ या काव्य रूप विकसित होते गए हैं, जो परस्पर भिन्न होते हुए भी तात्विक रूप से एक है। पद्य साहित्य वर्गीकरण के कई आधार हैं, जिसमें मुख्यतः वर्व्य-विषय और काव्य रूप की भिन्नता हैं। आपने अध्ययन किया कि वेद, उपनिषद्, इत्यादि से पूर्व भी कविता की परम्परा लोक में प्रारम्भ हो चुकी थी, लेकिन साहित्य के रूप में उन पर किसी का ध्यान नहीं गया। वेद चूँकि न केवल दार्शनिक- सामाजिक दृष्टि से काफी सशक्त रचना है अपितु साहित्यिक तत्वों की भी इसमें कमी होती है । वैदिक संस्कृत तक काव्य रूपों का उतना स्पष्ट विभाजन नहीं हुआ था, जितना लौकिक संस्कृत में हुआ है। इसका कारण यह था कि वेद स्वतंत्र रूप में देवताओं की स्तुति रूप में रचे गये हैं लेकिन उनमें कथा तत्व भी पाया जाता है। कथा तत्व की दृष्टि से पुराण काव्यों में प्रबन्ध के पर्याप्त तत्व मिलने लगते हैं। इस दृष्टि से पद्य साहित्य का पहला विभाजन प्रबन्ध एवं मुक्तक के रूप में हुआ है । प्रबन्ध एवं मुक्तक के भेद का ताच्विक आधार यह रहा कि प्रबन्ध काव्य में कथा का विस्तार मिलता है जबकि मुक्तक की हर रचना अपने आप में स्वतंत्र एवं पूर्ण होती है। काव्य रूप की दृष्टि से प्रबन्ध एवं मुक्त आधारभूत विभाजन है। प्रबन्ध एवं मुक्तक के विभाजन का तात्विक भेद यह भी है कि प्रबन्ध रूप की रचना में जहाँ जीवन-समाज को व्यापक संदर्भों में देखने का अवकाश रहता है

वहीं मुक्तक में किसी एक मनोवृत्ति , रस या जीवन- सूत्र को समझाने का प्रयास किया जाता है।

2.3.3 पद्य साहित्य का इतिहास

आपने पढा़ कि पद्य, साहितय की सार्वाधिक प्राचीन विधा है । लोक गीतों से होते हुए वेदों की मौलिक परम्परा तक यह एक चरण पूरा करती है । लौकिक संस्कृत से लेकर अपभ्रंश काव्य तक इसका दूसरा चरण माना जाता सकता है । इन चरणों को प्राचीन भारतीय आर्यभाषा और मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काहा गया है । आुधनिक भारतीय आर्यभाषा का ही विस्तार आधुनिक काल है। पश्चिमी और भारतयी पद्य साहित्य के इतिहास को भी हम एक ही ढाँचे में फिट नहीं कर सकते। कारण यह है कि पश्चिमी समाज के ढाँचे और भारतीय समाज के ढाँचे में बुनियादी अंतर है । संपूर्ण पश्चिमी समाज में भी कविता का विकास न तो सामान्य धरातल पर

हुआ है और न भारतीय समाज में ।

अभ्यास प्रश्न-

2.4 पद्य साहित्य का ऐतिहासिक स्वरूप

2.4.1 पद्य साहित्य का प्राचीन स्वरूप

पूर्ण के बिन्दुओं में हमने पद्य साहित्य की पृष्ठभूमि का अध्ययन किया। अब हम पद्य साहित्य के प्राचीन स्वरूप का विस्तार से अध्ययन करेंगे। प्राचीन कविताऐं, विशेषकर भारतीय या प्रमुख रूप से संस्कृत कविता का इतिहास, का बोध होता है। इसका कारण क्या है? प्राचीन कविता में, (व्यापक रूप से) संपूर्ण विदेशी एवं भारतीय भाषाओं का साहित्य आ जाता है, जिसका संपूर्ण रूप से या थोड़े रूप में भी परिचय देना किसी एक इकाई में संभव नहीं है। अतः यहाँ हमने पद्य साहितय के इतिहास को संस्कृत और हिन्दी साहित्य की विकास परम्परा के संदर्भ में रखकर ही विवेचन किया है। इसका कारण क्या है? हिन्दी भाषा के विकास क्रम को यहाँ हम संक्षे प रूप में आइए देखें-

संस्कृत - पालि - प्राकृत - अपभ्रंश
हिन्दी - खडी़ बोली हिन्दी - हिन्दी

तालिका देखने से यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी भाषा की विकास परम्परा का संस्कृत से गहरा संबंध है। आइए पहले हम इस परम्परा के अंतर्सम्बन्ध को समझने का प्रयास करें। संस्कृत भारतीय इतिहास के विभाजन क्रम में **1500** ई**0** पू**0** से लेकर **6**ठीं शताब्दी तक के समय को प्राचीन काल**,** छठीं शताब्दी से लेकर **18**वीं शताब्दी तक मध्यकाल और **19**वीं शताब्दी से लेकर अब तब के काल को आधुनिक काल कहा गया है। भारतीय साहितय के संदर्भ में यदि काल-विभाजन किया जायेगा तो वह इस प्रकार होगा-

प्राचीन कविता - **1500** ई**0**पू**0** से - **1000**ई**0** तक
मध्यकालीन कविता- **1000** ई**0** से - **1850** तक
आधुनिक कविता - **1850**ई**0** से - **2013**/ अब तक.....

2.4.2 पद्य साहित्य का मध्यकालीन स्वरूप

आपने पद्य साहित्य के प्राचीन स्वरूप का संक्षेप में अध्ययन किया। प्राचीन पद्य में मुख्यतः संस्कृत**,** प्राकृत और अपभ्रंश भाषा की कविता और उसके काव्यरूप आते हैं। हर युग में उसकी विषय वस्तु एवं उकसे रूप को लेकर संघर्ष चलता रहता है। विषय वस्तु की नवीनता जहाँ फॉर्म (रूप) का निर्धारण करते हैं वहीं फॉर्म व रूप का अन्य ज्ञानात्मक अनुशासनों से द्वन्द्व विषय-वस्तु को भी संयोजित-समृद्ध करते चलते हैं। प्राचीन पद्य का विषय वस्तु की दृष्टि से स्वरूप प्रायः वीरता**,** प्रेम**,** आदर्श-नीति**,** रहस्यवाद या अध्ययत्मवाद जैसे विषय रहै हैं**,** अतःरूप की दृष्टि से महाकाव्य- खण्डकाव्य**,** दोहा-चौपाई**,** गीत इत्यादि रूप विशेष प्रचलन में रहै।प्राचीन कविता का ही उतरोत्तर विकास मध्यकालीन कविता में हुआ है। मध्यकानीन कविता में प्रायः भक्तिकाल और रीतिकाल की कविता को ही सम्मिलित किया गया है लेकिन यहाँ आदिकाल**,** भक्तिकाल एवं रीतिकाल को इसके अंतर्गत विवेचित किया गया है। यहाँ हम क्रमशः आदिकाली**,** भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कविता का अध्ययन विषय के धरातल पर करेंगे।

2.4.2.1आदिकालीन पद्य साहित्यःस्वरूप एवं विश्लेषण

आदिकालीन पद्य साहित्य का प्रारम्भ सातवीं शताब्दी से माना जाये या **11**वीं शताब्दी से**?** यह हिन्दी साहित्योतिहास का विवादि प्रश्न है। यहाँ सुविधा के लिए हम **1000** ई**0** के बाद के साहित्य को आदिकाल के अंतर्गत विश्लेषित करेंगे। अपभ्रंश के साहित्य और पुरानी हिन्दी के साहित्य को अलगाने के लिए चन्द्रधर शर्मा**,** गुलेरी**,** ने लिखा है.....''विक्रम की **7**वीं शताब्दी से **11**वीं शताब्दी तक अपभ्रंश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिन्दी में परिणत हो गई। विभक्तियाँ घिस गई है**,** खिर गई है**,** एक ही विभक्ति है वह और नई काम देने लगी है। एक कारक की विभक्ति से दूसरे का भी काम चलने लगा है। स्पष्ट रूप से हम देख सकते हैं कि पुराने अपभ्रंश और परवर्ती अपभ्रंश का निकट का संबंध है। आदिकालीन पद्य का समय मोटे तौर पर **1000** ई**0** से लेकर **1400** ई**0** तक निर्धारित किया जाता रहा है। इस समय का समाज सामन्ती जकड़न से बद्ध गतिहीन समाज था। धार्मिक दृष्टि से हिन्दू समाज कर्मकाडों में फँसा हुआ। बौद्ध धर्म भी अपनी प्रगतिशीलता खोकर तं.-मं. एवं व्यभिचार में फँसा हुआ था। भारतीय समाज के**,** ऐसे बद्ध समय में मुस्लिम शासन की स्थापना भारतीय समाज को सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनैतिक सभी दृष्टियों से प्रभावित किया। हिन्दू राजा छोटे'-छोटे क्षेत्रों में विभक्त होकर परस्पर एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते थे। एक राज्य का दूसरे राज्य पर आक्रमण कभी-कभी तो केवल अपनी ताकत प्रदर्शित करने का बहाना मात्र होते थे। भोग और युद्ध के ऐसे वातावरण में मुस्लिम धर्म का प्रवेश और उसका सत्ता-हस्तान्तरण कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। प्रारम्भ में मुस्लिम शासन का चरित्र (विशेषकर'सल्तनत काल' तक) आक्रान्ता एवं विजेता का ही था । बाद में वह क्रमशः सांस्कृतिक होता गया ।आदिकालीन चूँकि भिन्न'-भिन्न मनःस्थितियों के

बीच लिखा गया है, इसलिए इस काल कविता की किसी एक धारा को हम केन्द्रीय प्रवृत्ति के रूप में तथा एक काव्य रूप को हम केन्द्र में नहीं मान सकते। आदिकालीन साहित्य की विभिन्न मनःस्थितियों को हम इस आरेख माध्यम से अच्छी तरह समझ सकते हैं-

आदिकाल-

धारा	प्रवृत्ति	रस	क्षेत्र	काव्य रूप
सिद्धसाहित्य	रहस्यवाद	शान्त उत्साह	पूर्वी क्षेत्र	गीत,दोहा मुक्तक
नाथ(सवदी)	हठयोग/तंत्र	चमत्कार	उत्तर भारत राजपूताना	मुक्तक दोहा
जैन	रहस्यवाद/वीरता	शान्त उत्साह	पश्चिमी	प्रबन्ध-चरित काव्य
रासो	वीरता/श्रृंगार	उत्साह/रति	पश्चिमोत्तर	महाकाव्य लौकिक
	श्रृंगार	रति	पूर्वी	मुक्तक/पद

आरेख द्वारा स्पष्ट और पर हम देखते हैं कि आदिकालीन साहित्य का विषय-विस्तार एवं काव्य - रूप विभिधता लिये हुए हैं। एक ओर जहाँ हय वीरता, प्रेम, श्रृंगार,-प्रेम, हठयोग-तंत्र, खंडन-मंडन एवं रहस्यवाद के विषय-विस्तार से जुडा़ हुआ है वहीं दूसरी ओर यह प्रबन्ध-महाकाव्य- चरित काव्य, मुक्तक- दोहा-पद इत्यादि काव्य रूपों को भी अपने भीतर समेटे हुए हैं। यहाँ हम थोडा़ और विस्तार से आदिकालीन पद्य के स्वरूप को समझने का प्रयास करेंगे। हम यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि आदिकालीन कथ्य एवं रूप का क्या अंतर्सम्बन्ध रहा है।

सिद्ध साहित्य-

सिद्ध साहित्य की काल-सीमा **7**वीं शताब्दी से लेकर **13**वीं शताब्दी तक स्वीकार की गई है। इस साहित्य का विस्तार मुख्यतः उडी़सा, बंगाल, असम एवं बिहार का पूर्वी प्रदेश था। सिद्धों की संख्या **84** मानी गई है। सिद्ध-साहित्य का अधिकांश आज अप्राव्य है। इस संबंध में महत्वपूर्ण कार्य महामहोयाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का ''बोद्धगान ओ दोहा'' है, जिसमें उन्होंने सिद्धों के दोहाकोश एवं चर्यागीतों का संग्रह-संपादन किया। इस दिशा में प्रबोधचन्द्र बागची एवं राहुल सांकृत्यायन का कार्य महत्वपूर्ण है। सिद्ध कविता की भूमिका को लेकर हिन्दी आलोचकों में मतैक्य नहीं हैं। एक ओर, राहुल सांकृत्यायन जहाँ इसे केन्द्रीय साहित्य मानते हैं वहीं दूसरी ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसे संकीर्ण धरातल की कविता कहते हैं। राहुल जी के अनुसार इस कविता की प्रगतिशिलता जाति प्रथा का विरोध, ऊँच-नीच भेद का विरोध, शास्त्रों की जड़ता पर चोट एवं बाह्याडम्बरों का विरोध करने में हैं। 'पंडिअ सअल सत्य वक्खाणअ' इस कविता की केन्द्रीय भाव-भूमि है। रामचन्द्र शक्ल के अनुसार इस कविता की प्रतिगामिता 'महासुखवाद' की परिकल्पना (शरी-संभोग को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम मानना) एवं तंत्रवाद/चमत्कारवाद की अतिशयता है। कबीर के 'अस्वीकार' की बीज-भूमि सिद्ध कविता ही है। काव्य रूप के क्षेत्र में प्रयोग की दृष्टि से भी सिद्ध कविता महत्वपूर्ण है। खण्डन-मण्डन के लिए सिद्धों ने दोहा, छन्द का प्रयोग किया किन्तु धार्मिक-रहस्यात्मक गीतों के लिए 'चर्यापदों की भाषा अवहट्ट है। इसी प्रकार का प्रयोग कबीर ने भी किया है। प्रश्न उठता कि काव्य रूप संबंधी यह प्रयोग सिद्धों ने क्यों किया? हमने अध्ययन किया कि दोहों की विषय-वस्तु बाह्याचारों का खंडन था। खंडन के लिए आवेश एवं भावनात्मक तीव्रता की आवश्यकता होती है। 'उग्र आवेशात्मक भाव' की अवधि थोडी़-ही होती है। ऐसी लिए सिद्धों ने दो पंक्ति के दोहै छन्द का व्यवहार किया है, तो इसे समझा जा सकता है। इसी प्रकार, रहस्यात्मक गीतों का काव्य रूप 'चर्यापद' (पद) अनुभूति की गहराई, सघनता पर अवलम्बित है।

10वीं-**11**वीं शताब्दी के आस'-पास भारत का पूर्वी क्षेत्र बंगाल, बिहार, उड़िसा, आसम (कामरूप) तंत्र साधना के केन्द्र थे। तंत्र और रहस्यात्मक रचनाओं को इस क्षेत्र से प्रेरणा मिली हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

नाथ साहित्य'-

सिद्ध साहित्य अपने मूल रूप से हट कर काम - रहस्य एवं तह में उलझ कर रह गया था।'महासुखवाद' की विकृत परिकल्पना ने उसकी गतिशीलता को समाप्त कर उसे अश्लीलता के भंवर में फँसा दिया था। नाथ पंथ ने अपने को इन कु-प्रभावों से मुक्त किया। नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ माने जाते हैं लेकिन वास्तविक रूप में नाथ-सम्प्रदाय को स्थापित करने का श्रेय गोरखनाथ को है। इस सम्प्रदाय को सिद्धमत, सिद्धमार्ग, योगमार्ग, योग संप्रदाय, अवधूत मत, कनफटा इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। सिद्धों ने जिस प्रकार 'काम' (रति) को केन्द्र में रखा उसी प्रकार नाथों ने 'योग' को। देह अभयनिष्ठ है। लेकिन दोनों में अन्तर है। सिद्धों की 'देह-साधना' कामपरक है जबकि नाथों की 'देह-साधना' योगपरक है। 'जोई-जोई पिण्डे सोई-सोई ब्रह्मांडे ' नाथ- सम्प्रदाय का बीज वाक्य है। नाथों की संख्या **9** मानी जाती है, इसीलिए इसका नाम 'नवनाथ' भी कहा गया है। नाथ-सम्प्रदाय ने उत्तर भारत और राजपूताने में अपने सम्प्रदाय का विशेष प्रचार किया। इसके अतिरिक्त पंजाब, गुजराज, नेपाल, असम, उडी़सा इत्यादि क्षेत्रों में भी इस मत का प्रभाव रहा। गोरखपंथ का प्रभाव हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्मों पर पड़ां 'ना हिन्दू ना मुसलमान।' इस मत का सिद्धान्त बना। गोरखनाथ के अद्भुत' व्यक्तित्व ने बहुत जल्द ही उन्हें अपार लोकप्रियता प्रदान कर दी। इनके व्यक्तित्व पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की टिप्पणी है- ''शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति- आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गोरखनाथ का भक्तिमार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।''

नाथ पंथ ने अपने साहित्य में योग पर बल एवं जाति- पाति की असरता का खंडन किया। इनकी रचनाओं के संबंध में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता लेकिन पद और सबदी को अधिकांश लोगों ने प्रामाणिक रचना माना है। यहाँ हम नाथ पंथ की विषयवस्तु और उसके काव्य रूप पर संक्षेप में विचार कर सकते हैं। नाथपंथी योगियों के पद के लिए 'सबद'या ' सबदी' शब्द का प्रयोग मिलता है। डॉ**0** हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- ''यह सबदी शब्द नाथपंथी योगियों का है और कबीर पंथ में सीधे वहीं से आया है। '' (हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ट **107)** डॉ**0** रामबाबू शर्मा ने इस संदर्भ में टिप्पणी की है- ''नाथपंथी योगियों के समय में गुरू श्रेणी के सिद्धों के उपदेश-परक पदों को सबद और शिष्य श्रेणी के व्यक्तियों के पदों को पद कहा जाता थां साखी और दोहरे के सम्बन्ध में भी यही बात है।'' नाथ संप्रदाय की रचनाओं को 'बानी' भी कहा गया है। जैसे 'गोरख वानी'। वस्तुतः इस बानी का तात्पर्य यह है कि इसमें गुरू की गुरूत्वयुक्त, मौलिक बचनावली जो अपौरूपेय जैसी श्रद्धा के योग्य हो। संकेत यह है कि उस समय गुरू के नाम पर ऐसी उक्तियाँ भी प्रचलित थी जो दिग्भ्रमित करती थीं। नाथ-सम्प्रदाय में गुरू का महत्व ही सर्वाधिक था, क्योंकि उसे ईश्वर प्राप्ति में सहायक समझा। नाथ-सम्प्रदाय में भी सिद्ध साहित्य की तरह ही उपदेश एवं खंडन के लिए 'बानी' तथा
साधनात्मक अनुभूतियों के लिए पद या सबदी का विधान किया गया है।

जैन साहित्य-

सिद्ध एवं नाथ सम्प्रदाय के विपरीत जेन साहित्य अपनी साहित्यिक मनोभूमि के कारण आदिकालीन साहित्य में विशेष महत्व रखता है। रहस्यात्मकता यहाँ भी है किन्तु जैन कवियों ने उसे साहित्यिक रूप प्रदान कर दिया है। इस साहित्य का क्षेत्र गुजराज एवं महाराष्ट्र के कुछ हिस्से थे। जैन साहित्य को राजकीय संरक्षण भी पार्याप्त मिला जिसके कारण ये लुप्त होने से बच गये। जैन साहित्य अधिकांश प्रबन्ध रूप में (पुराण काव्य एवं चरित काव्य) ही लिख गये, इसी कारण इनमें साहित्यिक तत्वों को खोजना कठिन नहीं है। जैन काव्य का 'पउम चरिउ' और

'हरिवंश पुराण', पुष्पदंत का महापुराण, यश-कीर्ति का पांडवपुराण और इधू का 'पद्मपुराण' और हरिवंश पुराण प्रमुख है। पुराण काव्य क्या है? इसे समझना आवश्यक है। जैन पुराणों में **24** तीर्थकारों, **12** चक्रवर्ती, **9** वलदेव, **9** नारायण (अर्द्ध चक्रवर्ती) और **9** प्रति नारायण- इस प्रकार **63** पुरूषों के चरित्र का वर्णन आवश्यक है। जैन कवियों ने ये पुराण संस्कृत की पुराण परम्परा के अनुसार नहीं लिखे। लेकिन इस तरह के काव्य-ग्रन्थों में पुराण-शैली का ही प्रयोग किया गया । संस्कृत और जैन पुरण काव्य में बहुत बडा़ अंतर भाषा एवं छन्द का है। जैन काव्य का दूसरा काव्य रूप चरित काव्य रहा हें चरित काव्य की परिभाषा देते हुए डॉ0 बाबूराम शर्मा ने लिखा है- ''किसी भी पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा धार्मित पुरूष को आधार मानकर उसके जीवन की संपूर्ण अथवा कुछ घटनाओं का जिन रचनाओं में भावपूर्ण शैली में चित्रण होता था, चरित-काव्य कहलाती थी।।'' विषय-वस्तु के आधार पर इसे तीन भागों में विभाजित किया गया है-

1. पौराणिक चरित -काव्य

2. ऐतिहासिक चरित-काव्य

3. धार्मिक चरित-काव्य।

जैन चरित काव्य काव्यों को धार्मिक चरित काव्यों के अंतर्गत रखा गया ह। इस प्रकार के काव्य में जिन चरित्रों का वर्णन हुआ है वे दो प्रकार के हैं- **1-** जो जैन धर्म से सम्बन्ध रखते हैं और **2-** जो हिन्दू पौराणिक आख्यानों से ग्रहण किये जाकर जैन धर्म के आरोप के साथ वर्णित हुए हैं। जैन धर्म के अधिकांश चरति काव्यों में चरित -नयाक के गुणों का बखान एवं उससे शिक्षा ग्रहण करने का उपदेश ही प्रधान रूप से चित्रित किया गया है। हिन्दू पौराणिक चरितों को जैन धर्म की मान्यताओं के अनुसार कुछ परिवर्तन कर दिया गया है। प्रत्येक चरित नायक का अन्त में जिन की शरण में जाना, जैन धर्म के आरोप को स्पष्ट करता है। जैन काव्य में प्रचलित तीसरा काव्य रूप रास-काव्य है। रास काव्य की परिभाषा देते हुए अभिनवगुप्त ने इसे गेय रूपक का भेद माना है। इस गेय रूपक में ताल, लय का विशेष स्थान होता था और इसमें अधिक- से-अधिक **64** जोड़े भाग ले सकते थे। रास-काव्य-रूप का सर्वप्रथम प्रचार सौराष्ट्र में माना जाता है। बाद में यह गुजराज के गर्भा नृत्यों के रूप में प्रचलित हुआ। क्रमशः इस काव्य- रूप में नृत्य का तत्व समाप्त होता गया । रास प्रारम्भ में लोक-नृत्य एवं लोक'-गीतों के रूप में साहित्य में आया और क्रमशः इसके दो भेद हो गए ।

1. नृत्य तथा गान के लिए ।

2. पढ़ने तथा अभिनय करने के लिए ।स्पष्ठतः रास का संबंध प्रथम प्रकार से है। डॉ0 रामबाबू शर्मा ने रास की परिभाषा देते हुए लिखा है- ''एक विशिष्ट शैली (गेय शैली) में ढाली गई जैन प्रभाव से युक्त धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं काल्पनिक कथाओं तथा धार्मिक सिद्धान्तों के वर्णन से युक्त रचनाओं को 'रास' संज्ञा दी जाती थी।''

रासो साहित्य -

रासो काव्य -परम्परा अपनी प्रामाणिकता को लेकर सार्वाधिक विवादित रहा है बावजूद इसके अपने कृतित्व में यह आदिकाल का केन्द्रीय साहित्य रहा है। कैसे? रासो साहित्य की रचना भूमि दिल्ली और उसके आस-पास का क्षेत्र रहीं है। यह भूमि राजनीतिक संघर्ष की भूमि रही है। सामंती समाज में वीरता और श्रृंगार चरम पुरूषार्थ के रूप में स्वीकृत रहै हैं । युद्ध और श्रृंगार में अतिरंजित शेली मिलाकर रासो काव्य की आधारभूमि बनती है। पृथ्वीराज रासो, वीसलदेव रासो, संदेश रासक, परमाल रासो, सुमाण रासो, जयप्रकाश, जयमयंक- जसचन्द्रिका इत्यादि इस परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ है। आदिकाल का केन्द्रीय साहित्य कौन है? इस प्रश्न पर अध्येताओं में अलग-अलग राय है। रामचन्द्र शुक्ल और रामस्वरूप चतुर्वेदी रासो-काव्य को आदिकाल का केन्द्रीय साहित्य मानते हैं। राहुल सांकृप्यायन सिद्ध साहित्य को, हजारीप्रसाद द्विवेदी नाथ साहित्य को तथा गणपतिचन्द्र गुप्त जैन साहित्य को इस काल का

केन्द्रीय साहित्य मानते हैं। खडी़ बोली का प्रारंभिक रूप- परसर्गी का उदय, अपने समय में प्रचलित लगभग छन्दों का प्रयोग तथा धार्मिकता से मुक्त इहलौकि दृष्टिकोण के कारण रासो साहित्य आदिकाल का प्रतिनिधि साहित्य बनता है। रासो काव्य-रूप के स्वरूप का अध्ययन करना यहाँ प्रासंगिक होगा। रास एवं रासो काव्य का परस्पर क्या सम्बन्ध है? अधिकतर विद्वानों ने रास एवं रासो में भेद माना है। क्योंकि एक ओर रास नैतिकता प्रधान एवं वैराग्यमूलक एवं दूसरी और रासो श्रृंगारमूल एवं युद्ध वर्णन प्रधान। इसके अतिरिक्त रास गेयरूपक है तो रासो पाठ्य काव्य। रास के दो साहित्यिक रूपों - **1-** नृत्य एवं गान के लिए तथा **2-** पढ़ने और अभिनय करने के लिए- में से दूसरे काव्य रूप से रासो काव्यों का जन्म हुआ। रासो काव्य रूप बहुत अंशों में गेय एंव अभिनयात्मक होते हुए भी मध्यकालीन चरित काव्य एवं दरबारी कवियों द्वारा ग्रहीत होने के कारण पाठ्य काव्यों की तरह विकसित हुए।

2.4.2.2 भक्तिकालीन साहित्य के काव्य रूप

भक्तिकालीन साहित्य अपनी मूल चेतना में प्रगतिशील तत्वों से आबद्ध था, इसीलिए धर्म को उसने गतिशील अवस्था में स्वीकार किया। आदिकालीन समाज सामंती समाज था। उसके मूल्य भी सामंती थे। भक्तिकालीन समाज भी अपने सामाजिक ढाँचे में सामंती ही था, लेकिन उसने उन सामंती चेतना का प्रतिरोध अपने साहित्य के माध्यम से किया, यही उसकी प्रगतिशीलता थी।

आदिकालीन साहित्य की अंतर्वस्तु एवं काव्य रूप से आप परिचित हो चुके हैं। भक्तिकालीन साहित्य ने विषय वस्तु एवं काव्य रूप दोनों धरातल पर आदिकालीन साहित्य का विस्तार किया। भक्तिकालीन साहित्य अपने तेवर में चार भागों में विभक्त है। यहाँ सुविधा के लिए हम प्रमुख शाखाओं एवं उसके रूपों का अध्ययन करेंगे।

संत काव्य-

भक्तिकाव्य निर्गुण और सुगण काव्यधाराओं में विभक्त है। निर्गुण काव्य को पुनः संतकाल और सूफी काव्य में विभाजित किया गया है। यहाँ हम संत काव्य की विषय वस्तु एवं उसके काव्य रूप को समझने का प्रयास करेंगे। आदिकाल के सिद्ध एवं नाथ साहित्य से संत साहित्य ने सर्वाधिक प्रभाव ग्रहण किया। सिद्ध-नाथ साहित्य का मूल स्वर प्रतिरोधत्मक था। संत काव्य ने इस स्वर को प्रमुखता से अपनाया। सिद्ध साहित्य की अश्लीलता एवं नाथ पन्थ के हठयोग से लगभग मुक्त होते हुए इस काव्य धारा ने सामंती जीवन-मूल्यों का उदान्तीकृत किया।

संत काव्य के अधिकांश कवियों ने मुक्तक काव्य रूप में ही रचना की। प्रबन्ध काव्य रूप का

इस काव्य धारा में अभाव है। ऐसा क्यों हुआ। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस धारा के अधिकांश कवि मूल रूप से संत थे। काव्य रचना उनका अभीष्ट उद्देश्य न था। सामाजिक विषमताओं एवं जीवन के मूल सत्य को दिखाकर उच्च जीवन बोध पैदा करना ही इस धारा के कवियों का उद्देश्य था। प्रबन्ध काव्य के लिए सुचिंतित काव्य-प्रक्रिया की अनिवार्यता होती है। सुचिंतित काव्य-प्रक्रिया के लिए क्रमिक रूप से कथा एवं चरित्र की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रक्रिया में कवि/ लेखक काव्य तत्वों का संचेतन प्रयोग करता है। इसके विपरीत मुक्तक लेखक का काव्य अधिकांशतः तत्कालीन संवेगों से निर्मित होता है। संत काव्य के अधिकांश कवि समाज-सुधारक चेतना' से अनुप्राणित थे इसलिए उनका अधिकांशत साहित्य तत्कालीन संवेगों से निर्मित हुआ है। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि संत काव्य में काव्य रूप संबंधी प्रयोग कम हुए है। काव्य रूप की दृष्टि से संत काव्य पर्याप्त समृद्ध रहा है।

सूफी काव्य

निर्गुण काव्य की दूसरी शाखा सूफी कविता की है। संत मत सामजिक विषमताओं पर केंन्द्रित है तो सूफी काव्य सांस्कृतिक एवं धार्मिक विषमताओं पर। सूफी काव्य के अधिकांश कवि मुस्लिम थे किन्तु उन्होंने अपने काव्य

का विषय लोक प्रचलित हिन्दू कहानियाँ को बनया। हिन्दू तीन-त्यौहार, प्रकृति-पर्यक्षेण, सामाजिक-सांस्कृतिक तथ्यों पर बल, काव्य के प्रति सचेतन दृष्टि एवं कुल मिलाकर के काव्य रचना की विस्तृत तैयारी सूफी कविता के विषय बनते हैं। सूफी कविता के काव्य रूपों में महाकाव्य प्रमुख काव्य रूप है। इसके अतिरिक्त काव्य-रूपों की कुछ अन्य प्रमुख पद्धतियों का भी प्रयोग किया गया है।

डॉ0 रामबाबू शर्मा ने अपनी पुस्तक'हिन्दी-काव्यरूपों का अध्ययन में सूफी कविता को कथा-वार्ता काव्य कहा है। कथा-वार्ता काव्य को उन्होंने दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है। प्रथम भाग को उन्होने रसात्मक कथा-वर्ता काव्य कहा है। इसे विभाजित करते हुए उन्होंने लिखा है- (अ) सूफी प्रेमाख्यान काव्य- इस श्रेणी में कुतुबन कृत मृगावती, मंझन कृत मधुमालती, जायसी कृत पाद्मावत, उखमान कृत चित्रावली तथा शेखनवी कृत ज्ञानदीप आते हैं।

(आ) भारतीय प्रेमाख्यान काव्स- **1.** बात संज्ञक प्रेमाख्यान- नारायण कवि कृत छिताई वार्ता, प्रतापसिंह कृत चन्द' कुंवरि री बात, भद्रसैन कृत चन्दन मलिया गिरि री बात, जान कृत सन्तवन्ती री बात, सदलवच्छ एवं अज्ञात कवि कृत सदैवच्छ सावलिंगा री बात इहा बंध, इस प्रकार की रचनाएँ हैं ।

2- अन्य भारतीय प्रेमाख्यान- असाइत कृत हँसाउली, साधन कृत मैनासत, दामों कृत लक्ष्मणसेन पद्मावती, कल्लोल कृत ढोला मारू रा दूहा, चतुर्भुजदास कृत मुधमालती कथा, गणपति कृत माधवानल प्रबन्ध दोहाबन्ध, हरराज कृत ढोला मारू बानी 'गोविन्दराम कृत हाडा़वती, ईसरदास कृत सत्यवती कथा, कुशललाभ कृत माधवानल कामकंदला, ढोलामारू री चौपाई, बन्ददास कृत रूप मंजरी, जल्ह कृत कुतुव शतक, चेतराम कृत ढोलामारू की कथा, अज्ञान कवि कृत रूपावती, पुहकर कृत रसरतन, काशीराम कृत कनक मंजरी, बैरागी नारायण कृत नलदमयंती आख्यान, सुमतिहंस कृत विनोद रस, जान कव कृत कथा मोहिनी, जटमल कृत
प्रेमविलास एवं गोरा बादल की कथा, इस कोटि की रचनाएँ हैं।

राम भक्ति शाखा (सगुण काव्य)

रामभक्ति शाखा में राम के ब्रह् रूप में उपासना की गई है। राम के चरित्र के माध्यम से मर्यादा की स्थापना करना, परस्पर विपरीत समाजो-परिस्थितियों में समन्वय का प्रयास करना, परविार-कुल-जाति के अन्दर त्याग एवं प्रेम पर बल देना, सामाजिक- सांस्कृतिक उर्ध्वारोहण की प्रक्रिया स्थिर करना, भाषा, शैली की पारम्परिक विरासत को समृद्धता के उच्च धरातल पर पहुँचाना और कुल मिलाकर साहित्य के माध्यम से सांस्कृतिक विस्तार करना- ये ही रामभक्ति शाखा की रचनाओं का प्रमुख उद्देश्य है। इतने बड़े काव्य- उद्देश्य की पूर्ति मुक्तक काव्य रूप के माध्यम से संभव नहीं है। इसीलिए रामभक्ति शाखा के कवियों ने प्रबन्ध काव्य रूपों को अपनी रचना का आधार बनाया। राम भक्ति शाखा की काव्य भाषा अवधी है । रा जन्मस्थान के सांस्कृतिक कारण के लिए, प्रबन्ध काव्य की गंभीरता के लिए अवधी भाषा तथा लोकरक्षक व्यक्तित्व के निर्वाह की दृष्टि से रामभक्ति शाखा के कवियों ने अवधी भाषा एवं प्रबन्ध काव्य रूप का चुनाव किया, जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अनुरूप ही था।

कृष्णभक्ति शाखा

कृष्ण के सगुण, लोकरंजन रूप को लेकर हिन्दी क कृष्णभक्ति काव्य आया। रामभक्ति शाखा के विपरीत कृष्णभक्ति शाखा ने सामाजिक- सांस्कृतिक रूप से अवरूद्ध भारतीय समाज में उल्लास, उमंग, आनमंड जगाने का कार्य किया। रामभक्ति शाखा का बल लोकरक्षा पर था, इस धारा का बल लोकरंजन पर हैं। लेकिन यह लोकरंजन लोकरक्षण से सर्वथा मुक्त नहीं है । कृष्ण की लीलाओं के बीच लोकरक्षा के उपाय भ्ज्ञी चलते रहते हैं। कलिया दमन, पूतना वध, गोवर्धन पर्वत धारण करना जैसे लोकरक्षण कृप्यों के बीच रास लीला, मानलीला, दान लीला, पनघट लीला एवं भ्रमरगीत के प्रसंग भी साथ-साथ ही चलते रहते हैं। इन प्रसंगों में लोकरक्षा का उपाय दब जाता है और लोकरंजन प्रभावी हो जाता है। कृष्णभक्ति शाखा अपनी संरचना में स्वच्छन्द समाज को रचता है लेकिन फिर भी वह

क्या स्वतंत्र है? सामंती जीवन की घुटन एवं सांस्कृतिक पराजय के काल में स्वच्छन्द समाज की रचना करना लोकविरोधी है या रचनात्मक ? कृष्णभक्ति शाखा अपनी रचनात्मकता में कई बार भक्तिकाल के अन्य शाखाओं से ज्यादा रचनात्मक हो उठता है । इस शाखा में मरी (स्त्री-विमर्श) हैं, कृष्णदास (दलित) है ओर रसखान (असाम्प्रदायिक चरित्र) भी है। लेकिन इस शाखा में रामभक्ति शाखा के बहुदेव जैसी उदारता नहीं है। कृष्ण के अतिरिक्त किसी देव में कृष्णोपासक रचनाकारों की आस्था नहीं है।(मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै)/ जैसे उड़ि जहाज का पंछी फिर जहाज पर आवै)। काव्य रूप के धरातल पर भी कृष्णभक्ति शाखा ने एक नये काव्य रूप ' प्रबन्ध मुक्तक' को जन्म दिया। सूर काव्य के संदर्भ में डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा ने लक्षित किया कि वैसे तो सूरसागर के प्रत्येक पद अपने आप में पूर्ण है लेकिन उनमें कथा की एक क्रमिकता भ्झी मिलती है। कृष्णभक्ति शाखा में ज्यादातर पदों की रचना हुई है, जो उसकी विषयवस्तु के अनुकूल है।

रीतिकालीन साहित्य एवं काव्य रूप-

रीतिकालीन साहित्य राजाश्रयी या दरबारी काव्य है। दरबारी काव्य का आशय ऐसे काव्य से है जो राजाओं के संरक्षण में रहकर लिखा गया है रीतिकालीन साहित्य का मूल वर्ण्य-विषय रीति-निरूपण, श्रृंगारिकता अलंकार, निरूपण, नायिका-भेद, दरबारीयन, अतिश्योक्ति एवं राजस्तुति रहै हैं।

रीतिकालीन साहित्य चूँकि आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा और उनको प्रसन्न करने के लिए अधिकांश में लिखा गया है इसलिए इसके स्वरूप में चमत्कार एवं अलंकरण की प्रवृत्ति हमेशा मिलती है। श्रृंगार, रीति एवं अलंकार के ग्रन्थ मुक्तक रूप में लिखे गये हैं जबकि अतिश्योक्ति एवं प्रशंसा से युक्त चरित प्रबन्ध काव्य में। व्यक्तित्व विश्लेषण मुक्तक में संभव भी नहीं है।

2.4.3 पद्य साहित्य का आधुनिक स्वरूप

हिन्दी पद्य साहितय का इतिहास लगभग **1000**वर्षों का है। आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल तक काव्य की मूल चेतना सांमती रही है। आदिकालीन कविता के केन्द्र में शौर्य-युद्ध-श्रृंगार रहा है। भक्तिकालीन कविता के केन्द्र में भक्ति-नीति-लोक तो रीतिकालीन कविता के केन्द्र में रीति-निरूपण, श्रृंगार एवं दरबारीपन। विषय वस्तु के अनुरूप ही हिन्दी कविता के काव्य रूप भी परविर्तित होते रहै हैं। चरित काव्य प्रबन्ध के रूप में लिखे गये जबकि नीति-श्रृंगार पर टिप्पणी मुक्तक रूप में। प्रबन्ध एवं मुक्तक काव्य रूप के अवान्तर भेद भी किये गये हैं- जैसे संपूर्ण राजनीतिक- सामाजिक परिदृश्य को केन्द्र में रखकर' पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य लिखा गया और किसी एक व्यक्तित्व को अतिश्योक्तिपूर्ण ढंग से बढा़-चढा़ करके लिखने की प्रवृŸिा से 'चरित काव्य' जैसे काव्य रूप निर्मित हुए। उसी प्रकार मुक्तक काव्य- रूपों में भी विषय वस्तु के अनुरूप वर्गीकरण हुए । जैसे तत्कालीन समाज पर की गई टिप्पणियों के लिए सिद्ध-नाथ एवं संत काव्य में दोहै (साखी) काव्य रूप का व्यवहार हुआ तथा आत्मनिवेदन एवं साधनात्मक-रहस्यात्मक भावेद्रेक के लिए मपद काव्य रूप् का चुनाव किया गया। स्पष्टतया हम देख सकते हैं कि विषय वस्तु एवं काव्य रूप का अन्योन्याश्रित संबंध है।

हिन्दी पद्य साहित्य का आधुनिक युग **1850**ई0 के बाद शुरू होता है। पुनर्जागरणकालीन चेतना के प्रभाव से कविता की धारा भक्ति-नीति-श्रृंगार से हटकर राष्ट्रीयता-समाज सुधार एवं प्रकृति की ओर मुड़ जाती है। हिन्दी कविता में यह परिवर्तन क्रमशः होता है। **1850** से लेकर **1900** ई0 तक के समय को हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि के रूप में देखा जाता है। इस समय में कविता के विषय भक्ति-नीति -श्रृंगार- समस्यापूर्ति इत्यादि ही चलते रहै । हिन्दी कविता अपने विषय के अनुरूप् काव्य रूप तलाश रही थी। हिन्दी कविता को अपने काव्यरूप को तलाशने में **50** वर्ष से भी ज्यादा समय लगे । प्रारम्भ में महाकाव्य के विधान, खण्डकाव्य के रूप ही चले (प्रियप्रवास, भारत-भारती, रंग में भंग इत्यादि) क्योंकि इसे परम्परागत काव्य रूपों से संभव नहीं था। द्विवेदी युग (लगभग **1916-18** ई0 तक) की समाप्ति तक

हिन्दी कविता का काव्य - रूप स्थापित हो चुका था। छायावादी कविता ने काव्यरूपों के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किया। **1916** में निराला द्वारा लिखी गई 'जूही की कली कविता से युक्त छंद की शुरूवाद मानी जाती है ।

2.5 **सारांश**

यह इकाई हिंदी काव्य रूपों की विकास यात्रा से संबंधित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि-

- आपने जाना कि पद्य साहित्य के उदय के तात्विक कारण बदलती सामाजिक अभिरूचि व बदलती भौतिक परिस्थिति रही है।
- आपने पद्य साहित्य के वर्गीकरण को समझा ..... आपने जाना कि पद्य साहित्य की सारी विधाएँ एक-दूसरे में किस प्रकार अंतर्ग्रथित है।
- काव्य के प्रमुख भेद- कोश, प्रबन्ध एवं गेय काव्यरूपों के भेदों का आपने अध्ययन किया ।
- वैदिक साहित्य से लौकिक संस्कृत की यात्रा व काव्य रूपों की उत्पत्ति को आपने जाना।
- पद्य साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते हुए आपने प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक काव्य रूपों का अध्ययन किया। सामाजिक परिवर्तन के साथ काव्य रूपों का परिवर्तन कैसे होता है ? इसका आपने अध्ययन किया।
- अलग-अलग काव्य प्रवृत्ति से काव्य रूप कैसे भिन्न हो जाते हैं, इस तथ्य का आपने अध्ययन किया ।

2.6 **शब्दावली**

- प्रबन्ध - रचना का व्यवस्थित रूप, जिसमें एक कथा का विस्तार हो।
- मुक्तक - अपने आप में स्वतंत्र रचनाओं का संग्रह/अपने आप में स्वतंत्र रचना, जिसमें किसी कथा का विकास न हो।
- खण्डकाव्य - किसी एक नायक, घटना को केंद्रित करके लिखा गया प्रबन्ध काव्य
- महाकाव्य - जीवन समाज को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने वाला काव्य रूप
- कोश -जीवन-समाज-साहित्य के तथ्यों को एक साथ रखने का रचनात्मक प्रयास।
- महासुखवाद -सिद्ध साहित्य के ब्रजयान संप्रदाय में स्त्री-पुरूष युगलबद्ध रूप की कल्पना
- बाह्यचार -बाहरी रूढ़ियाँ व प्रथाएँ
- सुचिंतित - अच्छे से सोचा हुआ।

2.7 **अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

(क) 1- सही
2- सही
3- गलत
4- गलत
5- गलत

(ख) (1)
1- कोश

2- प्रबन्ध

3- लौकिक

4- गेय

5- कोश

(2) आत्मप्रकाशन, प्रामाणिकता, वस्तुनिष्ठता, सृजनात्मकता

2.8 **संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1.हिंदी-काव्योंरूपों का अध्ययन - शर्मा, रामबाबू

2.आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास- नवल, नंदकिशोर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

2.9 **सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री**

1. हिंदी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

2.10 **निबन्धात्मक प्रश्न**

1. हिंदी काव्यरूपों की परम्परा को रेखाकिंत कीजिए।
2. काव्यरूप और समाज पर निबंध लिखिए।

इकाई 3 – **महाकाव्य एवं खण्डकाव्य की सैद्धान्तिकी**

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 साहित्यशास्त्र (काव्यरूप) की आवश्यकता
3.4 महाकाव्य एवं खण्डकाव्य
3.5 महाकाव्य एवं खण्डकाव्य: इतिहास
3.5.1. महाकाव्य
3.5.1.1 भारतीय महाकाव्य
3.5.1.2 पाश्चाव्य महाकाव्य
3.5.2 खण्डकाव्य
3.5.2.1 भारतीय खण्डकाव्य
3.5.5.2. पाश्चव्य खण्डकाव्य
3.6 हिन्दी के प्रमुख महाकाव्य/खण्डकाव्य
3.6.1. हिन्दी के प्रमुख महाकाव्य
3.6.2. हिन्दी के प्रमुख खण्डकाव्य
3.7 सारांश-
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावनाः-

जैसा कि डॉ0 सत्येन्द्र ने लिखा है- किसी भी काव्य की अनुभूति क स्फुरण के साथ ही काव्य-रूप का भी उद्भव होता है। काव्य केवल शब्दों, वाक्यों और छन्दों में ही नहीं काव्य रूपों में भी बँध कर प्रकट होता है। काव्य-रूप के साथ काव्य का निजी व्यक्तित्व खड़ा होता है। स्पष्ट है कि अनुभूति और काव्य-रूप का अभिन्न सम्बन्ध है। जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के पीछे सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक-राजनीतिक बदलाव की भूमिका होती है और साहित्य में परिवर्तन जनता के चित्तवृत्ति परिवर्तन के साथ ही होता है। यानी सामाजिक परिवर्तन जनता की चित्तवृत्ति से सीधे जुड़ा हुआ है कि साहित्यिक परिवर्तन जनता की चित्तवृत्ति से यही कारण है कि साहित्यिक परिवर्तन सीधे घटनाक्रम से नहीं जुड़ पाते। साहित्य के समाजशास्त्र पर कार्य करने वाले अध्येता अक्सर इस प्रश्न से टकराते रहते हैं कि प्रमुख घटनाक्रम पर कोई साहित्य (कविता, कहानी, उपन्यास आदि) क्यों नहीं लिखा गया? इस प्रश्न का तत्कालिक उत्तर यही हो सकता है कि घटना के परिवेश बनने और साहित्यकार के परिवेश से जुड़ने और उसे अनुभूतिबद्ध करने तक लम्बी प्रक्रिया चलती रहती है। इस प्रक्रिया में लेखक की अनुभूति और सामाजिक गति (जनता की चित्तवृत्ति में परिवर्तन) में जब सामजस्य नहीं बैठ पाता था जब लेखक को लगता है कि बदले हुए युग की अनुभूति पुराने काव्यरूप में नहीं बैठ (फिट) पा रही है तो लेखक काव्यरूप में नये प्रयोग करता है। पुराने काव्यरूप से नये काव्यरूप में रूपान्तरण की यह संक्षिप्त व्याख्या है ।

आपने पूर्व की इकाईयों में काव्यरूप का इतिहास एवं उसके वर्गीकरण का अध्ययन किया। आपने काव्यरूपों के इतिहास के क्रम में देखा कि कविता सबसे पुराना काव्यरूप है। कविता का प्राचीन काव्यरूप महाकाव्य के रूप में मिलता है। भारतीय महाकाव्यों की परम्परा में रामायण, महाभारत, रघुवंश इत्यादि महाकाव्य प्रसिद्ध रहै हैं। इसी प्रकार पश्चिमी परम्परा में होमर का इलियड, ओडिसी, डिवाइन कॉमेडी इत्यादि महाकाव्य प्रसिद्ध रहै । महाकाव्यों की समृद्ध परम्परा भारत एवं पश्चिम दोनों के साहित्य में पायी जाती है और यह परम्परा अपने परिवर्तित-विकसित रूप में आधुनिक काल तक चलती है। महाकाव्य काव्यरूप आदर्शवादी युग की निष्पत्ति हैं। जब समाज में व्यक्तित्व-मूल्य को बढ़ा-चढ़ा करके दिखाने से सामाजिक रूप् से परिवर्तन की संभावना हो तब महाकाव्य काव्य-रूप प्रासंगिक हो उठता है। महाकाव्य में जीवन को व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखने-दिखाने का प्रयास किया जाता है। यह प्रयास लेखक कैसे करता है? इसे हम आग देखेंगे।खण्डकाव्य महाकाव्य का ही एक रूप है। महाकाव्य की अपेक्षा खण्डकाव्य का रूप सीमित होता है। इसमें किसी एक नायक केंन्द्र में रखकर कथा लेखक अपनी रचना को रूप देता है। महाकाव्य की अपेक्षा खण्डकाव्य का जीवन का विस्तार सीमित होता है। एक प्रमुख नायक के माध्यम से किसी खास मनोभूमि, चरित्र पर प्रकाश डालना ही खण्डकाव्य का उद्देश्य होता है। भारतीय साहित्य परम्परा में खण्डकाव्य की समृद्ध परम्परा मिलती है। काव्य-रूपों के इतिहास के क्रम में महाकाव्य-खण्डकाव्य का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन हम आगे के बिन्दुओं में करेंगे।

3.2 उद्देश्यः-

यह खण्ड पद्य साहित्य के तात्विक विवेचन पर केंद्रित है। इस खण्ड की यह तीसरी इकाई-महाकाव्य एवं खण्डकाव्य की सैद्धान्तिक पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आय-

- महाकाव्य की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- खण्डकाव्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- प्राचीन एवं आधुनिक महाकाव्यों का अंतर समझ सकेंगे।
- प्राचीन एवं आधुनिक महाकाव्यों का अंतर समझ सकेंगे।

- पाश्चाव्य एवं भारतीय महाकाल एवं खण्डकाव्य परम्परा से परिचित हो सकेंगे।
- प्रमुख महाकाव्यों के आलोक में समाज एवं संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- महाकाव्य एवं खण्डकाव्य के माध्यम से लेखकीय अनुभूति एवं काव्यरूपों के अंर्तसम्बन्ध को समझ सकेंगे।

3.3 साहित्यशास्त्र (काव्यरूप) की आवश्यकता

प्रस्तावना में आपने अध्ययन किया कि नये काव्यरूपों के गठन में जब बदली हुई सामाजिक रूचियों से लेखकीय प्रतिभा का संयोग होता तब नया काव्यरूप अस्तित्व लेता है। यहाँ हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि साहित्य शास्त्र क्या है? और किसी समाज-साहित्य परम्परा को साहित्य शास्त्र की आवश्यकता क्यों पड़ती है? साहित्य क्या है? तथा इसके विविध रूपों से आप परिचित हो चुके हैं। यहाँ हम साहित्यशास्त्र को समझने का प्रयास करंगे। जिस प्रकार साहित्य जीवन के व्यवहार का चित्र है उसी प्रकार साहित्यशास्त्र इस व्यवहार-चित्र का सिद्धान्त है। साहित्य जीवन में निर्वन्ति है तो साहित्यशास्त्र जीवन का अनुशासन है। जिस प्रकार भाषा का ब्याकरण होता है, अनुशासन होता है उसी प्रकार साहित्य का भी ब्याकरण होता है, अनुशासन होता है। साहित्य के ब्याकरण एवं अनुशासन को ही 'साहित्यशास्त्र' की संज्ञा दी गई है। साहित्य (जीवन) और शास्त्र (सिद्धान्त) का युग्म ही साहित्यशास्त्र है। अपने व्यापक रूप में इसीलिए साहित्यशास्त्र जीवन सिद्धान्त ही है। साहित्य के माध्यम से जीवन एवं समाज के अनुशासन को समझना ही साहित्यशास्त्र का मूल-धर्म है।

हर काव्यरूप अपनी संरचना-बनावट एवं गुण-धर्म में दूसरे कालरूप् से भिन्न होता है। काव्य की यह भिन्नता सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव और लेखक की अनुभूति की अभिव्यक्ति पर भी निर्भर करती है। सामाजिक परिवर्तन के अनुरूप अनुभूतिगत वैविध्य और अभिव्यक्तिगत भिन्नता के कारण काव्यरूपों का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहता है (इसलिए प्राचीन एवं नवीन महाकाव्यों के सिद्धान्त में अंतर आ गया है), ऐसी स्थिति में कलारूप की समझ के लिए काव्य रूपों के सैद्धान्तिकरण का प्रश्न पैदा होता है। काव्य रूपों के सैद्धान्तिक विवेचन को साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत विश्लेषित किया जाता है। किसी भी काव्य रूप के लक्षण क्या हैं? उसके तत्व क्या हैं? उसकी सामाजिक उपयोगिता क्या है? उस काव्य रूप का दूसरे काव्यरूप से भिन्नता का धरातल क्या हैं? काव्यरूप के संदर्भ में साहित्यशास्त्र का प्रश्न इसीलिए अनिवार्य हो जाता है कि- काव्यरूप के अनुशासन के माध्यम से जीवन का अनुशासन पैदा किया जाता है ।

3.4 महाकाव्य एवं खण्डकाव्य

महाकाव्य महाकाल संबधी शास्त्रीय विचार संस्कृत काव्यशास्त्र में विस्तार से मिलता है। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' के षष्ठः परिच्छेद में महाकाव्य के लक्षणा पर विचार करते हुए लिखा है-

''सर्गबन्धों महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।। **315**।।

सइंशः क्षत्रियों वापि धीरोदान्तगुणान्वितः । एकवंशभवा-नामेकोऽगी रस इष्यते। अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्ने नाटकअंधयः ।। **317**।।

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रवम्।

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेस्वेकं च फलं भवेत्।।

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा। क्कचिन्निन्दा जलादिनां सतां च गुणकीर्तनम्।। एकवृत्तयैः पद्यैरवसनिऽन्य-वृत्तकैः। नातिस्वल्पा नातिदीर्धाः सर्गा अष्टाधिका इह।।**320**।।

नानावृत्तमयः क्कापि सर्गः कश्चन हृश्यते । सर्गान्ते भाविसर्गस्य कंथायाः सूचनं भवेत्।। संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः। प्रातर्मध्याहृमृगयाशैलर्तुवनसागराः।।**321**।।

संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः। रणप्रयाणोपयममन्त्र-पुत्रोदयादयः ।।**323**।।
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अगी इह । कवेवृर्त्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।।**324**।।
नामास्य, सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु । सन्ध्यंङानि यथालाभमन्न विधेयाति अवसानेङन्यवृत्तकैः इति बहुवचनमविवक्षितम्। सागङोपागङा इति जलके लिंग्धुपानाट्यं। यथा- रघुवंश-शिशुपाल वध- नैषघाट्यः यथा वा मम- राघव विलासादिः।आस्मिनार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंकाः **11325**।। अस्मिन्महाकाव्ये। यथा- महाभारतम् ।

(सर्गोति- जिसमें सर्गों का निबन्ध हो वह महाकाव्य कहलाता है। इसमें एक देवता या सदेश क्षत्रिय - जिसमें धीरादात्तत्यादि गुण हों- नायक होता है। कहीं एक वंश के सत्कुलिन अनेक भूप भी नायक होते है । श्रंगार, वीर और शान्त में से कोई एक रस अगड़ी होता है। अन्य रस गौण होते हैं । सब नाटक सन्धियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्ध सज्जनसम्बन्धियों होती है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुवर्ग में से एक उसका फल होता है। आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य वस्तु का निर्देश होता है। कहीं फलों की निन्दा और सज्जनों का गुण वर्णन होता है । इसमें न बहुत छोटे, न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। उनमें प्रत्येक में एक ही छन्द होता है, किन्तु अंतिम पद्य (सर्ग का) भिन्न छनद का होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए। इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याहन, मृगया शिकार, पर्वत, ऋतु (छहों), वन समुद्र, संभोग, वियोग मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव सागङोपाङ वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से (जैसे माघ) या चरित्र के नाम से (जैसे कुमारसंभव) अथा चरित्रनायक के नाम से (जैसे रघुवंश) होना चाहिए। कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है- जैसे भट्टटि। सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रखा जाता हैं । अवसाने यहाँ बहुवचन की विवक्षा नहीं है- यदि एक या दो भिन्नकुल हो तो भी कोई हर्ज नहीं । जलक्रीड़ा, मधुपानादिक साहदोपाद होने चाहिए । महाकाव्य के उदाहरण जैसे रथुवंशादिक ।महाकाव्य सम्बन्धी यह लक्षण प्राचीन महाकाव्यों पर तो हू-व-हू लागू किया जा सकता ह लेकिन इसे आधनिक महाकाव्यों पर हू-व-हू लागू नहीं किया जा सकता । शास्त्रीय लक्षणों के संकेत से महाकाल का युग-संदर्भनुकूल लक्षण निर्धारित किया जा सकता हैं।

खण्डकाव्य की विशेषताएँ

1. महाकाव्य की अपेक्षा इसका स्वरूप छोटा होता है ।

2. महाकाव्य में पूरे सामाजिक परिवेश-संसकृति को उभारना लेखक का उद्देश्य होता है जबकि खण्डकाव्य में लेखक का उद्देश्य अपने चरित्र नामक के व्यक्तिगत को उभारना ।

3. महाकाव्य में कई पात्र, कई नायक होते हैं जबकि खण्डकाव्य के पात्रों की संख्या सीक्षित होती है तथा इसमें एक ही मुख्य नायक होता हैं

4. महाकाव्य की तरह इसमें भी प्रकृति वर्णन होता है ।

5. खण्डकाव्य में संर्गों की संख्या तक हो सकती है।

3.5 भारतीय महाकाव्य

भारतीय महाकाव्यों की परम्परा संस्कृत भाषा में से मिलती है। वैदिक संस्कृत की स्तुति परम्परा एवं चितंन (वेद-उपनिषद्) से आगे लोक-समाज की संस्कृति-चितंन को लेकर लौकिक संस्कृत अपना स्वरूप प्राप्त करती है। वैदिक संस्कृति में धार्मिक तत्वों की बहुलता थी, दर्शन के गूड प्रश्नों का उत्तर तलाशने की छटपटाहट थी। कुल मिलाकर वैदिक संस्कृति का स्वरूप धार्मिक, बौद्धिक-दार्शनिक ही ज्यादा था। लौकिक संस्कृत में ''लौकिक'' शब्द ही इस बात को ध्वनित करता है कि इसमें लोक के प्रश्नों से टकराने की ज्यादा चिंता है। संसकृत महाकाव्य का संबध लौकिक संस्कृत से ही है।

महाभारत

महाभारत विश्व का सर्वाधिक विस्तृत महाकाव्य है, जिसकी श्लोक संख्या **2** लाख के लगभग है। यह महाकाव्य **18** दिन का युद्ध है जो कौरूओं और पाण्डवों के मध्य लड़ा गया किन्तु इसका मूल प्रतिपाद्य अधर्म पर धर्म की विजय ही है। इस प्रतिपाद्य में धर्मशास्त्र राजनीति, लोक जनजाति, इतिहास, दर्शन इत्यादि सभी शामिल हैं।

रामायण

रामायण को भारतीय साहित्य परम्परा का आदिकाल कहा गया है, संभवतः विश्व साहित्य का
भी यह सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है। रामायण में **2400** श्लोक हैं सातकाण्डों (अध्यायों) में विभक्त है। रामायण में राम कथा के माध्यम से मर्यादा, आदर्श की स्थापना करना कवि बाल्मिकि का उद्देश्य रहा है। नायक राम सात्विक वृत्तियों के तथा खलपात्र रावण आसुरी या प्रतिगामी वृत्तियों
के प्रतीक के रूप में हमारे सामने आते हैं।

महाकाव्य और कालीदास

महाकाव्य परम्परा में कालिदास अपनी शैली, औदार्व्य के कारण विशेष रूप से चर्चित और समद्रत रहै हैं। रामायण, महाभारत महाकाल के मूल में धर्म, नीति की स्थापना करना रहा है, उससे हटकर कालिदास ने व्यक्तित्व स्थापन एवं रोमांसिक वृत्ति को (जो सामान्य जल के ज्यादा निकट है) प्रतिष्ठापित किया। कालिदास द्वारा लिखित दो महाकाव्य चर्चित रहै है- कालिदास और कुमार संभव रघुवंश में रघुकुल का वर्णन है। यह **19** सर्गों का महाकाव्य है। इस महाकाव्य में राम के जीवन वृत्त के साथ ही-साथ उनके पूर्वज तथा उत्तराधिकारीयों के जीवन वृत्त एवं कृतित्व का औदाव्यपूर्ण शैली में वर्णन किया गया है। रघुवंश अपनी उपमाओं के लिए प्रसिद्ध रहा है। रघुवंश के नायक अपनी, वीरता पुरूषत्व के बावजूद सामान्य मनुष्य के रूप में हमारे सामने आते हैं।

कुमारसम्भव

कुमारसम्भव महाकाव्य **17** सर्गों में लिखा महाकाव्य है जो युद्ध के देवता कार्तिकेय पर आधारित है। प्रथम सात सर्गों में कुमार कार्तिकेय के माता-पिता शिव और पार्वती के परस्पर प्रभ्य और विवाह पर केंन्द्रित हैं। अंतिम **10** सर्ग कार्तिकेय पर आधारित है। तारक राक्षस के विनाश के वर्णन के साथ महाकाव्य समाप्त होता है।

भट्टिकाव्य

यह महाकाव्य लगभग **7** वीं शताब्दी में वलभी राजा श्रीधरसेंन के तत्वाधान में भतृहरि द्वारा लिखा गया है। इस महाकाव्य में **22** सर्गों में राम कथा वर्णित है। इस काव्य का मुख्य उद्देश्य संस्कृत व्याकरण के रूपों का उदाहरण देना भी रहा है।

3.5.1 **खण्डकाव्य**

खण्डकाव्य की परम्परा भारत एवं पश्चिम दोनों जगह के साहित्य में मिलती है। पश्चिम की अपेक्षा भारतीय साहित्य में खण्डकाव्य के लक्षणों के बारे में ज्यादा स्पष्ट ढ़ंग से वर्णन किया गया है और यह परम्परा प्राचीन भी है। चूँकि खण्डकाव्य प्रबन्ध काव्य परम्परा की रचना है और महाकाव्य विधा से इसका निकट का संबंध है इसीलिए स्वाभाविक है कि महाकाव्य एवं खण्डकाव्य के लक्षणों में काफी समानता मिले। खण्डकाव्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है- ‘‘मोटे ढ़ंग से कहा जा सकता है कि खण्डकाव्य एक ऐसा पद्यबद्ध है जिसके कथानक में इस प्रकार की एकात्मक अन्विति हो कि उसमें अप्रांसगिंक कथाएँ सामान्य तथा अन्तर्मुक्त न हो सकें, कथा में एकांगिंता हो। साहित्यदर्पणकार के अनुसार खण्डकाव्य को कथा में एकदेशीयता पर बल होता है। इसकी कथा विन्यास क्रम में आरम्भ, विकास, चरमसीमा और निश्चित उद्देश्य पर बल होता है। चूँकि कथा में एकदेशीयता इसका गुण होता है इसलिए इसका आकार महाकाव्य की तुलना में संक्षिप्त होता है। खण्डकाव्य में महाकाव्य की तुलना में भावात्मक

तत्वों की प्रबलता होती है। महाकाव्य में जीवन को बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश होती है जबकि खण्डकाव्य में जीवन को किसी विशिष्ट व्यक्तित्व, घटना, परिस्थिति, विचार, दर्शन के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। इसलिए खण्डकाव्य की तुलना में महाकाव्य में वस्तुनिष्ठता का तत्व ज्यादा प्रबल होता है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने खण्डकाव्य पर चर्चा करते हुए लिखा है- महाकाव्य के ही ढंग पर जिस काल की रचना होती है, पर जिसमें पूर्ण जीवन ग्रहण करके खण्ड जीवन ही ग्रहण किया जाता है उसे खण्डकाव्य कहते है। यह खण्ड जीवन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वतः पूर्ण प्रतीत होता है। स्पष्ट है कि खण्डकाव्य में नायक का भी संपूर्ण जीवन चित्रित हो यह आवश्यक नहीं। इस प्रकार खण्डकाव्य में किसी विशिष्ट व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक समस्या पर प्रकाश डालना तथा उस व्यक्तित्व के जीवन के किसी विशेष खण्ड पर प्रकाश डालना ही खण्डकाव्य की प्रमुख विशेषता है। हिंदी साहित्य कोश में खण्डकाव्य के लक्षण पर विचार करते हुए लिखा गया है कि- ‘‘जिन प्रबंधकाव्यों में महाकाव्य के लक्षण (सहचरित्र, समग्र, युगजीवन, महत् उद्देश्य, गरिमामय शैली) नहीं मिलते, वे चाहें आकार में बड़े हो या छोटे, चाहै आठ से कम सर्गवाले हो या अधिक सर्गवाले, महाकाल नहीं माने जायेंगे। ऐसे प्रबंधकाव्य दो प्रकार के होते हैं- एक तो वे जिनमें किसी व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का चित्रण होता है, पर समग्र युगजीवन का चित्रण नहीं होता और न महाकाव्य के अन्य सभी लक्षण पाये जाते हैं। दूसरे वे जिनमें जीवन का खण्ड दृश्य चित्रित होता है और जो कथावस्तु की लघुता तथा उद्देश्य की सीमाओं के कारण वृहदाकार तथा महान् नहीं बन पाते। इनमें से प्रथम प्रकार के प्रबंधकाव्य को एकार्थकाव्य और दूसरे को खण्डकाव्य कहना उचित है। ‘‘इस संबंध में आगे लिखा गया है- बाह्य रूप रचना संबधी सर्गबद्धता का नियम जिस प्रकार महाकाव्य की रचना में पालन नहीं किया जा सकता, इसी प्रकार खण्डकाव्य के लिए भी यह नहीं कहा जा सकता है कि उसकी वस्तु भिन्न सर्गों में अनिवार्य रूप से विभाजित होनी चाहिए। सर्गों की संख्या निर्धारित करना और भी अंप्रासंगिक है। साधारण तथा खण्डकाव्य में छंदों की विविधता नहीं होती, प्रायः संपूर्ण काव्य एक ही छंद में रचा जाता है। परन्तु इनके अपवाद भी हैं। बीच-बीच में गीतों का प्रयोग भी खण्डकाव्य की विशेषता कही जा सकती है।’’

महाकाव्य और खण्डकाव्य के स्वरूप पर डॉ0 सत्यदेव चौधरी ने भी विचार किया है। उन्होंने कथानक, पात्र, रस, छंद एवं प्रभाव के धरातल पर दोनों अनुशासनों की तुलना की है। महाकाल का कथानक जहाँ विस्तृत होता है। मुख्य-कथा के साथ इसमें प्रासंगिक कथाएँ भी चलती रहती हैं। इसके विपरीत खण्डकाव्य में केवल मुख्य कथा का ही महत्व होता है। ऐसा नहीं है कि इसमें प्रासंगिक कथायें आती ही नहीं हैं लेकिन इन कथाओं का मुख्य कथानक की गति में बहुत भोग होता है और ये बहुत देर तक या दूर तक कथानक के साथ नहीं चलती हैं जबकि महाकाव्य की प्रासंगिक कथाएँ स्वतंत्र रूप से चलती हैं, दीर्घ चलती हैं और कई कथाओं का तो मुख्य कथानक से बहुत अनिवार्य संबंध नहीं होता है। इस प्रकार पात्र योजना के संदर्भ में भी उन्होंने विभेद किया है। महाकाव्य में पात्रों की संख्या सैकड़ों में होती है, जबकि खण्डकाव्य के पात्र सीमित होते हैं। महाकाव्य में मुख्य पात्र (नायक) भी नहीं होते हैं या हो सकते हैं जबकि खण्डकाव्य का नायक ही मुख्य पात्र होता है, बाकि पात्र गौण होते हैं और उनका कथानक की गति में बहुत योग नहीं होता है। शास्त्रीय परम्परा में नायक का कुलीन होना बताया गया था। लेकिन आधुनिक काल में सामान्य, उपेक्षित पात्रों को लेकर भी महाकाव्य लिखे जाने की प्रस्तावना की गई हो। भारतीय खण्डकाव्य में तो सामान्य पात्रों को सफलतापूर्वक नायकतत्व प्रदान किया गया है। इसी प्रकार रस, छंद के नियम में

भी महाकाव्य एवं खण्डकाव्य में समानता नहीं है। महाकाल में श्रृंगार, वीर एवं शांत इन रसों में एक रस को अंगीरूप में होना अनिवार्य बताया गया है जबकि खण्डकाव्य के लिए ऐसी कोई शर्त नहीं है।

अभ्यास प्रश्न 1

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. महाकाव्य में ----------से अधिक सर्ग होने चाहिए। **(8/10/12)**

2. महाभारत की सर्ग संख्या -------- हैं। **(18/20/25)**

3. रामायण में ----- काण्ड हैं। (आठ/छः/सात)

4. रघुवंशम् ------ सर्गों का महाकाव्य है। **(25/27/19)**

5. कुमार संभव ----- सर्गीं का महाकाव्य है। **(17/20/25)**

(ख) सही (√) गलत (×) का चुनाव कीजिए।

1. भट्टिकाव्य के रचयिता भतृहरि हैं। ( )

2. भ्रमरदूत खण्डकाव्य के रचयिता सत्यनारायण कविरत्न हैं। ( )

3. खण्डकाव्य प्रबन्ध काव्य है। ( )

4. महाकाव्य प्रबन्ध काव्य है। ( )

5. खण्डकाव्य में एक ही नायक होता है। ( )

3.5.2 खण्डकाव्य: इतिहास में

खण्डकाव्य की विधागत स्थापना संस्कृत काव्य परम्परा तक जाती है लेकिन इसका वास्तविक रूप आधुनिक काल में देखने को मिलता है। आधुनिक काल से पूर्व मध्यकाल के हिंदी साहित्य में खण्डकाव्य की समृद्ध परम्परा देखने को मिलती है। सुदामाचरित्र, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, रूक्मिनी मंगल आदि को खण्डकाव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

रीतिकाल में भी वर्णनात्मक प्रबन्ध के अन्तर्गत दानलीला, मानलीला, जलविहार, वनविहार, होली वर्णन, जन्मोत्सव वर्णन, मंगल वर्णन इत्यादि वर्णनात्मक प्रबन्ध लिखे गये थे। वस्तुतः खण्डकाव्य लेखन की दिशा में आधुनिक काल में आकर अभूतपूर्व प्रगति होती हैं भारतेन्दु युग साहित्यिक विधाओं की उत्पत्ति का काल कहा जाता हैं निबन्ध, उपन्यास, कहानी, आत्मकथा, यात्रासाहित्य, समालोचना इत्यादि विधाएँ भारतेन्दु काल में ही सर्वप्रथम अस्तित्व गृहण करती हैं इन गद्य विधाओं के अतिरिक्त काव्यगत संस्कार की दृष्टि से भी भारतेन्दु युग का महत्वपूर्ण योगदान है। चाहै वह कविता हो या खण्डकाव्य। ब्रजभाषा में लिखित श्रीधर पाठक के एकान्तवासयोगी, जगत सच्चाई सार को कुछ लोग खण्डकाव्य के अंतर्गत रखते हैं। इस संबंध में द्विवेदी युग में विशेष प्रगति होती हैं द्विवेदी युग के प्रतिनिधि साहित्यकार मैथिलीशरण गुप्त का स्थान इस दृष्टि से सर्वोच्च है। गुप्ताजी ने कई खण्डकाव्य की रचना पर खण्डकाव्य विधा को पर्याप्त विकसित करने में अपनी भूमिका का निर्वहन किया है। रंग में भंग, पंचवटी, जयद्रथवध, वनवैभव, बकसंद्वार, हिडिम्बा, सिद्धराज, बहुष, विष्णु प्रिया रजावली आदि उनके प्रसिद्ध खण्डकाव्य हैं। मैथिलिशरण गुप्त जी के खण्डकाव्य का क्षेत्र व्यापक है। गुप्त जी ने पौराणिक, ऐतिहासिक पात्रों को आधार बना करके अपने खण्डकाव्यों की रचना की है। द्विवेदी युग में लिखे गये अन्य खण्डकाव्यों में प्रसिद्ध हैः-

- पवनदूत -------- रामचरित उपाध्याय
- सती सावित्री -------- गिरधर शर्मा

- सुपनाल -------- अनुप शर्मा
- भ्रमरदूत -------- सत्यनारायण कविरत्न
- मौर्य विजय, नकुल -------- सियारामशरण गुप्त

आधुनिक हिंदी साहित्य में छायावाद का स्थान अपनी गीताप्मकता, कल्पना-वैभव, लाक्षमिकता, भाषा की सूक्ष्मता, प्रेम की उदात्रता के कारण सर्वोच्य रहा है। छायावाद की मुख्य उपलब्धि उसके गीत, कविता एवं महाकाव्य रहै हैं, लेकिन इस काल में कुछ महत्वपूर्ण खण्डकाव्य भी लिखे गये हैं जो खण्डकाव्य परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। छायावाद युग के खण्डकाव्य लेखकों में रामनरेश त्रिपाठी, प्रसाद, निराला, सुमित्रानन्दन पंत इत्यादि लेखकों ने आगे बढ़ाया। इनमें रामनरेश त्रिपाठी का महत्वपूर्ण योगदान है। त्रिपाठी जी के महत्वपूर्ण खण्डकाव्यों में मिलन, स्वप्न, पथिक रहै हैं। रामनरेश त्रिपाठी के खण्डकाव्य प्राचीन शैली से भिन्न रहै हैं । मनोचरित्र, प्रकृति, काल्पनिक पात्र, राष्ट्रभक्ति जैसे अमूर्त चरित्रों की रामनरेश त्रिपाठी ने सृष्टि की है। जयशंकर प्रसाद ने 'प्रेम पथिक' नामक खण्डकाव्य की रचना की तो सुमित्रानन्दन पंत ने 'ग्रन्थि' की। निराला ने तुलसीदास के चरित्र को लोक और संस्कृति के तत्वों से संयुक्त करके एक नया रूप दिया है। छायावाद युग के ही प्रसिद्ध लेखक डॉ0 राजकुमार वर्मा ने खण्डकाव्य को ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान किया। 'चित्तौड़ की चिंता' वर्मा जी का प्रसिद्ध खण्डकाव्य रहा है, जिसमें उन्होंने चित्तौड़ के बहाने भारत की गौरवशाली परम्परा को रेखांकित किया है । छायावाद युग की भाव प्रवणता, गीतात्मकता, सौन्दर्यभिरूचि चूँकि खण्डकाव्य के अनुकूल नहीं थी इसलिए इस युग में खण्डकाव्यों का विकास पर्याप्त रूप से नहीं हो पाया ।

लेखकों में रामनरेश त्रिपाठी का प्रमुख स्थान है । रामनरेश त्रिपाठी ने खण्डकाव्य परम्परा की प्रचलित परिपाटी से हटकर (पौराणिक-ऐतिहासिक पात्र, कुलीन पात्र, कथा विकास इत्यादि) काल्पनिक, लोकाख्यान परक घटनाओं को देशभक्ति के साथ जोड़कर देखा। रामनरेश त्रिपाठी ने पथिक, मिलन एवं स्पप्न नायक तीन खण्डकाव्यों की रचना की, जो अपनी काव्य की नवीनता एवं अभिव्यक्ति के ट्रीटमेन्ट के कारण चर्चित रहै । छायावाद युग के अन्य प्रसिद्ध खण्डकाव्य हैं-

- प्रेम पथिक -------- जयशंकर प्रसाद
- ग्रन्थि -------- सुमित्रा नंदन पंत
- तुलसीदास -------- सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
- चितौड़ की चिंता -------- राजकुमार वर्मा

खण्डकाव्य के विकास की दुष्टि से स्वातंत्त्योदर हिंदी काव्य विशेष समृद्ध रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कवियों के सामने सामाजिक जीवन के नये-नये प्रश्न उभरे। नवीन प्रश्नों के समाधान के लिए कवियों ने पौराणिक मिथकीय पृष्ठभूमि को अपनी रचना का आधार बनाया। खण्डकाव्य साहित्य का लोकप्रचलित आधार पौराणिक-मिथकीय ही बना रहा, यह इसकी एक सीमा रही है। हांलाकि खण्ड रचयिताओं ने इसे तत्कालीन समस्याओं के संदर्भों के रचनात्मक समाधान के लिए ही उपयोग किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे सामने दो तरह के खण्डकाव्य खण्डकाव्य लेखक सामने आए। एक, तो वे लेखक हैं जो छायावाद युग में भी लेखक कार्य कर रहै थे। ऐसे लेखकों में रामधारी सिंह 'दिनकर' , बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' नरेन्द्र शर्मा, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' , उदयशंकर भट्ट, तथा सोहनलाल द्विवेदी मुख्य हैं। दिनकर भी 'रश्मिरथी' कर्ण के जीवन पर केंद्रित खण्डकाव्य है। रश्मिरथी को अपार लोकप्रियता प्राप्त हुई - इसका कारण एक तो यह था कि निकर ने इसे तत्कालीन समस्याओं सत्ता वचस्व, वर्णवोद, सामाजिक असामानता से जोड़ दिया है। दूसरे इसकी ओजस्वी भाषा-शैली ने पाठकों को सहज ही अपने प्रवाह में ले लिया। अन्य खण्डकाव्यों में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का 'प्राणार्पण' नरेनद्र शर्मा का 'द्रोपती' केदारनाथ मिश्र प्रभात का 'कर्ण' उदयशंकर भट्ट की कौन्तेयकथा, सोहनलाल द्विवेदी का

कुशल विशेष चर्चित खण्डकाव्य रहै हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दूसरे प्रकार के लेखक वे लोग हैं जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही लेखन कार्य प्रारम्भ किया। ऐसे लेखकों में धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, कुँवर नारायण, नागार्जुन तथा जगदीश गुप्त प्रमुख खण्डकाव्य लेखक हैं। उपरोक्त लेखकों ने अपनी भीम (विषय वस्तु) का चुनाव तो वैदिक-पौराणिक एवं महाकाव्यकालीन समय का चुना है लेकिन प्रश्न समसामयिक ही रखे हैं, इसीलिए ये खण्डकाव्य महत्वपूर्ण बन सके हैं।

3.6 सारांश

यह इकाई महाकाव्य एवं खण्डकाव्य पर आधारित है। इस इकाई का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि-

- महाकाव्य समाज और राष्ट्र के यर्थाथ को समग्रता में व्यक्त करने वाला काव्य रूप है।
- संस्कृत और हिंदी साहित्य के प्रमुख महाकाव्यों का परिचय प्राप्त किया। इस बहाने आपने जाना कि संस्कृत और हिंदी की जातीय चेतना इन महाकाव्यों में किस प्रकार व्यक्त हुई है।
- महाकाव्य- खण्डकाव्य काव्यरूपों के बहाने काव्यरूपों के गठन की प्रक्रिया को आपने जाना। आपने अध्ययन किया कि समाज की गति को पकड़ने के क्रम में काव्यरूप किस प्रकार निर्मित होते हैं। खण्डकाव्य, किसी यर्थाथ को पकड़ने का संक्षिप्त रूप तोहै, किन्तु अपने घनीमून रूप में वह महाकाव्य की तुलना में ज्यादा असरकारक है, यह अध्ययन आपने किया।

3.7 शब्दावली

- अभिन्न - बिना अलगाव के, जुटा हुआ।
  साहित्य का समाजशास्त्र - साहित्य को समाज के अन्य अनुशासनों के बीच रखकर देखे जाने की पद्धति
- रूपान्तरण - बदलाव की प्रक्रिया
- साहित्यशास्त्र - साहित्य का व्याकरण एवं अनुशासन ही सहित्यशास्त्र है।
- औदात्य - गरिमापूर्व एवं भव्य लेखन शैली
- पुराण - भारतीय हिन्दू धार्मिक साहित्य, उपनिषद् काल के बाद का साहित्य
- मिथकं - ऐसा साहित्य जिसमें इतिहास व कल्पना धुल मिल गये हों।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1)

(क)

1 - 8

2 - 18

3 - सात

4 - 19

5 - 17

(ख)

1 - सही

2 - सही

3 - सही

4 - सही

5 - सही

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- हिन्दी साहित्य का आाधुनिक काल - शर्मा, हरिचरण,
मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर,
प्रथम संस्करण **2007**

2- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - सिंह, बच्चन, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण **2009**

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1- हिंदी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र,
लोकभारती प्रकाशन, संस्करण **2007**

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. महाकाव्य की सैद्धान्तिकी पर निबंध लिखिए।

2. प्रमुख महाकाव्यों के संदर्भा में महाकाव्य की विशेषता निरूपित कीजिए।

इकाई 4- आधुनिक पद्य का रचना रूप

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 आधुनिक पद्य का रचना रूप
4.4 आधुनिक कविता का रूप विकास
4.5 काव्यभाषा किकास
4.6 सारांश

4.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग के आगमन के साथ ही पुराने जीवन मूल्य, सामाजिक संरचना में परिवर्तन हीने प्रारंम्भ हो जाते हैं। यह स्वाभाविक भी है कि हम हर युग में नये मूल्य, जीवन- पद्धति ग्रहण करते हैं। सामाजिक परिवेश की संरचना उस युग को धर्म- संस्कृति-राजनीति- एवं अर्थनीति से संचालित होती है, इसीलिए वह 'जटिल कोड' का रूप धारण कर लेती है। इसी जटिल कोड का भाष्य लेखक- रचनाकार 'अपने ढंग' से करता है। 'अपने ढंग' कहने का तात्पग्र ही है कि हर रचनाकार अपने परिवेश की संरचना को अपनी समझ के स्तर पर ग्रहण करता हैं। जाहिर है यह आनी समझ भी समाज - निरपेक्ष नहीं है। बल्कि गहरे अर्थों में 'सामाजिक गति' का 'सचेतन व्यक्ति' पर पडा़ आरोपण' ही है। यहाँ हम 'सामाजिक गति' 'संचेतन व्यक्ति; एवं ' आरोपण' शब्द को समझने का प्रयास करेंगे। 'सामाजिक गति' का तात्पर्य है ऐसा समाज जो जड़ता, रूढ़ियों, कु-प्रथाओं को अस्वीकार कर नये मूल्यों को धारण करने की क्षमता रखता हो। और केवल क्षमता ही न रखता हो बल्कि उसी के अनुरूप अपने को युगानुरूप परिवर्तित भी करता चलता है। 'संचेतन व्यक्ति' का तात्पर्य ऐसे मनुष्य से है जो युगधर्म की विशेषताओं को 'व्यापक अर्थों में ग्रहण करता हो। यानी वह व्यक्ति अपने युग की समस्त विशेषताओं को न केवल धारण करता हो बल्कि उस के अनुरूप क्रिया- रूपों का निर्माण भी करता चलता है। संचेतन का तात्पर्य इस प्रकार ऐसे व्यक्ति से है जो एक ओर तो अपनी चेतना के प्रति ईमानदार-जागरूक ही, दूसरी ओर सामाजिक चेतना को घनात्मक रूप में क्रियाशील रखता हो। 'आरोपण' क्रियारूप का साम्बन्धिक रूप है। यह सामाजिक गति; और 'संचेतन व्यक्ति' के क्रिया-प्रतिक्रिया संबंध का ही रूप है। सामाजिक गति चूँकि क्रियाशील व्यक्तियों के समूह का परिणाम है इसलिए उसमें अमूर्तता का गुण होता है। समाज मर्तता से अमूर्तता की और अग्रसर होता है और फिर मूर्तता से अमूर्तता की यात्रा करता है..... इसी क्रम में उसे सचेतन व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती हैं अतः सामाजिक गति, कुछ सचेतन व्यक्ति पर आरोपित हो जाती है और एक स्वस्थ्य परिवेश का निर्माण करती है।

सामाजिक गति और साहित्य का गहरा सम्बन्ध है। साहित्य को साहित्य बनाने का कार्य सामाजिक गति से प्राप्त होता है तथा सामाजिक गति साहित्य से समृद्ध होती चलती है। इस प्रकार साहित्य का स्वरूप नित्य-प्रति समय परिवर्तित होता रहता है। साहित्य के माध्यम से परिवर्तित समय की प्रमाणिक पहचान साहित्य- रूपों के माध्यम से होती है। साहित्य-रूपों का संबंध व्यक्तिगत भी है।और सामाजिक भी..... जब कोई सक्षम लेखक सामाजिक आशा- आकांक्षा को नयी अभिव्यक्ति दे देता है..... तब नये साहिब - रूप सामने आते हैं या तो एक ही समय में कई लेखक- कवत ' एक विशेष कथ्य' को कहने के लिए उसी के अनुकूल नये साहित्य - रूपों का प्रयोग करने लगते हैं..... जैसे निबंध विधा या उपन्यास विधा का आगमन सामूहिक प्रयास की ही देन हैं। की यह चौथी इकाई है। इस इकाई में हम आधुनिक कविता की, विशेषकर हिन्दी कविता के रचना रूप का अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

यह चौथी इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- कविता को और बेहतर ढंग से समझ सकेंगे।
- काव्य रूपों की संरचना की अच्छे ढंग से समझ सकेंगे।
- सामाजिक गति के साथ साहित्यिक काव्य रूपों के अंतर्सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- आधुनिक पद्य के रचना- रूपों से परिचित हो सकेंगे।
- काव्य रूपों के बहाने सामाजिक और साहित्यिक यात्रा- प्रक्रिया से परिचित हो सकेंगे।

4.3 आधुनिक कविता का रूप - विकास

आपने पूर्व के अध्यायों में अध्ययन किया कि आधुनिक काट के आगमन के साथ ही कथ्य व शिल्प में गुणात्मक परिवर्तन हुए। भारतेन्दु हरिचन्द्र ने काव्य क्षेत्र में कई परिवर्तन किये। काव्य की भाषा ब्रज होने के वावजूद उन्होंने खडी़ बोली में लिखने का प्रयास किया। ब्रजभाषा की कविताओं में उन्होंने छंद तो पुराने ही रखे हैं। यथा- छप्पय कविता, सवैया जैसे छन्दों का लेकिन इसके साथ ही उन्होंने चैता, कजली, होली जैसे लोक धुनों व शास्त्रीय संगीत पद्धति का भी कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है।

द्विवेदी युग में (महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम रखा गया, 1900-1920 ई0 तक) खडी़ बोली कविता का पर्याप्त विकास हुआ। श्रीधर पाठक जैसे कवियों ने खण्डकाव्यों का अनुवाद खडी़ बोली में करके खडी़ बोली व शिल्प के प्रति जागरूक करने का कार्य शुरू कर दिया था प्रारम्भ में खडी़ बोली कविता के संदर्भ में यह भ्रम भी फैलाया गया कि खडी़ बोली में सरस कविताऐं नहीं लिखी जा सकती । अयोध्याप्रसाद उपाध्याय 'हरिऔध' का 'प्रियप्रवास' महाकाव्य हो गया 'रसकलश' इस संदर्भ के महत्पूर्ण कार्य थे। आगे चलकर साकेत महाकाव्य (1934 ई0 प्रकाशन) के प्रकाशन तक यह विवाद चलता रहा। कुल मिलाकर द्विवेदी युग तक सैद्धान्तिक रूप से खडी़ बोली और ब्रजभाषा के बीच सैद्धान्तिक और रचनात्मक संघर्ष होता रहा। ब्रजभाषा के समर्थक जगन्नाथक 'रत्नाकर' का 'उद्धवरातक' इस ढंग के प्रयास की ही अंतिम कडी़ था। यानी कविता के एक नये 'फार्म' (रूप) 'कविता' भी इस युग में लिखी जाने लगी। भारतेन्दु युग में यह संभव नहीं था। इसी के साथ ही प्रियप्रवास व साकेत का रूप महाकाव्य बने। राम व कृष्ण इस युग के भी नायक बने । ऐसा क्यों हुआ? आधुनिक बोध के बावजूद हमारे नायक क्यों नहीं बदले? प्रिय प्रवास के नायक-नायिका कृष्ण व राधा है, किंचित बदले हुए भी..... ''संदेश यहाँ नहीं मैं, स्वर्ग का लाया/ इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया'' जैसी पंक्तियाँ बदली मनोवृा की ही परिचायक है। वस्तुतः वह युग अपनी मूल चेतना में संक्रान्तिकालीन वृत्तियों को धारण किये हुए हैं। एक ओर आधुनिकता, दूसरी ओर पुरातनता। एक और खडी़ बोली दूसरी और ब्रजभाषा । एक ओर कविता का आधुनिक फॉर्म दूसरी ओर महाकाव्य -खण्डकाव्य जैसे रूप। खण्डकाव्य की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त ने कई खण्डकाव्रू लिखे हैं- स्पष्ट है कि कथ्य और रूप की अनिवार्यता के कारण ही हिन्दी कविता में रूप के संउर्भ में पुराने काव्य रूप चलते रहे।

हिन्दी कविता के रूप स्थिर करने की दृष्टि से छायावादी कविता का विशेष महत्व व योगदान है।

छायावाद में भी महाकाव्य (कामायनी) है, छायावाद में भी पुराने छन्दों का प्रयोग है किन्तु

कविता को छन्दों के बंधन से मुक्त करने का कार्य भी छायावाद ने ही किया। एक ओर ब्रजभाषा कविता की समाप्ति हुई तो दूसरी ओर महाकाव्य का कथ्य भी आधुनिक हो गया। इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी के खण्काव्य स्वप्न, पथिक एवं मिलन के कथ्य-विषय भी बदल गये। खण्डकाव्य के लिए अब ऐतिहासिक व पौराणिक-मिथकीय चरित्रों की अनिवार्यता नहीं रह गई। इसी प्रकार राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता धारा में भी हिन्दी कविता का स्वरूप राष्ट्रीय-सांस्कृतिक हो चला। चाहे 'झांसी की रानी' वैलेड गीत हो या माखनलाल चुतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' (चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊँ।/ चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ''/ चाह नहीं सम्राटों के शव पर, हे हरि, डाला जाऊँ।/ चाह नहीं, देवों के सिर पर चढूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।।)

मुझे तोड़ लेना वनमाली'। उस पथ में देना तुम फेंक''। मातृ-भूमि पर शीश चढा़ने'। जिस पथ जाने वी अनेक'')

या दिनकर या सियारामशरण गुप्त का काव्य सभी अपनी चेतना में राष्ट्रीय भाव बोध से युक्त है।

इसी युग में प्रगीत बहुतायत रचे गयै । प्रगतिवादी काव्य धारा के आने से हिन्दी कविता में यर्थाथवादी चेतना का पर्याप्त विकास हुआ । प्रगतिवाद में अन्य काव्य धाराओं की तरह प्रबन्ध काव्य प्रायः नहीं लिखे गये । छायावाद से एक नये काव्य रूप 'लम्बी कविता' का प्रादुर्भाव हुआ। जिस प्रकार महाकाव्य का ही आधुनिक रूप लम्बी कविता को माना जाने लगा। इस संदर्भ में सुमित्रानंदन पंत की परिवर्तन, निराला की सरोज स्मृति, राम की शक्ति पूजा,

तुलसीदास, मुक्तिबोध की अंधेरे में, ब्रह्मराक्षस, अज्ञेय की असाध्यवीणा, धूमिल की पटकथा व केदारनाथ सिंह की वाद्य जैसी कविताएँ का उल्लेख किया जा सकता है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की कविताओं पर पश्चिमी रंग भी कम नहीं है। मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद एवं अस्तित्ववाद जैसे 'वाद' के प्रभाव से हिन्दी कविता की रूप संरचना निरन्तर विस्तृत होती रही। वह चाहे मुक्तिबोध पर फेंटेसी शिल्प हो, निराला पर एलिजी गीत का प्रभाव या अज्ञेय पर जापानी-चीनी शिल्प (हायकू) का प्रभाव

अभ्यास प्रश्न

(क)- रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. भारतेन्दु युग के कविता की प्रधान भाषा..... थी। (ब्रज/अवधी/खडी़ बोली)
2. प्रियप्रवास रचना की विधा..... है। (उपन्यास/कविता/ महाकाव्य)
3. 'रसकलस' पुस्तक के रचयिता..... हैं। (निराल/मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध)
4. साकेत महाकाव्य का प्रकाशन..... है। (1934/1950/1970)
5. द्विवेदी युग का समय है....। (1910-1920/1900-1920/ 1850-1920)

(ख) सत्य/ असत्य का चुनाव कीजिए।

1. उद्धवशतक रचना की भाषा ब्रज है। (सत्य/असत्य)
2. खण्डकाव्य विधा में सर्वाधिक रचनाएँ मैथिलीशरण गुप्त ने लिखी हैं।(सत्य/असत्य)
3. पुष्प की अभिलाषा कविता के रचनाकार माखनलाल चतुर्वेदी हैं। (सत्य/असत्य)
4. कामायनी की रचना विधा खण्डकाव्य है। (सत्य/असत्य)
5. सरोज स्मृति शोक गीत हैं। (सत्य/असत्य)

4.4 **काव्यरूप और समाज**

नये युग के आगमन के साथ ही पुराने जीवन मूल्य, सामाजिक संरचना में परिवर्तन होने प्रारंभ हो जाते हैं। कारण यह कि हम हर युग में नये मूल्य, जीवन- पद्धति ग्रहण करते हैं। सामाजिक परिवेशे की संरचना उस युग की धर्म-संस्कृति -राजनीति एवं अर्थनीति से संचालित होती है, इसीलिए वह 'जटिल कोड' का रूप धारण कर लेती है। इसी जटिल कोड का भाष्य लेखक- रचनाकार 'अपने ढंग' से करता है। 'अपने ढंग' कहने का तात्पर्य ही है कि हर रचनाकार अपने परिवेश की संरचना को अपनी समझ' के स्तर पर ग्रहण करता है। लेखक की 'अपनी समझ' भी गहरे अर्थों में ' सामाजिक गति' का तात्पर्य है, ऐसा समाज जो जड़ता, रूढ़ियों, कु-प्रथाओं को अस्वीकार कर नये मूल्यों को धारण करने की क्षमता रखता हो और युगानुरूप अपने को परिवर्तित भी करता चलता है। 'सचेतन व्यक्ति' का तात्पर्य ऐसे मनुष्य से है जो युगधर्म की विशेषताओं को 'व्यापक अर्थों' में ग्रहण करता हो और उस के अनुरूप क्रिया-रूपों का निर्माण भी करता चलता है। इस प्रकार सचेतन का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो एक ओर तो अपनी चेतना के प्रति ईमानदार- जागरूक हो, दूसरी ओर समाजिक चेतना को धनात्मक रूप में क्रियाशील भी रखता हो। 'आरोहण' क्रियारूप का सांबंधिक रूप है। यह ' सामाजिक गति' और 'सचेतन व्यक्ति' के क्रिया- प्रतिक्रिया संबंध का ही रूप है।

सामाजिक गति और साहित्य का गहरा संबंध है। साहित्य को साहित्य बनाने का कार्य सामाजिक गति से प्राप्त होता है तथा सामाजिक गति साहित्य से समृद्ध होती चलती है। इस प्रकार साहित्य का स्वरूप निम्न- प्रति समय परिवर्तित होता रहता है। साहित्य के माध्यम से परिवर्तित समय की पहचान साहित्य - रूपों के माध्यम से होती है। साहित्य-रूपों का संबंध व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी.....। जब कोई सक्षम लेखक सामाजिक आशा- आकांक्षाओं

को नयी अभिव्यक्ति दे देता है, तब नये साहित्य - रूप सामने आते हैं या जो एक ही समय में कई लेखक-कवि एम 'विशेष कथ्य' को कहने के लिए उसी के अनुकूल नये साहित्य - रूपों का प्रयोग करने लगते हैं। काव्य रूप के प्रयोग का समबन्ध बदलती सामाजिक अभिरूचि व साहित्यिकों के आपसी समझ के अंतर्सम्बन्ध से जुड़ा हुआ है। काव्य रूप के प्रयोग का सीधा सम्बन्ध 'साहित्यिक' से जुड़ा हुआ है। काव्य रूप में बदलाव की प्रक्रिया के कई कारणहै। राजनीतिक, धार्मिक आर्थिक, सांस्कृतिक बदलाव के परिवर्तन को जब एक समाज और उसममें रहने वाले सचेतन साहित्यकार पकड़ते हैं तब एक नये काव्यरूप के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। कई बार काव्य रूप एक साथ कई साहित्यकारों द्वारा क्रमशः प्रयुक्त होने लगता है और कई बार एक सक्षम व्यक्तित्व नये काव्यरूप का निर्माता बन जाता है। लेकिन अधिकंश में ऐसा ही होता है कि एक समय में..... एक साथ ही कई साहित्यकार उस विधा की ओर झुक जाते हैं। प्रश्न यह है कि काव्रूप के गठन में लेखकीय व्यक्तित्व का क्या योगदान है? या लेखकीय व्यक्तित्व के गठन में काव्य रूप अपनी भूमिका किस प्रकार निभाते है? हर व्यक्तित्व, खासतौर सलेखकीय व्यक्तितत्व के निर्माण में कई प्रकार के अवयव कार्य करते है। लेखक अपनी सामाजिक-राजनीतिक - सांस्कृतिक चेतना की उपज होता है..... इस प्रक्रिया में होता यह हे कि वह सारे बाह्य परिवेश को अपनी आंतरिक संरचना (अनुभूति, संवेदना की क्रिया- प्रतिक्रिया) के अनुसार ग्रहण करता है.....। हर लेखक की आन्तरिक संरचना भिन्नहोती है क्योंकि जीवन- जगत की बहुबिध छवियाँ इतनी विस्तृत होती है कि लेखक उनमें से सबको नहीं पकड़ पाता.....और जो पकड़ पता है, उनकी अनुभूति भी भिन्न प्रकार की होती है, कारण यह कि बहुविध छवियों को वह चेतना के स्तर पर ग्रहण करता है और ग्रहण अब तक प्राप्त की गई चेतना के अनुसार ही वह उन्हें आत्मसात करता है, इसीलिए लेखक सब कुछ को अपनी अनुभूति-संवेदना का अंग नहीं बना पाता है, औरजब अपनी अनुभूति - संवेदना को वह अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है तब उसकी चेतना उसकी भाषा में प्रकट हो जाती है। चूंकि हर लेखक का व्यक्तित्व- गठन उसकी चेतना, जो सबसे अलग है, का ही बाह्य- प्रकटीकरण होता है इसलिए जब वह अपनी रचना का निर्माण करता है तब स्वभावतः ही एक कथ्य की शैली उद्पाठित हो जाती है। इस प्रकार काव्य-रूप और काव्य- शैली में भेद होता है।

काव्य- रूप का सम्बन्ध कविता के एक विशेष प्रकार के ढाँचे से है। 'विशेष प्रकार के ढाँचे' का यहाँ आशय है कि - वह ढाँचा, रूप जो अपनी कथ्य की भंगिया में अलग स्वरूप रखता हो..... यानी जिसमें एक विशेष प्रकार का ही कथ्य कहा जा सके..... कथ्य के अनुरूप ही काव्य - यप तय होते हैं, इसीलिए हर रचनाकार अपने काव्य-रूप का चुनाव करता है। दूसरे ढंग से कहना चाहें तो यह कि महाकाव्य, खण्डकाव्य जैसी विधाएँ क्यों क्रमशः कम होती चजी गई? या आधुनिक सम्वेदना की अभिव्यक्ति के लिए ये विधाएँ क्यों अपर्याप्त होती गईद्य तो काव्य-रूप का सम्बन्ध जहाँ कथ्य-परिवेश के बदलाव से ज्यादा जुडा़ हुआ है वहीं काव्य- शैली का प्रश्न लेखकीय - व्यक्तित्व के ज्यादा करीब है। विशेष काव्य-रूप अपनाते हुए भी जब सक्षमल लेखक नये- नये प्रयोग करना शुरू कर देता है, तो नयी-नयी काव्य-शैलियों का जन्म होता हे। काव्य- शैली का सम्बन्ध भी अनिवार्यत लेखकीय व्यक्तित्व से सीधे जुडा़ हुआ है, इसीलिए जब अलग-अलग सक्षम लेखक भी एक ही काल, भाषा व विद्या में लिखते है, तो उनकी काव्य- शैली बदल जाती है। अज्ञेय अपने लिए छोटी कविताऐं और 'हायकू' का चुनाव करते हैं, क्योंकि भाषा की सघनता के वे पक्षधर हैं और कविता अपने संश्लिष्ट रूप में सबसे ज्यादा भाषा- मितव्ययी विद्या है। दूसरा कारण यह भी है कि अज्ञेय यूरोपीय संस्कृति खासकर जापानी संस्कृति व चीनी संस्कृति से जुड़े रहे हैं। इसी प्रकार मुक्तिबोध मनोवैज्ञानिक यर्थाथ को बहुत महत्व देते थे, इसीलिए उन्होंने 'फैंटेसी' शैली का प्रयोग किया। व्यक्तित्व के अनगढ़पन के दबाव के कारण ही मुक्तिबोध ने अपने लिए 'लम्बी कविता' विद्या का चुनाव किया। जयशंकर प्रसाद जब 'महाकाव्य' विधा का प्रयोग करते हैं तो अपना वर्व्य- विषय भारतीय संस्कृति ही चुनते हैं। 'आनन्दवाद', मानव- सम्भ्यता का विकास क्रम एवं सांस्कृतिक संघर्ष एवं आधुनिक एवं प्राचीन जीवन मूल्यों का

संघर्ष महाकाव्य जैसी विधा में ही संभव है, इसीलिए प्रसाद जी इस विधा का चुनाव करते हैं, तो क्या लेखकीय विधा और वर्व्य- विषय का अनिवार्य संबंध हैं? कई बार ऐसा होता है कि एक ही तरह के वर्व्य- विषय के लिए भिन्न-भिन्न लेखक एक ही विधा का चुनाव करते हैं। लेखकीय व्यक्तित्व 'विधागत प्रयोग' के माध्यम से उस विधा की संभावना का विस्तार करता है।

4.5 **सारांश**

इस इकाई का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि-

- हर युग की सामाजिक संरचना उस युग की धर्म-संस्कृति राजनीति एवं अर्थनीति से संचालित है और इसी जटिल कोड का भाष्य लेखक, रचनाका अपने ढंग से करता है।
- साहित्य के माध्यम से परिवर्तित समय की प्रामाणिक पहचान साहित्य रूपों के माध्यम से होती है। साहित्य रूपों का संबंध व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी।
- भारतेन्दु युग की कविता रूप का प्रायः परम्परागत ही रहा।
- द्विवेदी युग में आकर कविता के रूप में प्रयोग प्रारंभ होने शुरू हो जाते हैं।
- छायावादी युग में लम्बी कविता का रूप सामने आता है।
- प्रगतिवाद, प्रयोगवाद में काव्य शिल्प में कई प्रयोग हमें देखने को मिलते हैं।

4.6 शब्दावली

सामाजिक गति	-	समाज को आगे ले जाने गले मोड़।
सचेतन व्यक्ति	-	अपनी स्थिति व सामाजिक देश काल को समझने वाला।
आरोपण		-किसी मत, विचारधारा का दूसरे पर पड़ा प्रभाव।
जड़ता	-	स्थिर नकारात्मक दशा।
अनुभूति	-	रचना का कोई खास ढंग।
छवि	-	चित्र।
मितव्यमियता	-	बचत की प्रकृति।
फैंटेसी	-	स्वप्न काव्य शैली।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क)

1. ब्रज
. महाकाव्य
3. हरिऔध
4. 1934
5. 1900- 1920

(ख)

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य

5. सत्य

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक हिंछी कविता का इतिहास- नवल, नंदकिशोर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।

4.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2. काव्य रूप और समाज के अंतर्सम्बन्ध पर निबंध लिखिए।
3. हिन्दी काव्य रूपों के विकास क्रम को रेंखांकित किजिए।

इकाई 5 हिन्दी साहित्य का आदिकाल: उद्भव एव विकास

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 आदिकाल की अवधारण और सीमा निर्धारण
5.3.1 आदि काल या वीरगाथा काल
5.3.2 नामकरण वैविध्य
5.3.3 आदिकाल: सीमा निर्धारण
5.4 आदिकाल आधारभूत समाग्री
5.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री
5.4.2 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 सहायक पाठ्य सामग्री
5.8 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी साहित्य से प्रथम काल खण्ड आदिकाल के उद्भव एवं विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अंतर्गत आप यह भी जानेंगे की हिन्दी साहित्येतिहासकारों को आदिकाल से सम्बंधित कौन -कौन सी समस्याओं का सामना करना पड़ा है । आदिकालीन कविता के उदय की पृष्ठभूमि तथा आदिकालीन कविता के नामकरण तथा सीमांकन का अध्ययन भी इस इकाई में किया गया है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- काल निर्धारण की आधार सामग्री पर विद्वानों का मतान्तर क्यों रहा है, इसे समझ सकेंगे।
- आदिकाल की पृष्ठभूमि क्या थी, यह जान सकेंगे ।
- आदिकालीन सामान्य प्रवृत्तियों को जान पायेंगे तथा साथ हि साथ यह भी जान सकेंगे कि आदिकाल के विकास का स्वरूप क्या है।
- विभिन्न साहित्येतिहासकारों के मत-मतान्तरों की समीक्षा कर सकेंगे।

5.3 आदिकाल की अवधारणा और सीमा निर्धारण

5.3.1 आदिकाल या वीरगाथा काल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन में प्रथम काल -खण्ड को वर्गीकृत करते हुए नाम दिया गया था - वीरगाथा काल (आदिकाल- सं**0 1050-1350**) । विकल्प रूप में उन्होंने वीरगाथा काल को आदिकाल भी कहा क्योंकि बारह आधार ग्रन्थों में से चार अपभ्रंश भाषा की रचनाएँ थी। उन्होंने बताया कि जयचन्द्र प्रकाश, जयमंयक जसचंद्रिका (भट्ट केदार और मधुकर कवि) सूचना (नोटिस) मात्र है। हम्मीर रम्सो (शारंगधर कवि) का आधार प्राकृत-पैगंलम् में आगत कुछ पद्य हैं और वह काव्य आधा ही प्राप्त है। विजयपाल रासो के सौ छन्द ही प्राप्त हुए है, इस प्रकार यह ग्रन्थ भी अधूरा और वीसलदेव रासो की भाँति प्रेमगाथा काव्य है। वीरगाथा नहीं। अमीर खुसरो की पहै लियाँ भी वीरगाथा के अंतर्गत ग्राह्य नहीं है। पृथ्वीराज रासों की प्रामाणिकता जितनी संदिग्ध है उतनी ही परमाल रासो की क्योंकि वह लोक (श्रुत) काव्य आल्हा है। मूल पाठ का निर्धारण असंभव है।

आचार्य शुक्ल के पास जो अन्य सामग्री स्त्रोत उपलब्ध होते थे, वे उन्होनें धार्मिक एवं सांप्रदायिक मूलक बताए थे, पर परवर्ती शोध कार्यों से यह विदित होता है कि ये धार्मिक और सम्प्रदाय मूलक ग्रन्थ साहित्यिक उदारता से शून्य नहीं थे। तभी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि - धार्मिक प्रेरणा या आध्यत्मिक उपदेश होना काव्य का बाधक नहीं समझा जाना चाहिए अन्यथा हमें रामायण, महाभारत, भागवत एवं हिन्दी के रामचरित मानस, सूरसागर आदि साहित्यिक सौन्दर्य संवलित अनुपम ग्रंथ-रत्नों को भी साहित्य की परिधि से बाहर रखना पड़ जाएगा। (हिन्दी साहित्य का आदिकाल, प्रथम व्याख्यान,पृष्ठ **49**)साहित्य का इतिहास न तो इतिहास के वृत्ति प्रस्तुति का निरूपण है और न प्रशस्ति मूलक सम्वेदना । उसमें साहित्येतिहासकार के भीतर साहित्यकार की सम्वेदना का समाहार अनिवार्य है । तभी वह साहित्यिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों की संरचना से ही काल विशेष की संज्ञा प्राप्त कर सकता है।

5.3.2 नामकरण वैविध्य और आधार

हिन्दी साहित्य के इस आदिकाल विकल्प की उपेक्षा करते हुए रामचन्द्र शुक्ल से पूर्ववर्ती मिश्रबन्धु (मिश्रबन्धु विनोद) ने उसे प्रारम्भिक काल, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसे बीजवपन काल, रामकुमार वर्मा ने उसे संधिकाल एवं चारण काल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने वीरकाल एवं बच्चन सिहं ने अपभ्रंशकाल नाम दिया है । काल

विभाजन और नामकरण प्रवृत्तिपरक होता है। यह आप समझ चुके हैं, पर यह भी समझना उचित होगा कि ये दो अलग प्रश्न नहीं है, मूलतः एक ही है। जिस प्रकार रचना की प्रवृत्ति काल-विभाजन का आधार है, उसी प्रकार वह नामकरण का भी महत्वपूर्ण आधार है। नामकरण के निर्मिति में तद्विषयक रचना कृतियों की बहुलता है और उन रचनाओं में प्रवृत्ति मूलक प्रतिशत निकालकर काल खण्ड विशेष का नामकरण किया जाता है। परिवर्ती हिन्दी साहित्येतिहाकारों में सभी एकमत से स्वीकार करते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास सर्वमान्य है . कुछ मूल प्रश्नों को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण ढांचा लगभग सर्वमान्य है .

5.3.3 **आदिकाल: सीमा निर्धारण**

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल पर विद्वानों में पर्याप्त मत-भेद है। इस के मूल में महत्वपूर्ण कारण अपभ्रंश भाषा की हिन्दी में स्वीकृति या हिन्दी से बहिष्कृति की मानसिकता है। पूर्व खण्ड के अध्ययन के बाद आप यह अवश्य ही जान गए हैं कि सम्पूर्ण भारतीय वाङमय में अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी। उसमें कौन से परिवर्तनकारी बिंब कब आरंभ हुए इसको सहज रूप में कह पाना संभव नहीं है, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा में ये परविर्तन सहज ही उभरते गए है। वास्तव में अपभ्रंश भाषा जब परिनिष्ठित और साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हुई, तब तक वह जनभाषा से दूर हो गई और उस अपभ्रंश से इतर जनभाषा से ही हिन्दी का विकास होता है। उस समय यह अपभ्रंश ही एक नई भाषा (या पुरानी हिन्दी) के रूप में विकसित हो रही थी। हिन्दी के आरंभिक रूप का परिचय बौद्ध तांत्रिकों की रचनाओं में मिलता है। तभी गुलेरी ने लिखा है कि "अपभ्रंश या प्राकृतभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिकों और योगमार्गी बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है।"

जार्ज ग्रियर्सन आदिकाल को 'चारण काल' कहते हैं और इसका आरंभ **643 ई0** से मानते हैं जबकि चारण काव्य परम्परा का विकास तब नहीं हुआ था क्योंकि वह काल-खण्ड नाथों-सिद्धों का सर्जन काल था। चारण काल एवं साहित्य का आविर्भाव दसवीं शताब्दी के बाद ही होता है। इसलिए ग्रियर्सन के विचार त्याज्य है। मिश्रबंधुओं ने आदिकाल का नामकरण करते हुए प्रवृत्ति का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। डॉ.रामकुमार वर्मा ने इस काल खण्ड को 'संधिकाल' और 'चारण काल' कहा है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. वीरगाथाकाल नामकरण क्यों अस्वीकार है ?
2. आदिकाल के विकल्प का चयन क्यों आवश्यक समझा गया ?

5.4 **आदिकाल की आधारभूत सामग्री**

5.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री

अभी तक के अध्ययन के उपरान्त आज यह भली भाँति जान चुके हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा आदिकाल के लिए गृहीत बारह पुस्तकों की विषय-सामग्री वीरगाथा काल के नाम की सार्थकता सिद्ध नहीं कर पाती कुछ मात्र नोटिस या सूचना मात्र थीं कुछ वीर गाथात्मक प्रवृत्तिमूलक नहीं थीं, कुछ अपूर्ण और प्रेमपरक थी। अतः विकल्प के रूप में आदिकाल को ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समर्थन दिया है । इस प्रकार आदिकाल नामकरण के निर्धारण में आधारभूत सामग्री निम्नांकित है ।

1. स्वयंभू - पउम चरिउ (पद्म चरित-रामचरित) रिट्णेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित)
2. पुष्पदन्त - पाय कुमार चरिउ (नागकुमार चरित)
3. हरिभद्र सूरि - णेमिनाथ चरिउ (नेमिनाथ चरित)

4.	धनपाल	-	भविष्यतकथा, करकंड चरिउ, जसहर चरिउ
5.	जोइन्दु	-	परमात्मा प्रकाश
6.	रामसिंह	-	पाहुड़ दोहा
7.	सरहपा	-	दोहाकोश
8.	अद्दहमाण	-	संदेश रासक
9.	है मचन्द्र	-	प्राकृत व्याकरण (दोहा काव्य)
10.	दलपति विजय	-	बीसलदेव रासो
11.	चन्दबरदाई	-	पृथ्वीराज रासो
12.	कुशल शर्मा	-	ढोला मारूरा दूहा (लोककाव्य)
13.	अज्ञात	-	वसंत विलास फागु
14.	विद्यापति	-	कीर्तिलता, कीर्ति पताका
15.	अमीर खुसरो	-	पहेलियां

5.4.2 **आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं**

अभी तक आप आदिकाल की उपलब्ध नव्य सामग्री से परिचित हो चुके हैं। इकाई के इस भाग में आप आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाओं से परिचित हो सकेंगे। इतना तो आप जान ही चुके हैं कि इस युग में शौर्य युक्त प्रवृत्तियों ही नहीं थी अपितु अन्य अनेक प्रवृत्तियों भी एक साथ उभरी थीं। परिणाम स्वरूप वीररसात्मक काव्य धारा के साथ श्रंगार रस सिक्त रचनाओं का प्रणयन भी हुआ। लोक कथाओं पर आधारित प्रेमकथाएं भी लिखी गई। लौकिक काव्य (पहै ली और मुकरी) की भी रचना हुई। यही नहीं इस काल खण्ड में अगर अपभ्रंश भाषा कृतियों प्राप्त हुई हैं तो ब्रज- राजस्थानी मिश्रित भाषा और मैथिली में साहित्य सर्जना हुई थी साथ ही साथ खड़ी बोली में रचनाएँ प्राप्त हुई हैं.

1. पृथ्वीराज रासो
2. बीसलदेव रास
3. ढोल मारू रा देहा
4. विद्यापति काव्य
5. अमीर खुसरो की पहेलियाँ
6. प्राकृत व्याकरण
7. सन्देश रासक
8. भाविसत्त कहा
9. पाहुड़ दोहा

पृथ्वीराज रासो - रासोकाव्य परम्परा में अनेकशः रचनाएँ हुई हैं और इनमें स्वरूप वैविध्य भी हैं. पृथ्वीराज रासो आदिकाल की प्रतिनिधि कृति है। पृथ्वीराज रासो का रचयिता चन्द बरदाई पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था तथा दरबारी काव्य परम्परा की प्रशस्ति मूलक रूढियों से भरे अपने आश्रय दाता के यशगान है तु रासो की रचना की है।जैसा कि अभी संकेत किया जा चुका है कि पृथ्वीराज रासो प्रशस्ति काव्य है। कविचंदबरदाई ने अपने आश्रय दाता का प्रशस्ति परक वर्णन किया है तथा उसे ईश्वर तक कहा है और तत्कालीन राजनीति , धर्म,योग, कामशास्त्र, शकुन, नगर ,युद्ध ,सेना की सज्जा, विवाह, संगीत,नृत्य, फल,फूल, पशु,पक्षी, ऋतु-वर्णन, संयोग, वियोग, श्रंगार, बसंतोत्स्व इत्यादी सभी का वर्णन भारतीय काव्य शास्त्रीरय परम्परा के अनुरूप किया है। परिणामस्वरूप ऐतिहासिकता अनैतिहसिकता प्रामाणिकता अप्रमाणिकता के अनेक प्रश्नों के रहते हुए पृथ्वीराज रासो साहित्य और

तत्कालीन समाज दोनों की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब हैं ।पृथ्वीराज रासो के वर्ण्य-विषय पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- पृथ्वीराज रासो ऐसी ही रस,भय,अलंकार, युद्धबद्ध कथा थी जिसका मुख्य विषय नायक की प्रेमलीला, कन्याहरण और शत्रु-पराजय था।

बीसलदेव रासो –

काल खण्ड के नाम के विकल्प - आदिकाल- के चयन और वीरगाथाकाल नाम के व्याज्य के निकर्ष पर देखा जाए तो पृथ्वीराज रासो में जहाँ वीर एवं श्रृंगार की प्रधानता है वहीं वीसल देव रास मूलतः श्रृंगार रस प्रधान ;विशेषकर वियोग श्रृगांर काव्य है । इसके रचयिता नरपति नाल्ह है और रचनाकाल **1155** ईस्वी माना जाता है ।

वीसलदेव रास एक विरह काव्य है। जिसमें वीसल देव की रानी का विरह वर्णन किया गया है . भोज परमार की पुत्री राजमती से विवाह के तुरन्त बाद राजमती की गर्वोक्ति सुनकर वीसलदेव उड़ीसा चला जाता है। बारह वर्ष तक राजमती वियोग की ज्वाला में जलती रहती है । इसके बाद राजमती अपने राज पुरोहित से अपने पति के लिए सन्देश भिजवाती है। जब तक राजा लौटता है तब तक राजमती अपने पिता के घर जा चुकी होती है। बीसलदेव उड़ीसा से लौटकर अपनी ससुराल जाकर अपनी पत्नी को घर ले आता है।

ढोला मारू रा दूहा - अभी तक आपने आदिकाल की दो महत्वपूर्ण कृतियों का परिचय प्राप्त कर लिया है जो अपभ्रंश भाषा से इतर आदिकाल की तत्कालीन भाषा प्रवाह का परिनिष्ठित भाषा रूप लेकर रची गई है जो राजस्थान एवं ब्रज भाषा के साथ विविध भाषाओं की शब्दावली से युक्त हैं . इस बार आप लोकाश्रित एवं तत्कालीन लोक भाषा काव्य का परिचय पायेंगे। यह ढोला मारू रा दूहा नाम से प्रसिद्ध लोक गाथा काव्य है। लोक कथा या लोक गाथा का रचयिता व्यक्ति न होकर लोक ही होता हो और उसके पाठ में समयानुसार भिन्नता की सम्भवना होती है। ढोला मारू रा दूहा का रचयिता कुशल शर्मा कहै जाते हैं तथा इसका रचना काल ग्याहरवीं शताब्दी है।

विद्यापति काव्य - विद्यापति हिन्दी और आदिकाल के प्रमुख कवि हैं चौदहवी-पंद्रहवी शताब्दी के मध्य विद्यापति तिरहुत के राजा कीर्ति सिंह के दरबारी कवि थे और उनकी शौर्यता का चित्रण ही कवि ने अपनी कीर्तिलता नामक पुस्तक में किया है। दूसरी ऐसी ही प्रशस्ति कथा कीर्तिपताका में है। इन दोनों काव्यों की भाषा को उन्होंने अवहटठ् ,अपभ्रंशद्ध कहा है

अमीर खुसरो पहै लियाँ - अमीर खुसरो आदिकाल के ऐसे प्रमुख कवि हैं जो अपने समय से आगे की खड़ी बोली के सूत्र-प्रसारक कहै जा सकते हैं। आचार्य रामचन्द्र के अनुसार उनका लेखन **1293** ई के आसपास आरम्भ हो गया था। उन्होंने तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली भाषा में कविता की। लेकिन आप यह भी जान लीजिए कि अमीर खुसरो ने ब्रजभाषा में भी कविता लेखन किया था पर उस पर खड़ी बोली का स्पष्ट प्रभाव था यथा- उज्जवल बरन अधीन तन एक चित्र दो ध्यान।

देखत में साधु है निकट पाप की खान।।
खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग।
तन मोरो मन पीउ को दोउ भए एकरंग।।
गारी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपनै रैन भई यह देस ।।

अमीर खुसरो ने पहै लियों को देखकर ऐसा नहीं लगता कि ये आठ से आठ सौ से अधिक वर्ष पूर्व लिखी गई होंगी । यथा- एक थात मोती भरा सबके सिर आँधा धरा।

चारों ओर वह थाली फिरे । मोती उससे एक न गिरे। अमीर खुसरो अरबी फारसी,तुर्की,ब्रज और हिन्दी के विद्वान कवि थे। साथ ही उन्हें संस्कृत भाषा का भी थोड़ा ज्ञान था। सूचना के स्तर पर आपको बताया जा सकता है कि उन्होंने **99** पुस्तकें लिखी थी । लेकिन इनके बीस,बाईस ग्रन्थ ही प्राप्त होते हैं।

प्राकृत व्याकरण - आदिकाल के अपभ्रंश काव्य के रूप में अब आप ऐसी कृति का परिचय पाऐंगे जो दसवीं शताब्दी में रचित सिद्ध है मचन्द्र शब्दानुशासन के नाम से प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ है और उसके रचयिता है मचन्द्र हैं। इस कृति में है मचन्द्र ने संस्कृत,प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का समावेश किया है किन्तु विशेष बात यह है कि अपभ्रंश का उदाहरण देते हुए उन्होंने पूरा दोहा ही उद्धृत किया है परन्तु उनके रचयिताओं के विषय में कोई संकेत नहीं किया है हे मचन्द्र के इस प्राकृत व्याकरण को आदिकाल की निर्णायक कृतियों के रूप में उल्लेख किया जाना आपको सहज ही आश्चर्य में डाल सकता है क्योंकि यह शब्दानुशासन यानी व्याकरण की पुस्तक ही प्रतीत होती लेकिन व्याकरण कृति होते हुए भी इसमें प्रयुक्त दोहों का चयन है मचन्द्र ने पूर्ववर्ती या तद्युगीन रचनाकारों की रचनाओं से किया है। ये दोहै व्याकरण से अधिक तत्कालीन समय एवं परिवेश का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं क्योंकि ये दोहै उस काल की लोक भावनाओं से परिपूर्ण है।

सन्देश रासक - संदेशरासक अहद्द्माण या अब्दुर्रहमान रचित खण्ड काव्य है। अहद्दमाण कबीर की भाँति जुलाहा परिवार से थे तथा मुल्तान निवासी थे। उन्होंन स्वयं लिखा है - मैं मलेच्छ देशवासी तंतुवाय भीर सेन का पुत्र हूँ। उनकी कृति सन्देश रासक जो एक सन्देश काव्य है . इसके रचना काल के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है अतः इसे ग्यारहवी से चौदहवीं के मध्य की रचना माना जाता है।सन्देश रासक वियोग, विरह, श्रृंगार की रचना है । इसकी विषय-वस्तु के सम्बन्ध में इतना कहा जा सकता है कि प्रिय के परेदश जाने और वहाँ से लौटने में विलम्ब होने के कारण प्रियतमा पत्नी-नायिका का हृदय विरहकातर हो उठता है। अहद्द्माण ने इस कृति के बीच-बीच में प्राकृत गाथाएं संजोयी हैं। इसमें विरहिणी नायिका एक पथिक से पति को सन्देश भिजवाती है । कवि ने दो सौ तेईस छन्दों में कथा प्रस्तुत करते हुए प्रत्येक छन्द को स्वयं में स्वतंत्र रखा है क्योंकि कवि को विरहाभिव्यक्ति का उल्लेख करना है कथा कहना मात्र उसका उद्देश्य नहीं है . सन्देश रासक तीन प्रक्रमों में विभाजित और **223** छन्दों में रचित ऐसा सन्देश काव्य है जिसका अध्ययन करके आप यह विधिवत् जान पायेंगे कि इसका प्रथम प्रक्रम मंगलाचरण, कवि का व्यक्तिगत परिचय , ग्रन्थ रचना का उद्देश्य तथा आत्मनिवेदन से अनुपूरित है। दूसरे प्रक्रम से मूल कथा आरंभ होती है पर कथा सूत्र इतना ही है कि विजय नगर की एक प्रोषितपतिका अपने प्रिय के वियोग में रोती हुई एक दिन राजमार्ग से जाते हुए एक बटोही को देखती है और दौड़कर उसे रोकती है। उसे जब यह पता चलता है कि वह बटोही साभांर से आ रहा है और स्तंभ तीर्थ को जा रहा है तो वह पथिक से निवेदन करती है कि अर्थलोभ के कारण उसका प्रिय उसे छोड़ कर स्तम्भ तीर्थ चला गया है इसीलिए कृपा करके मेरा सन्देश को ले जाओ पथिक को संदेश देकर नायिका ज्यों ही उसे विदा करती है कि दक्षिण दिशा से उसका प्रिय आता हुआ दिखाई देता है। तीसरे प्रक्रम में अब्दुर्रहमान कृतिका समापन करता है जिसे पढ़कर निश्चित आप जान पायेंगे कि नायिका का कार्य अचानक सिद्ध हो जाता है .उसी प्रकार पाठकों को भी यह अनुभव होता है कि कवि को कथा से कोई भी मतलब नहीं था उसका उद्देश्य साम्भर नगर के जीवन, पेड़-पौधों तथा ऋतु वर्णन के साथ प्रोषितपतिका की विरह भावना का वर्णन करना था .काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से सन्देश रासक अपभ्रंश साहित्य में विशेष स्थान रखता है।

भविस्यत्त कहा –

जैन कवि धनपाल रचित भविस्यत्त कहा अपभ्रश में लिखित दसवीं शती की ऐसी काव्य कृति है जिसमें तीन प्रकार की कथाएँ बाईस संधियों में जुडी हुई है। अभी तक आप यही जानते रहै हैं कि जैन काव्य धार्मिक है और आचार्य शुक्ल ने उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के निमित्त आधार ग्रंथ के रूप में गणनीय तक नहीं माना था । यद्यपि जैन साहित्य में धर्म से विलग साहित्यिक कृतियों का अभाव नहीं था। उन्ही में से एक कृति भविस्यत्त कहा है। यह वर्णन हृदयग्राही है जिसमें श्रृंगार एवं वीररस के साथ शान्त रस का परिपाक होता है ।

आपके ज्ञानवर्द्धन के लिए यह उल्लेखनीय है कि कवि धनपाल का यह काव्य शुद्ध घरेलू ढंग की कहानी पर आधारित है जिसमें दो विवाहों का दुःखद पक्ष उभरता है। कणिक पुत्र भविष्यदत्त की कथा अपने सौतेले भाई बंधुदत्त द्वारा कई बार छले जाने ,जिन महिमा ,जैन चिन्तन के कारण सुखद परिणति तक पहुंचती है। यह प्रमुख कथा चौदह सन्धियों तक विस्तार पाती है।

पाहुड़ दोहा - राजस्थान के रामसिंह द्वारा लिखित दो सो बाईस दोहो ,छन्दों में लिखित लघुकाव्य पाहुड़ दोहा का संपादन परवर्ती काल में हीरालाल जैन द्वारा किया गया है। उनके अनुसार जैनियों में पाहुड शब्द का प्रयोग किसी विजय के प्रतिपादन के लिए किया जाता है। अब आप यह जान लीजिए कि इस कृति का रचना काल में वास्तव में ऐसा युग था जिसमें प्रत्येक धर्म के भीतर इसके उदारमना चिन्तक कवि पैदा हुए थे जो अपने मत और समाज की रूढियों का विरोध करते हुए मानवता की सामान्य भावभूमि पर एक साथ खडे थे। इसका अन्य मतों से कोई विरोध नहीं था। वे सबके प्रति सहिष्णु थे और उनका विश्वास था कि सभी मत एक ही दिशा की ओर ले जाते हैं और एक ही परमतत्व को विविध नामो से पुकारते हैं।

बोध प्रश्न . 2

1. आदिकाल की आधारभूत सामग्री क्या है ? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए
2. सुमेलित कीजिए

पृथ्वीराज रासो	अब्दुर्रहमान
ढोला मारू रा दूहा	धनपाल
वीसलदेव रास	है मचन्द्र
विद्यापति का काव्य	रामसिंह
पहै लियाँ	कुशलशर्मा
प्राकृतव्याकरण	चंद्रबरदाई
सन्देशरासक	नरपति नाल्ह
भविस्यत्त कहा	विद्यापति
पाहुड़ दोहा	अमीर खुसरो

5.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप -

- हिंदी साहित्येतिहास के अंतर्गत काल-निर्धारण की प्रक्रिया को जान चुके होंगे
- आदिकाल की पृष्ठभूमि एवं उसकी सामान्य प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे
- आदिकाल के उद्भव एवं क्रमिक विकास को समझ चुके होंगे
- आदिकाल की प्रमुख पुस्तकों से परिचित हो चुके होंगे

5.6 शब्दावली

वैविध्य	-	विविधतापूर्ण , भिन्न-भिन्न
परवर्ती	-	बाद के समय का
वाङमय	-	साहित्य
आविर्भाव	-	पैदा होना
रस सिक्त	-	रस से भरा हुआ

इतर	-	अलग
सहिष्णु	-	उदार

5.7 सहायक पाठ्य सामग्री

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

(2) हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

(3) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ0 रामकुमार वर्मा,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

(4) सांकृत्यायन, राहुल, हिन्दी काव्य-धारा, किताब महल, इलाहाबाद 1945

5.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल के उद्भव एवं विकास पर एक विस्तृत निबंध लिखिए
2. आदिकाल की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए आदिकाल की प्रमुख रचनाओं का परिचय दीजिए

इकाई **6 भक्तिकालीन कविता का उदय**

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण
6.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश
6.4.1 राजनीतिक परिस्थिति
6.4.2 आर्थिक परिस्थिति
6.4.3 सामाजिक परिस्थिति
6.4.4 सांस्कृतिक परिस्थिति
6.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप
6.6 भक्ति का उदय
6.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत
6.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद
6.7.2 द्वैतवाद
6.7.3 शुद्धाद्वैतवाद
6.7.4 द्वैताद्वैतवाद
6.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार
6.8.1 संत काव्य का दार्शनिक आधार
6.8.2 सूफी मत
6.9 भक्ति आन्दोलन
6.9.1 भक्ति आंदोलन: उदय एवं विकास
6.9.2 भक्ति आंदोलन: उदय के कारण
6.9.3 भक्ति आंदोलन: महत्व
6.10 भक्ति कालीन कविता का उदय
6.11 सारांश
6.12 शब्दावली
6.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम लोग भक्ति कविता के आधार एवं जिस परिवेश में भक्ति कविता का जन्म होता है, की चर्चा करेंगे। साहित्य में भक्ति की धारा का प्रादुर्भाव सहसा नहीं होता। पूर्व परम्परा एवं युगीन परिस्थितियों दोनों मिलकर भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य को जन्म देती हैं। इस इकाई के अंतर्गत भक्तिकाल सीमांकन एवं नामकरण, भक्तिकालीन युग एवं परिवेश, भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप भक्ति का उदय, भक्ति सम्बन्धी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत, निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार, भक्ति आंदोलन, भक्तिकालीन कविता का उदय-की विस्तृत विवेचना की जाएगी।

दरअसल यह इकाई भक्तिकालीन कविता की पूर्व पीठिका के तौर पर है। उपरोक्त विभिन्न पक्षों के क्रमवार विवेचन द्वारा भक्तिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं धाराओं, उसकी पृष्ठभूमि को बेहतर ढंग से समझ पाना संभव होगा।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- पूर्व मध्यकाल की समय-सीमा एवं नामकरण को जान सकेंगे।
- भक्तिकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।
- भक्ति के अर्थ एवं स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकालीन कविता के दार्शनिक आधार को बतला सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन के उदय, विकास एवं महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे।
- भक्ति काव्य के उदय की व्याख्या कर सकेंगे।

6.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पूर्व-मध्यकाल की समय सीमा **1318** ई. से **1643** ई. तक निर्धारित की है। आचार्य शुक्ल के इस सीमांकन को प्रायः सभी ने स्वीकार किया है। आदिकालीन सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में दिखलाई पड़ने वाले भक्ति तत्व के आधार पर न तो इस काल की सीमा को पीछे खींचा जा सकता है और न ही रीतिकालीन, भक्तिकालीन रचनाओं के आधार पर इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। क्योंकि सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में भक्ति का वह उन्मेष, वह तन्मयता नहीं दिखलाई पड़ती, जो भक्ति काव्य में निहित हैं। दूसरी तरफ रीतिकालीन भक्तिपरक रचनाएँ सरस तो हैं, किंतु उनमें अधिकांशतः भक्तिकाव्य का ही अनुकरण है। अतः उपलब्ध सामग्री के आधार पर आचार्य शुक्ल का सीमांकन ही सर्वथा उचित और ग्राह्य हैं। मोटे तौर पर हम पूर्व मध्यकाल को **14**वीं सदी के मध्य से **17**वीं सदी के मध्य तक मान सकते है। क्योंकि आदिकालीन रचना प्रवृत्तियों का प्राघान्य **14**वीं सदी के मध्य तक दिखलाई पड़ता है और **17**वीं सदी के मध्य तक आते-आते साहित्य में भक्ति के स्थान पर रीति कालीन प्रवृत्तियों की प्रबलता दृष्टिगोचर होने लगती है।

पूर्वमध्यकाल का आचार्य शुक्ल ने भक्तितत्व की प्रधानता के आधार पर भक्ति काल नामकरण
किया है। हम देखते हैं कि इस युग के कविता की मूल संवेदना भक्ति है। चाहै संतकाव्य हो या प्रेमाख्यानक काव्य, रामभक्ति मार्ग हो या कृष्ण भक्तिमार्ग -सबमें भक्ति की ही केन्द्रीयता है, भले ही भक्ति के स्वरूप में भिन्नता है। भक्ति के अतिरिक्त इस युग में वीरगाथा, नीति और रीतिनिरूपण की प्रवृत्ति भी मिलती है। किंतु भक्तिपरक रचनाओं की तुलना में ऐसी रचनाओं की संख्या कम है। नीति तो बहुधा भक्ति के साथ संयुक्त होकर आई है। अतः पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल कहना उचित ही है।

6.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश

युगीन परिस्थितियाँ साहित्यिक प्रवृत्तियों को निर्मित करती है, उन्हें प्रेरित, प्रभावित करती हैं। रचनाकार जिस युग एवं परिवेश की उपज होता है। वह उससे उदासीन नहीं रह सकता। वह रचना में अपने युग के अभिव्यक्त ही नहीं करता, बड़ा रचनाकार युगीन सीमाओं का अतिक्रमण कर अपने युग को नए मूल्य-मान, नया स्वप्न-संकल्प भी देता है। पूर्व मध्यकाल राजनीतिक सत्ता, सामाजिक अवस्था, सांस्कृतिक परिवेश में बड़े परिवर्तनों और उलट-फेर का काल है। मुसलमानों के आक्रमण एवं मुसलमानी सत्ता की स्थापना से पूरे समाज पर एक गहरा प्रभाव पड़ा, नयी आर्थिक-सामाजिक स्थितियाँ निर्मित हुई जो भक्ति आंदोलन के उदय में सहायक हुई। अतः भक्ति कालीन

कविता को समझने के लिए तत्कालीन राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिचय आवश्यक है। आइए हम क्रमवार इन्हें देखे-

6.4.1 राजनीतिक परिस्थिति

भक्तिकाल राजनीतिक दृष्टि से तुगलकवंश से लेकर मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन तक का काल है। दसवीं शताब्दी में पश्चिममोत्तर भारत में तुर्कों के कई आक्रमण हुए, तत्कालीन भारतीय राजाओं की आपसी फूट एवं प्रतिस्पर्धा के कारण धीरे-धीरे मुसलमानों का राज उत्तर भारत में स्थापित हो गया। पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गोरी के बीच **1192** में लड़े गए तराइन के युद्ध में गोरी की विजय होती है। पृथ्वीराज उस समय का सबसे प्रतापी राजा था। भारतीय इतिहास में यह युद्ध काफी निर्णायक माना जाता है, इस युद्ध ने भारत में तुर्कों की सत्ता स्थापित करने की जमीन तैयार कर दी। **1194** के चंदावर युद्ध में कन्नौज के शासक जयचंद को भी गोरी ने परास्त कर दिया। अब तुर्कों की ताकत से टकराने वाला कोई नहीं था। गोरी विजित भारतीय क्षेत्रों का शासन अपने गुलाम सेनापतियों को सौंपकर वापस गजनी लौट गया। **1206** में तुर्की गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली में गुलाम वंश की नींव डाली। उधर गजनी में चल्दोज गोरी का उत्तराधिकारी बना, उसने दिल्ली पर अपना दावा पेश किया। तभी से दिल्ली सल्तनत ने गजनी से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इससे मध्य एशिया की राजनीति से अलग दिल्ली सल्तनत का अपना स्वतंत्र विकास हुआ। तुर्कों की अपनी सत्ता स्थापित करने में काफी मशक्कत करनी पड़ी। उन्हें तुर्की अमीरों के आतंरिक विरोध, राजपूत राजाओं और विदेशी आक्रमण से खतरा था। किंतु अन्ततः सभी बाधाओं पर काबू पा लिया गया और एक सुदृढ़ और विस्तृत तुर्की राज्य बना। बलबन गुलाम वंश का सबसे प्रभावशाली शासक सिद्ध हुआ। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो एवं अमीर हसन उसी के दरबार में रहते थे।

1290 से **1320** तक दिल्ली सल्तनत पर खिलजी वंश का शासन रहा। अदाउद्दीन खिलजी (**1296-1316)** ने अपनी आक्रामक नीति से जहाँ दिल्ली सल्तनत को दक्षिण तक फैलाया वहीं बाजार नियंत्रण, राजस्व-व्यवस्था के पुर्नगठन द्वारा शासन-व्यवस्था को भी मजबूती प्रदान किया। अमीर खुसरों का उसका राजाश्रय प्राप्त था। **1320** में गयासुद्दीन तुगलक ने तुगलक वंश की नींव डाली। गयासुद्दीन के पश्चात् मुहम्मद बिन तुगलक उत्तराधिकारी बना। मध्यकालीन सुल्तानों में वह सर्वाधिक योग्य, शिक्षित और विद्वान था। अपनी दो योजनाओं (**1**) दिल्ली से दौलताबाद राजधानी परिवर्तन (**2**) सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन के कारण वह इतिहास में प्रसिद्ध है। अफ्रीकी यात्री इब्नबतूता उसी के शासन काल में भारत आया था। उसी के शासनकाल में विजयनगर और बहमनी राज्य नामक दो स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आते हैं। मुहम्मद बिन तुगलक के पश्चात् फिरोज तुगलक दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बैठा। वह अपने सुधार-निर्माण कार्यों के लिए प्रसिद्ध है, उसने लगभग **300** नये नगरों की स्थापना की, जिनमें हिसार, फिरोजाबाद, फतेहाबाद, जौनपुर, फिरोजपुर आदि प्रमुख हैं। तुगलक वंश के पश्चात् **1398** में तैमूर का आक्रमण होता है, उसने दिल्ली को तहस-नहस कर दिया। दिल्ली सल्तनत पर क्रमशः सैय्यद और लोदी वंश का शासन रहा। अंतिम लोदी सुल्तान इब्राहिम शाह लोदी के समय में पंजाब के शासक दौलत खां लोदी के निमंत्रण पर बाबर ने भारत पर आक्रमण। पानीपत के प्रथम युद्ध **1526** ई. में उसने इब्राहिक शाह लोदी को पराजित कर मुगल वंश की नींव डाली। पानीपत के पश्चात् खानवा, चंदेरी और घाघरा के युद्धों में विजय हासिल कर उसने मुगल राज्य को सुरक्षित एवं सुदृढ़ बना दिया। बाबर एक सफल सेनानायक, साम्राज्य निर्माता ही नहीं अपितु एक साहित्यकार भी था, उसने 'बाबरनामा' नाम से अपनी आत्मकथा लिखी। **1530** में बाबर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हुमायूँ उत्तराधिकारी बना। उसका शासनकाल संकटों और चुनौतियों से भरा रहा। **1540** में बिलग्राम युद्ध में अफगान वंशीय शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को पराजित कर आगरा, दिल्ली पर कब्जा कर लिया। हुमायूँ को सिंध भागना पड़ा। जहाँ उसे **15** वर्षों तक निर्वासित जीवन जीना पड़ा। शेरशाह एक कुशल योद्ध और शासक था। कुशल प्रशासन और केन्द्रीकृत व्यवस्था द्वारा उसने व्यापार को बढ़ावा दिया, उसने ग्रांड ट्रक रोड की मरम्मत करवाई, पाटिलपुत्र को पटना के नाम से पुनः स्थापित

किया, डाक प्रथा का प्रचलन करवाया। **1545** में कालिंजर के किले को जीतने के क्रम में उसका असामयिक निधन हो गया। मौका पाकर **1555** में हुमायूँ पंजाब के शूरी शासक सिकंदर को पराजित कर पुनः दिल्ली पर कब्जा करने में सफल रहा। **1556** में पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई। उसी वर्ष पंजाब के कलानौर में **13** वर्ष की अल्पायु में हुमायूँ के पुत्र अकबर का राज्याभिषेक हुआ। **1556-60** तक बैरम खाँ उसका संरक्षक रहा। अकबर के शासनकाल में मुगल साम्राज्य भलीभाँति भारत में स्थापित हो गया। उसका साम्राज्य पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में असम तक, उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में अहमद नगर तक विस्तृत था। वह दूरदर्शी, उदार और साहित्य-कला का संरक्षक शासक था। अकबर के पश्चात् जहाँगीर **(1605-1627)** और शाहजहाँ **(1628-58)** बादशाह बनते हैं। इनका शासनकाल प्रायः शांतिपूर्ण रहा यह व्यापार-वाणिज्य साहित्य, कला, संस्कृति के उन्नति का काल था। सल्तनत काल में विजयनगर, बहमनी राज्य, जौनपुर, काश्मीर बंगाल, मालवा, गुजरात, मेवाड़, खानदेश स्वतंत्र राज्य भी थे, कालांतर में इन पर मुगल
साम्राज्य का आधिपत्य हो गया।

6.4.2 आर्थिक परिस्थिति

सल्तनत काल एवं मुगल काल में स्थिर एवं केन्द्रीकृत व्यवस्था के कारण अर्थव्यवस्था में प्रगति हुई। कुछ अपवादों को छोड़ कर यह कालखण्ड प्रायः शांतिपूर्ण था। शासन व्यवस्था सुव्यवस्थित थी, राजस्व वसूली की एक नियमित व्यवस्था थी। सुचारू प्रशासन के लिए मुगल साम्राज्य का बँटवारा सूबों में, सूबों का सरकार में, सरकार का परगना या महाल में, महाल का जिला या दस्तूर में, दस्तूर ग्राम में बँटे थे। केन्द्रीय प्रशासन के साथ स्थानीय शासन व्यवस्था भी थी। ये परिस्थितियाँ आर्थिक प्रगति में सहायक सिद्ध हुई। अलाउद्दीन, शेरशाह सूरी, अकबर ने भूराजस्व प्रणाली को व्यवस्थित बनाया। अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी। कृषि के विकास के लिए अलग से कृषि विभाग (दीवाने को ही) की स्थापना, उत्पादकता के हिसाब से भूमि का वर्गीकरण, सिंचाई है तु नहरों का निर्माण कराया गया।
इस काल में आगरा, पटना, दिल्ली, जौनपुर, हिसार आदि कई नए नगरों का उदय हुआ । इससे कामगार, कारीगर वर्ग को रोजगार के लिए अवसर मिले और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। नए नगर व्यापार-वाणिज्य के केन्द्र के रूप में भी विकसित हुए। तुर्कों के आगमन से भारत में कई नयी तकनीकि भी आई, जैसे चरखा, धुनकी, रहत, कागज, चुम्बकीय कुतुबनुमा, समयसूचक उपकरण, तोपखाना आदि। इसका प्रभाव उद्योग-धंधे एवं व्यापार पर पड़ा। वस्त्र उद्योग, धातु खनन, हथियार निर्माण, कागज निर्माण, इमारती पत्थर का काम, आभूषण निर्माण उस समय के प्रमुख उद्योग धंधे थे। आगरा नील उत्पादन के लिए, सतगाँव रेशमी रजाईयों के लिए, बनारस सोने, चाँदी एवं जड़ी काम के लिए, ढाका मलमल के लिए प्रसिद्ध था ।

इस काल में व्यापार-वाणिज्य की खूब उन्नति हुई। व्यापक पैमाने पर नयी सड़कों का निर्माण एवं पुरानी सड़कों की मरम्मत कराया गया। सड़कों के किनारे सराय बनवाये गए। राहगीरों एवं व्यापारियों की सुरक्षा का प्रबंध किया गया। इसका सीधा प्रभाव व्यापार पर पड़ा। देशीय व्यापार के साथ विदेशी व्यापार की स्थिति भी अच्छी थी। यहाँ से सूती एवं रेशमी वस्त्र, चीनी, चावल, आभूषण आदि का निर्यात होता था। देवल अंतर्राष्ट्रीय बंदरगाह के रूप में प्रसिद्ध था । निस्संदेह मध्यकाल में उद्योग, व्यापार में प्रगति हुई, कृषि में सुधार हुआ। किंतु गाँवों में किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। लगान और अकाल के कारण उन्हें काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। अकाल और भूख से बेहाल किसान की पीड़ा को तुलसी ने व्यक्त किया है- 'कलि बारहि बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।' उस समय यदि एक वर्ग खुशहाल था तो दूसरा वर्ग भूख, गरीबी, बेकारी से त्रस्त था, तुलसी लिखते हैं-

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।

जीविका विहीन लोग सीघमान सोच बस,
कहै एक एकन सों 'कहाँ जाई का करी'।।

6.4.3 सामाजिक स्थिति

इस काल में हिंदू समाज वर्णों और जातियों में विभक्त था। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था, शूद्रों की निम्न स्थिति थी। जातिगत श्रेष्ठता एवं छुआछूत की भावना तत्कालीन परिवेश में व्याप्त थी। मुसलमानों के आक्रमण एवं उनकी सत्ता स्थापित होने से परंपरागत भारतीय समाज को एक धक्का लगा। सामंतों एवं पुरोहितों की स्थिति कुछ कमजोर हुई। एक तरफ जहाँ परम्परागत सामाजिक संरचनाको बचाये रखने के लिए वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा का कठोरता से पालन करने पर जोर दिया गया, वहीं दूसरी तरफ समानता और आपसी भाईचारे पर आधारित इस्लाम के प्रति हिंदू समाज की निचली जातियाँ आकर्षित हुई। बहुतों ने धर्मांतरण कर इस्लाम स्वीकार कर लिया। धर्मांतरण स्वेच्छा में भी हुआ और मुस्लिम शासकों द्वारा बलात् भी कराया गया। ऊँच-नीच की भावना सिर्फ हिंदू समाज में ही नहीं मुस्लिम समाज में भी विद्यमान थी। अफगानी, तुर्की, ईरानी एवं भारतीय मुसलमानों में नस्लगत श्रेष्ठता एवं प्रतिस्पर्धा की भावना थी। मुसलमान शासक भारत में आक्रांता के रूप में आए थे, हिंदुओं में उनके प्रति अलगाव, विरोध, शंका का भाव होना स्वाभाविक था। किंतु दोनों कौमों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं सामंजस्य भी बढ़ रहा था। सूफियों का इस दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। मुस्लिम शासकों एवं राजपूत शासकों में वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुए।

उस काल में सामान्यतः संयुक्त परिवार का प्रचलन था। तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। हिन्दू समाज में बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रथा, सती प्रथा प्रचलित थी। मुस्लिम समाज में भी स्त्रियों की स्थिति हिंदू स्त्रियों की तरह ही थी। विदेशी यात्रियों के विवरणों से पता चलता है कि उस समय दास प्रथा का भी प्रचलन था ।

6.4.4 सांस्कृतिक स्थिति-

संस्कृति किसी देश समाज की मूलभूत प्रवृत्तियों उसकी सौन्दर्यबोधात्मक एवं मूल्यबोधों क्रियाकलापों-उपलब्धियों, उसके आचार-विचार का समन्वित रूप हैं। धर्म, कला, साहित्य, संगीत, शिल्प आदि संस्कृति के विभिन्न तत्व हैं। मध्यकालीन भारतीय समाज धर्मप्राण समाज है। हिंदू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, सिक्ख उस समय प्रचलित प्रमुख धर्म थे। बहुसंख्यक जनता हिंदू धर्मावलंबी थी। हिंदू धर्म भी शैव, शाक्त, वैष्णव आदि कई संप्रदायों में विभक्त था। इन विभिन्न संप्रदायों में परस्पर संघर्ष एवं सामंजस्य दोनों स्थितियाँ दिखलाई पड़ती हैं। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, अवतारवाद, बहुदेव उपासना, गौ एवं ब्राह्मण का सम्मान, शास्त्रों के प्रति श्रद्धा, कर्मफलवाद, स्वर्ग-नरक की अवधारणा, आदि हिंदू धर्म एवं समाज की विशेषता थी। पश्चिम भारत में जैनियों की बहुलता थी, बौद्ध धर्म को मानने वाले पूर्वी भारत में ज्यादा थे। बौद्ध धर्म तंत्रयान, मंत्रयान, ब्रजयान आदि शाखाओं में विभक्त था, उसका मूल स्वरूप विकृत हो गया था और वह कई प्रकार की रूढ़ियों, कर्मकाण्डों, अंधविश्वासों का शिकार हो गया था। फलतः उसका पहले जैसा प्रभाव और आकर्षण नहीं रह गया था। सिद्धों और नाथों का तत्कालीन समाज पर गहरा असर था । धर्म का जहाँ तक शास्त्रीय रूप था, वहीं उसका एक लोकवादी रूप भी था स्थानीय देवताओं की पूजा, जादू-टोना आदि इसी के अंतर्गत आता है। मध्यकाल में साधनाओं एवं संप्रदायों की एक बाढ़ सी दिखलाई पड़ती है। धर्म के आवरण में मिथ्याचार, अनाचार, व्यभिचार भी पनप रहा था, धर्मक्षेत्र में एक अराजकता-सी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इन्हीं परिस्थितियों के बीच भक्ति आंदोलन का उदय और विकास होता है, जिसने भारतीय समाज को काफी गहरे तक प्रभावित किया ।

इस काल में साहित्य, कला, वास्तु, संगीत में प्रगति दिखलाई पड़ती है । इस्लामी एवं भारतीय संस्कृति के मेल से कला की नयी शैलियों का जन्म होता है।

6.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप

भक्ति पूर्व-मध्यकालीन साहित्य का मूलभूत तत्व है। आइए हम भक्ति को समझने की कोशिश करते हैं। ईश्वर के प्रति श्रद्धा, प्रेम, समर्पण की भावना ही भक्ति हैं। 'भक्ति' शब्द की निष्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'भजना'। अर्थात् ईश्वर का चिंतन-मनन, उसके गुणों का श्रवण-कीर्तन, उसकी सेवा करना। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि सांसारिक प्रवृत्तियों का शमन कर ईश्वर के प्रेम में डूबे रहना। भारतीय चिंतन परम्परा में ईश्वर-प्राप्ति, मोक्ष के तीन मार्ग बतलाए गए हैं-कर्म, ज्ञान और भक्ति। कर्म का सम्बन्ध व्रत, तप, जप, तीर्थ यज्ञादि कर्मकाण्डों से जिनका सम्यक् व्यवहार कर मनुष्य ईश्वर के सानिध्य-साक्षात्कार का लाभ प्राप्त करता है। ज्ञान का सम्बन्ध ईश्वर विषयक तत्व-चिंतन से है, इसमें सम्यक ध्यान-समाधि द्वारा व्यक्ति ब्रह्मानंद को प्राप्त करता है। भक्ति विशुद्ध भाव मूलक है, इसके लिए न तो कर्मकाण्ड अपेक्षित है और न ही तत्व-चिंतन। भक्ति मार्गमें ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा-समर्पण द्वारा ही मनुष्य मुक्तिपद को प्राप्त करता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को 'परम प्रेमरूपा' एवं 'अमृतस्वरूपा' कहा गया है- 'सात्वस्मिन परम प्रेमरूपा, अमृतस्वरूप च।' तात्पर्य यह है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम जो अमृत के समान फलदायक है, वही भक्ति है। इस भक्ति को प्राप्त करने पर व्यक्ति सांसारिक इच्छाओं और बंधनों से ऊपर उठ जाता है, वह आनंदमग्न, आत्माराम हो जाता है। नारद मुक्ति सूत्र में कहा गया है- ''उस परम प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है। उस भक्ति को प्राप्त करने के बाद मनुष्य को न किसी भी वस्तु की इच्छा रहती है न वह शोक करता है, न वह द्वेष करता है, न किसी वस्तु में ही आसक्त होता है। उस प्रेमरूपा भक्ति को प्राप्त करे वह प्रेम में उन्मत्त हो जाता है।'' 'शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र' में 'ईश्वर में परम अनुरक्ति' को भक्ति कहा गया है- ''सा परानुक्तिरीश्वरे''। अर्थात् ईश्वर के प्रति अत्यंत गहरी निष्ठा-प्रेम की अनुभूति-अभिव्यक्ति ही भक्ति है। ईश्वर प्राप्ति के जो कर्म, ज्ञान, भक्ति तीन मार्ग बतलाए गए है, इनमें उत्कट राग की उपस्थिति भक्ति मार्ग में ही होती है। ज्ञान एवं कर्म मार्ग में प्रेम को केन्द्रीय महत्व नहीं दिया गया है। भक्ति पर व्यावहारिक लौकिक दृष्टि से विचार करते हुए आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति कहा है। भक्ति की व्याख्या करते हुए वह लिखते हैं- ''जब पूजा भाव की बुद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि में आनंद का अनुभव होने लगे-जब उससे सम्बन्ध रखने वाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे, तब भक्ति रस का संचार समझना चाहिए।'' **(चिंतामणि, भाग-1, पृ0 26)** स्पष्ट है कि शुक्लजी के मत में भक्ति के लिए ईश्वर के प्रति सिर्फ प्रेम भाव ही नहीं पूज्य भाव भी होना चाहिए, भक्त ईश्वर की महिमा-महत्व से अभिभूत रहता है, वह उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित कर, उन्हीं को अपना सर्वस्व मान लेता है।

भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का सबसे सुगम माध्यम माना गया है। सहज, साध्य होने के कारण ही आचार्यों ने भक्ति को प्रमुखता दी है-'अन्य स्मात् सौलभ्यं भक्तौ।' शास्त्रों में कहा गया है कि कलियुग में केवल ईश्वर के नामस्मरण द्वारा ही जीव का उद्धार हो जाता है वह परम पद को प्राप्त कर लेता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को निष्काम कहा गया है, क्योंकि वह निरोध स्वरूप है। निरोध का अर्थ सांसारिक विषयों-प्रपंचों से विमुख होकर चित्त को पूर्णतया ईश्वरोन्मुख कर देना। भक्त मन, वचन, कर्म से अपना सर्वस्व अर्पित कर प्रभु को भजता है। उसके लिए शास्त्रीय विधि-विधान, लौकिक कर्मों का कोई महत्व नहीं है, भक्ति ज्ञानमूलक, कर्ममूलक न होकर भावमूलक है। नारद भक्ति-सूत्र में कहा गया है- 'वह प्रेमरूपा भक्ति, कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठकर है, क्योंकि वह फलरूपा है अर्थात् उसका कोई अन्य फल नहीं है, वह स्वयं ही फल है।?' भक्ति ही भक्त का चरम लक्ष्य है, वह साधन भी है और साध्य भी। इस भक्ति की प्राप्ति प्रभुकृपा से होती है। भक्ति के लिए प्रभु का गुण श्रवण और कीर्तन-गान अनिवार्य तत्व है। नारद के अनुसार उस परमात्मा की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण समपर्ण और विस्मरण में परम व्यापकता होनी चाहिए- 'नारदस्तु

तदर्पिताऽखिला चारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति।' भक्ति के स्वरूप के संदर्भ में नारद ने कहा है- 'प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है- गूंगे के स्वाद की तरह।.....वह प्रेम गुणरहित है, कामनारहित है, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, विच्छेद रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है और अनुभवरूप है। उस प्रेम को प्राप्त करके प्रेमी उस प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है और प्रेम का ही चिंतन करता है अर्थात् अपनी मन-बुद्धि इंद्रियों से केवल प्रेम का ही अनुभव करता हुआ प्रेममय हो जाता है।' आचार्य शुक्ल के अनुसार भक्ति सांसारिक व्यक्ति के प्रति भी हो सकती है और ईश्वर के प्रति भी। ईश्वरीय भक्ति की विवेचना करते हुए उन्होंने लिखा है- 'भक्ति का स्थान मानव हृदय है- वहीं श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसका प्रादुर्भाव होता है। अतः मनुष्य की श्रद्धा के जो विषय ऊपर कहै जा चुके हैं, उन्हीं को परमात्मा में अत्यंत विशद रूप में देखकर उसका मन खींचता है और वह उस विशद-रूप विशिष्ट का सीमाप्य चाहता है, उसके हृदय में जो सौन्दर्य का भाव है, जो शील का भाव है, जो उदारता का भाव है, जो शक्ति का भाव है उसे वह अत्यंत पूर्ण रूप में परमात्मा में देखता है और ऐसे पूर्ण पुरूष की भावना से उसका हृदय गदगद हो जाता है और उसका धर्मपथ आनंद से जगमगा उठता है। धर्म-क्षेत्र या व्यवहार पथ में वह अपने मतलब भर ही ईश्वरता से प्रयोजन रखता है। राम, कृष्ण आदि अवतारों में परमात्मा की विशेष कला देख एक हिंदू की सारी शुभ और आनंदमयी वृत्तियाँ उनकी ओर दौड़ पड़ती है, उसके प्रेम, श्रद्धा आदि को बड़ा भारी अवलंब मिल जाता है। उसके सारे जीवन में एक अपूर्व माधुर्य और बल का संचार हो जाता है। उसके सामीप्य का आनंद लेने के लिए कभी वह उनके आलौकिक रूप-सौन्दर्य की भावना करता है, कभी उनकी बाल लीला के चिंतन से विनोद प्राप्त करता है, कभी-धर्म-वंदना करता है-यहाँ तक कि जब जी में आता है, प्रेम से भरा उलाहना भी देता है। यह हृदय द्वारा अर्थात् आनंद अनुभव करते हुए धर्म में प्रवृत्त होने हो सुगम मार्ग है।' **(**चिंतामणि भाग-**1,** पृष्ठ **31)** भक्ति के इस स्वरूप-प्रकृति के कारण ही शुक्ल जी ने भक्ति को ''धर्म की रसात्मक'' अनुभूति'' कहा है। दरअसल भक्ति ईश्वर के प्रति समर्पण की एक रागयुक्त प्रवृत्ति, अवस्था है। भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद्सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य तथा आत्मनिवेदन या शरणागति का उल्लेख मिलता है। इसे ही नवधा भक्ति कहा गया है। दरअसल ये प्रभु की भक्ति की विभिन्न प्रक्रियाएं हैं। परम्परा में भक्ति के दो रूप बतलाये गए है- गौणी और परा। गौणी भक्ति के अंतर्गत देवपूजा, भजन-सेवा आदि प्रवृत्तियाँ आती है। पराभक्ति को सर्वश्रेष्ठ और सिद्धावस्था का सूचक माना गया है। गौणी भक्ति को साधकर ही भक्त पराभक्ति की अवस्था में पहुँचता है। गौणी भक्ति के भी दो भेद हैं-वैधी और रागानुगा। वैधी भक्ति शास्त्रानुमोदित विधि विधान पर आधारित है औरा रागानुगा भक्ति का आधार प्रेम अथवा राग है। रामागनुगा भक्ति के दो रूप है- संबंध रूपा और कामरूपा। विभिन्न सांसारिक संबंधों-भावों का ईश्वरोन्मुखीकरण ही सम्बधरूपा भक्ति है। भक्त ईश्वर से विभिन्न संबंध-भाव निवेदित-स्थापित कर भक्ति करता है इसके अन्तर्गत पाँच भावों को स्वीकारा गया है-शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कांत या माधुर्य भाव। कामरूपा भक्ति कांत या माधुर्य भाव की भक्ति है इसके अंतर्गत भक्त प्रणय या दांपत्य भावना से प्रभु की भक्ति करता है।

अब आप भक्ति के तात्विक स्वरूप से परिचित हो चुके है अब हम भक्ति के उदय की पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करेंगे।

6.6 भक्ति का उदय

भक्ति की प्रवृत्ति, पद्धति का सम्बन्ध सिर्फ भागवत् धर्म और भक्ति आंदोलन से ही नहीं है। भक्ति का एक क्रमिक विकास होता है। वैसे भक्ति के बीज वेदों में मिलते हैं। विभिन्न प्राकृतिक उपादनों का दैवीकरण, सुख-शांति समृद्धि की कामना से उनकी स्तुति वैदिक ऋचाओं की मूल विशेषता है। ईश्वर की कल्पना, आत्म निवेदन, शरणागत की भावना, दैन्य भाव, श्रद्धा का भाव आदि जो भक्ति की मूलभूत विशेषताएं हैं-ये बातें हमें वैदिक ऋचाओं में भी

मिलती हैं। परमात्मा की माता-पिता, बंधु-सखा के रूप में अर्चना की गई है-'प्रभु! तुम्हीं हमारे पिता हो, तुम्हीं हमारी माता हो। है अनंतज्ञानी! आपसे ही हम आनंद-प्राप्ति की अकांक्षा करते है-

'त्व हि नों पिता वसोत्वं माता शतक्रतो वभूविथ। अद्या ते सुम्नमीमहै (ऋग्वेद **8/98/11)**।' पूरी तन्मयता और सर्वस्व सर्मपण की भावना को प्रकट करते हुए ऋग्वेद का ऋषि कहता है-'प्रभो ये हैं तेरे उपासक, तेरे भक्त। ये प्रत्येक स्तवन में, तेरे कीर्तन-गान में ऐसे तन्मय होकर बैठते हैं, जैसे मधुमक्षिकाएँ मधु को चारों ओर से घेर कर बैठ जाती हैं। तेरे अंदर बस जाने की कामना रखने वाले तेरे ये स्तोता अपनी समस्त कामनाओं को तुझे सौंपकर वैसे ही, निश्चिंत हो जाते हैं, जैसे कोई व्यक्ति रथ में निश्चिंत होकर बैठ जाता है।'

इमें हि ब्रह्मकृतः सुते सचा मधो न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः।। (ऋ. **7/32/2)**

वेदों मं ईश्वर की सर्वसमर्थता, उसकी महिमा का बखान, उसके प्रति श्रद्धा निवेदित किया गया हैं-

यो भूतं च भव्यं च सर्व श्चाधितिष्ठति
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः (अथर्ववेद-**10 /8/1)**

अर्थात् भूत भविष्य और वर्तमान का जो स्वामी है, जो समस्त विश्व में व्याप्त हैं तथा जो निर्विकार आनद प्रदान करने वाला है, उस ईश्वर को मेरा प्रणाम।' उपनिषदों में तत्व-चिंतन की प्रधानता है- किंतु कहीं-कहीं पर भक्ति विषयक बातें भी मिलती है। ऐतरेय, श्वेताश्वतरोपनिषद में भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हैं, कठोपनिषद में कहा गया है- 'यह आत्मा उत्कष्ट शास्त्रीय व्याख्यान के द्वारा उपलब्ध नहीं किया जाता, मेघा के द्वारा प्राप्त, नहीं होता, बहुत पांडित्य के द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। यह जिसको वरण करता है, उसी को प्राप्त होता है। जिसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त करता है।'

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष विवृणुते तनू, स्वाम।।'

,

यहाँ प्रभुकृपा का वर्णन है, जो कि भक्ति का आधार है। भगवत्कृपा से ही भक्ति की प्राप्ति होती और भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति। भक्ति चिंतन में ईश्वर ही परमतत्व, जगत निर्माता, जगत नियंता, सृष्टि विनाशक है, उसी के द्वारा सृष्टि का सृजन होता है और उसी में सृष्टि विलीन हो जाती है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है 'सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत।' अर्थात् 'जगत की सभी वस्तुएं ब्रह्म हैं, क्योंकि सभी ब्रह्म से ही उत्पन्न होती हैं, ब्रह्म में ही अवस्थान करती है तथा ब्रह्म में ही विलीन हो जाती है। इस प्रकार चिंतन करते हुए मन को शांत रखकर उपासना करनी चाहिए।' छांदोग्य उपनिषद में ही भक्ति को सबसे उत्कृष्ट और सर्वोत्तम रस कहा गया है- 'स एवं रसानां रसतमः परम परार्धे।

उपनिषदों के बाद भक्ति की प्रबल धारा भागवत धर्म के रूप में प्रकट हुई। भागवत धर्म के प्रवर्तन के साथ ही अवतारवाद की अवधारणा का जन्म हुआ बहुदेवोपासना और लीलागान का प्रचलन हुआ। इसमें ईश्वर को ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज-इन **6** गुणों से युक्त माना गया, जिनके द्वारा वह सृष्टि का निर्माण, भरण-पोषण और संहार करता है। अवतारवाद एवं भक्ति का पुराणों में विस्तृत वर्णन है। इनमें भागवत पुराण मुख्य है। दक्षिण के आलवार नयनार भक्तों ने भक्ति तत्व का प्रचार प्रसार किया, आठवीं सदी में शंकराचार्य के अद्वैत एवं मायावाद के कारण भक्ति का प्रवाह थोड़ा अवरूद्ध होता है। किंतु कालांतर में रामानुजाचार्य, निम्बाकाचार्य, विष्णुस्वामी,

मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य ने राम-कृष्ण की भक्ति को लोकप्रिय ही नहीं बनाया उसे एक सैद्धांतिक आधार प्रदान कर शास्त्रीय गरिमा भी दी।

इस प्रकार हम देखते है कि भक्ति का तत्व वेद उपनिषद महाभारत, पुराण आदि से होते हुए सतत् प्रवाहमान रहा, निरंतर विकसित होता रहा। भक्ति आंदोलन ने उसे व्यापक और लोकप्रिय बना दिया। अब आप भक्ति के उदय को समझ गए होंगे, वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति विषयक सिद्धांतों एवं भक्ति आंदोलन की आगे चर्चा की जाएगी।

6.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत

भक्ति के दार्शनिक पक्ष की स्थापना भक्ति आंदोलन की देन है। **8-9**वीं सदी में शंकराचार्य दार्शनिक स्तर पर बौद्धों, जैनों से टकराते हैं और वैदिक धर्म को पुनप्रतिष्ठित करते हैं। शंकर का दार्शनिक सिद्धांत अद्वैतवाद कहलाता है। उनके अनुसार ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या। आत्मा परमात्मा दोनों एक हैं, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। किंतु सांसारिक माया के कारण मनुष्य आत्मा-परमात के अद्वैत का अनुभव नहीं कर पाता है। ज्ञान द्वारा ही अपने आत्मस्वरूप को जाना जा सकता है। वह ज्ञान मार्गी हैं और निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं। शंकर के अद्वैतवाद और मायावाद का परवर्ती वैष्णव आचार्यों द्वारा विरोध किया गया, उन्होंने ज्ञान की जगह भक्ति को प्रमुखता दी। शंकर ने माया वाद द्वारा जिस जगत को मिथ्या कहकर, खारिज कर दिया था, उस जगत को इन आचार्यों ने सत्य माना, ब्रह्म का अंश मानते हुए उसे प्रभु की लीला भूमि के रूप में देखा। आइए, अब हम भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के सिद्धांतों से अवगत हों।

6.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद

आचार्य रामानुजाचार्य ने अवतारी राम को उपास्य देव स्वीकार कर विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की स्थापना की। उनकी दृष्टि में पुरुषोत्तम ब्रह्म सगुण और सविशेष है। ब्रह्म चित्त और अचित विशिष्ट है। ब्रह्म की तरह जीव और माया भी सत्य है। इस भक्ति मार्ग को श्री संप्रदाय भी कहते है। श्री अर्थात् लक्ष्मी इसकी आदि आचार्य हैं, जीव 'लक्ष्मी' की शरण में जाने से ही सगुण ब्रह्म अर्थात् विष्णु तक पहुँच सकता है। भक्तों पर अनुग्रह के निमित्त ही भगवान अवतार ग्रहण करते हैं। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध शेष-शेषी भाव का है। जीव सेवक है ब्रह्म सेव्य। प्रपत्ति या शरणागति ही परमकल्याण का मार्ग है।

जीव, जगत, माया ब्रह्म से भिन्न हेाते हुए भी ब्रह्म के ही अंग है। रामानुज का मत शंकर की अपेक्षा उदार है। उन्होंने भक्ति को जाति भेद से ऊपर मानते हुए सभी मनुष्य की समानता-एकता का प्रतिपादन किया है। इस संप्रदाय का गहरा प्रभाव रामानंद पर पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति भी सेव्य-सेवक भाव की है।

6.7.2 द्वैतवाद

इस मत का प्रवर्तन मध्वाचार्य (**12**वीं शता**0)** ने किया। इनके अनुसार जगत सत्य है, ईश्वर और जीव का भेद, जीव का जीव से भेद, जड़ का जीव से भेद वास्तविक है। जीव और जगत परतंत्र है तथा ईश्वर स्वतंत्र। जीवों के बीच ऊँच एवं नींच की तारतम्यता है, यह सांसारिक अवस्था में ही नहीं मोक्ष दशा में भी विद्यमान रहती है। जीव की अपनी वास्तविक सुखानुभूति ही मुक्ति है। जिसे अमला भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। समस्त जीव हरि के अनुचर हैं। वेद का समस्त तात्पर्य विष्णु ही है। इस संप्रदाय के आचार्य ब्रह्मा है, अतः इसे ब्रह्म संप्रदाय भी कहते है। रामानुज की तरह मध्वाचार्य भी भक्ति मार्ग में सबकी समानता के पक्षधर थे। इस संप्रदाय में कांत या माधर्य भाव की भक्ति है।

6.7.3 शुद्धाद्वैतवाद

इस संप्रदाय के आचार्य रूद्र है अतः इसे रुद्र संप्रदाय भी कहा गया है। इस संप्रदाय के आचार्य विष्णुस्वामी (**13-14**वी सदी) के अनुसार ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप है, जो सदैव अपनी संविद् शक्ति से युक्त रहता है और माया उसी के अधीन रहती है। उन्होंने नृसिंह को ईश्वर का प्रधान अवतार माना है। कुछ लोगों के मत में वे नृसिंह और गोपाल दोनों के उपासक थे।

विष्णु स्वामी की शिष्य परंपरा में ही वल्लभाचार्य (**15**वीं सदी) आते हैं। उन्होंने रूद्र संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांत 'शुद्धाद्वैत' का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार ब्रह्म सर्वथा शुद्ध है। अपनी तीन शक्तियों-संघिनी, संवित तथा आह्लादिनी द्वारा वह क्रमशः सत्, चित् और आनंद का आविर्भाव करता है। ब्रह्म सत्य और नित्य है। उसकी उत्पत्ति नहीं होती। जीव भी नित्य हैं। जीव अणु है और ब्रह्म भूमा। शुद्ध, संसारी और मुक्त-जीव की तीन कोटियाँ हैं। जड़ जगत की उत्पत्ति एवं का विनाश नहीं होता उसका केवल आर्विभाव और तिरोभाव ही होता है। उन्होंने भगवान के पोषण (अनुग्रह) को ही भक्ति की प्राप्ति का आधार माना है। इसीलिए उनके मत को पुष्टि मार्ग कहा गया। रागानुगा भक्ति ही पुष्टि भक्ति है जो साधन भक्ति से श्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म, पुरुषोत्तम और रसरूप है। इस संप्रदाय में कृष्ण के बालरूप की साधना को प्रमुखता दी गयी है।

6.7.4 द्वैताद्वैतवाद-

निम्बार्क (**11**वीं सदी) ने द्वैताद्वैतवाद का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार जीव का ब्रह्म के साथ भेद और अभेद दोनों संबंध है। इसका मूल कारण अवस्था भेद है। जीव और ब्रह्म में अंश-अंशी संबंध है। जीव अल्पज्ञ अणु है। जीव ईश्वर का अंश होने से नित्य है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। इस संप्रदाय में राधा-कृष्ण को युगलोपासना को प्रमुखता दी गई है। इस संप्रदाय के आचार्य सनकादि होने से इसे सनकादि संप्रदाय भी कहते है। इस संप्रदाय की भक्ति सख्य भाव की है।

निम्नलिखित तालिका द्वारा उपरोक्त भक्ति विषयक सिद्धांतों को सरलता से याद किया जा सकता है।

दर्शन	संप्रदाय संस्थापक	भक्ति-भाव
विशिष्टाद्वैतवाद	श्री रामानुजाचार्य	दास्य
द्वैतवाद	ब्रह्म मध्वाचार्य	कांत या माधुर्य
शुद्धाद्वैतवाद	रुद्र विष्णुस्वामी/वल्लभाचार्य	वात्सल्य
द्वैताद्वैतवाद	सनकादि/निम्बार्क निम्बार्काचार्य	सख्य

6.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार

निर्गुण भक्ति के अंतर्गत संत मत और सूफीमत आता हैं। दोनों भक्ति मार्ग में ईश्वर केा अजन्मा, अशरीरी, अगोचर माना गया है। आइए दोनों भक्ति मार्ग के दार्शनिक आधार का हम अध्ययन करें।

6.8.1 संतकाव्य का दार्शनिक आधार

संतमत का विकास वैष्णव धर्म, सिद्धों, नाथों, सूफी मत, शंकर के अद्वैतवाद से प्रेरणा-प्रभाव ग्रहण कर होता है। वैष्णवों से अहिंसा और प्रपत्ति भावना, सिद्धों-नाथों से जाति-पाति, कर्मकाण्ड, शास्त्र का नकार, काया योग, शून्य समाधि, शंकराचार्य से अद्वैत दर्शन, सूफियों से प्रेमतत्व को लेकर कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, अजन्मा मानते हुए अवतारवाद, बहुदेववाद का खण्डन किया। परमतत्व एक ही है जो सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक है। जीव अज्ञानता के कारण क्षणभंगुर संसार को सत्य समझ परमात्मा से विमुख रहता है। सद्गुरू की कृपा से व्यक्ति को आत्मज्ञान मिलता है, और ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है। उस परमात्मा की भक्ति के लिए

न तो शास्त्रज्ञान अपेक्षित है और न ही बाह्य विधि-विधान। ब्रह्म, माया, जीव, जगत सम्बन्धी संत मत की अवधारणाएं शंकराचार्य से प्रभावित है।

6.8.2 सूफी मत

सूफी मत इस्लाम की ही एक शाखा है जिसका उदय इस्लाम के प्रवर्तन के ढाई-तीन सौ वर्षों बाद होता है। भारत में सूफियों का आगमन **12**वीं सदी में माना जाता है। यह एक उदार, सहिष्णु मत है जो इस्लाम की शाखा होते हुए भी उससे बहुत मामलों में भिन्न हैं। 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई, इस पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति 'सफ' से मानते है जिसका अर्थ होता है पंक्ति। उनके अनुसार ईश्वर का प्रिय होने के कारण जो लोग कयामत के दिन सबसे पहली पंक्ति में खड़े होंगे, उन्हें सूफी कहते हैं। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सूफ' शब्द से हुई, जिसका अर्थ है मस्जिद का चबूतरा। जो फकीर मस्जिद के चबूतरे पर सोकर अपनी रात गुजारते थे, सूफी कहलाए। कुछ लोगों के अनुसार 'सूफ' का अर्थ 'पवित्र' है। 'सूफ' ऊन के भी अर्थ में है। सादा और पवित्रता युक्त जीवन जीने वाले और ऊनी चोंगा पहनने वाले फकीरों को ही सूफी कहा जाने लगा। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सोफिया' शब्द से हुई जिसका अर्थ होता है ज्ञान। परमात्मा का ज्ञान रखने वाले फकीरों को सूफी कहा गया। इस प्रकार सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सम्बन्धी कई मत है। आचार्य शुक्ल के अनुसार ''प्रारंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे, दीनता और नम्रता के बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, ऊन के कंबल लपेटे रहते थे, भूख-प्यास सहते थे और ईश्वर के प्रेम में लीन रहते थे।'' **('**जायसी ग्रंथावली' की भूमिका, पृ**0 168)**। इस प्रकार सूफी वे फकीर थे जो सांसारिक भोग-विलास से दूर रहकर, सादा एवं त्यागपूर्ण जीवन जीते हुए हमेशा खुदा के ख्वाब-ख्याल में डूबे रहते थे। सूफियों के अनुसार खुदा सारी कायनात में व्याप्त है। उनका मत इस्लामी एकेश्वरवाद की अपेक्षा शंकर के अद्वैतवाद के ज्यादा करीब है। सूफी मत में साधना की चार अवस्थाएँ हैं- **(1)** शरीअत-अर्थात् शास्त्रानुसार विधि-निषेधों का सम्यक् पालन **(2)** तरीकत-वाह्य विधि-विधान से परे हटकर हृदय को शुद्ध रखकर ईश्वर का ध्यान। **(3)** हकीकत-साधना द्वारा तत्व-बोध की अवस्था। **(4)** मारिफत-आत्मा का परमात्मा में लीन होने की अवस्था, सिद्धावस्था। सूफीमत का मूल तत्व है प्रेम। परमात्मा के प्रेम में पूरी तरह लीन, उन्मुक्त होकर ही प्रेमस्वरूप परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता हैं किंतु यह प्रेम-साधना सरल नहीं, अत्यंत कठिन है। सूफी कवि इश्क मिजाजी (लौकिक प्रेम) के जरिए इश्क हकीकी (अलौकिक) प्रेम का वर्णन करते हैं। उन्होंने परमात्मा को प्रेयसी रूप और आत्मा को प्रेमी रूप में चित्रित किया है। गुरुकृपा से ही परमात्मा का (प्रियतमा के सच्चे रूप का) ज्ञान होता है। प्रियतमा को प्राप्त करने के लिए प्रेमी को ढेर सारी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। माया या शैतान के कारण विघ्न-बाधाएँ उपस्थिति होती हैं। अन्ततः अपने सच्चे प्रेम के कारण गुरु और परमात्मा की कृपा से उसे सफलता मिलती है।

6.9 भक्ति आंदोलन

भक्ति आंदोलन मध्यकाल की एक महत्वपूर्ण घटना है। एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया जिसने भारतीय समाज की गहरे तक प्रभावित किया। बुद्ध के बाद का सबसे प्रभावी आंदोलन जो समूचे देश में फैला जिसमें ऊँच-नीच, स्त्री-पुरूष, हिंदू-मुस्लिम सभी की भागीदारी थी। अपने मूल रूप में यद्यपि यह एक धार्मिक आंदोलन था, किंतु सामाजिक रूढ़ियों, सामंती बंधनों के नकार का स्वर, एक सहिष्णु, समावेशी समाज की संकल्पना भी इसमें

मौजूद थी। भक्ति काव्य इसी भक्ति आंदोलन की उपज है। आइए हम इसके विविध पक्षों-उदय एवं विकास, उत्पत्ति के कारणों, महत्व एवं प्रदेय की पड़ताल करें-

6.9.1 भक्ति आंदोलन उदय एवं विकास

मध्यकाल में लगभग **3-4** सौ वर्षों तक चलने वाले भक्ति आंदोलन का जन्म सहसा नहीं होता। भक्ति आंदोलन को हम दो भागों में विभक्त कर सकते **6-10** सदी और **10-16** सदी का कालखण्ड। भक्ति के बीज तो वैदिक काल में ही मिलते है। ब्राह्मण, उपनिषद, पुराण से होते हुए क्रमशः भक्ति का विस्तार होता है। और भागवत संप्रदाय के रूप भक्ति को एक व्यापक आयाम मिलता है। एक आंदोलन के रूप में भक्ति को प्रचारित-प्रसारित करने का श्रेय, दक्षिण के अलवार, नयनार भक्तों को है जिनका समय **6-10** सदी तक है। भक्ति आंदोलन का उदय दक्षिण से हुआ और वह क्रमशः उत्तर भारत में फैलता गया। हिन्दी में उक्ति है-'भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद/प्रगट करी कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड।' दोनों उद्धरणों से विदित होता है कि भक्ति का उदय द्रविड़ देश (तमिलनाडु) में हुआ। एक संस्कृत श्लोक से ज्ञात होता है कि द्रविड़ देश में उदय के पश्चात्, भक्ति का आगे विकास कर्नाटक, फिर महाराष्ट्र में हुआ और उसका पतन गुजरात देश में हुआ, फिर वृंदावन में उसे पुनर्जीवन, उत्कर्ष मिला। हिन्दी की अनुश्रुति में भक्ति को रामानंद द्वारा दक्षिण से उत्तर ले जाने और कबीर द्वारा प्रचारित-प्रसारित किए जाने का स्पष्ट संकेत है। स्पष्ट है कि संस्कृत श्लोक का सम्बद्ध कृष्ण भक्ति से और हिन्दी अनुश्रुति का सम्बन्ध रामभक्ति से है। बहरहाल आलवारों नयनारों का प्रमुख विरोध बौद्ध और जैन धर्म से था। उन दिनों दक्षिण में इन दोनों धर्मों का काफी प्रभाव था, किन्तु अपने मूल स्वरूप को खोकर ये धर्म कर्मकाण्डीय जड़ता और तमाम तरह की विकृतियों के शिकार हो गए थे। ऐसे समय में आलवार (विष्णुभक्त) और नयनार (शिव भक्त) संतों ने जनता के बीच भक्ति को प्रचारित करने का कार्य किया। महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन को ज्ञानदेव, नामदेव ने आगे बढ़ाया। इनकी भक्ति सगुण-निर्गुण के विवादों से परे थी। ज्ञानदेव की भक्ति पर उत्तर भारत के नाथ पंथ का भी गहरा प्रभाव था। आगे चलकर महाराष्ट्र में तुकाराम और गुरु रामदास हुए। आठवीं सदी में शंकराचार्य ने बौद्धधर्म का प्रतिवाद करते हुए वेदों, उपनिषदों की नई व्याख्या कर वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया। उनका विरोध अलवार एवं नयनार से भी था। उन्होंने अद्वैतवाद, मायावाद का प्रवर्तन कर ज्ञान को, सर्वोपरि महत्ता दी। शंकराचार्य का विरोध परवर्ती वैष्णव आचार्यों रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य, निम्बार्क ने किया। ये लोग सगुण ब्रह्म के उपासक और भक्ति द्वारा मुक्ति को मानने वाले थे। शंकराचार्य जहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे वहीं इन आचार्यों का
भक्तिमार्ग भेदभाव रहित था ।

रामानुज के शिष्य राघवानंद ने भक्ति को उत्तर भारत में प्रचारित किया। इनके शिष्य रामानंद हुए, जिन्होंने भक्ति मार्ग को और भी उदार बनाकर सगुण-निर्गुण दोनों की उपासना का उपदेश दिया। इनके शिष्यों में सगुण भक्त और निर्गुण संत दोनों हुए। इनके बाहर शिष्य प्रसिद्ध है-रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, अनंतानंद, सुरसुरानंद, पद्मावती, सुरसुरी। रामानंद ने रामभक्ति मार्ग को प्रशस्त किया, जिसमें आगे चलकर तुलसीदास हुए। श्री कृष्ण भक्तिमार्ग को वल्लभाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्क, हितहरिवंश, विट्ठलनाथ ने आगे बढ़ाया निर्गुण भक्तिमार्ग में कबीर सर्वोपरि है, उन्होंने, वैष्णव सम्प्रदाय से ही नहीं, सिद्धों, नाथों और महाराष्ट्र के संतज्ञानेश्वर, नामदेव से बहुत कुछ ग्रहण कर निर्गुण पंथ का उत्तर भारत में प्रवर्तन किया।

भारत में इस्लाम के आगमन के साथ सूफी मत का भी प्रवेश हुआ। सूफी मत इस्लाम की रूढ़ियों से मुक्त एक उदारवादी शाखा है। इसके कई संप्रदाय है-चिश्ती, कादिरा, सुहरावर्दी, नक्शबंदी, शत्तारी। भारत में चिश्ती और सुहरावर्दी संप्रदाय का विशेष प्रसार हुआ। हिंदू-मुस्लिम के सांस्कृतिक समन्वयीकरण में सूफी मत काफी सहायक हुआ।

इस प्रकार भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत से शुरु होकर समूचे भारत में फैला और शताब्दियों तक जन सामान्य को प्रेरित-प्रभावित करता है। उसका एक अखिल भारतीय स्वरूप था, उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी जगहों पर हम इस आंदोलन का प्रसार देखते हैं, सभी वर्ग, जाति, लिंग, समुदाय, संप्रदाय, क्षेत्र की इसमें भूमिका, सहभागिता थी। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, रामदास, गुजरात में नरसी मेहता, राजस्थान में मीरा, दादू दयाल, उत्तर भारत में, कबीर, रामानंद, तुलसी, सूर जायसी, रैदास, पंजाब में गुरु नानक देव, बंगाल में चण्डीदास, चैतन्य, जयदेव असम में शंकरदेव सक्रिय थे। भक्ति आंदोलन में दौरान कई संप्रदायों का जन्म हुआ, जिन्होंने मानववाद के उच्च मूल्यों का प्रसार किया, सामान्य जन-जीवन में स्फूर्ति एवं जागरण का संचार किया।

6.9.2 भक्ति-आंदोलन के उदय के कारण

भक्ति आंदोलन का उदय मध्यकालीन इतिहास की एक प्रमुख घटना है। इसका उदय अकस्मात नहीं होता है बल्कि बहुत पहले से ही इसके निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी, जिसे युगीन परिस्थितियों ने गति प्रदान किया। ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन माना है- उनका यह मत अप्रमाणिक, अतार्किक है। आचार्य शुक्ल ने इसे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम मानते हुए पराजित हिंदू समाज की सहज प्रतिक्रिया माना है, वह लिखते है-'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने उनके देव-मंदिर गिराए जाते थे, देव, मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नही कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनैतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी-सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश लोगों के लिए भगवान की शक्ति और कारण की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 60)। इस प्रकार शुक्ल जी भक्ति आंदोलन के उदय केा इस्लाम के आक्रमण से क्षत-विक्षत, अपने पौरुष से हताश हिन्दू जाति के पराजय बोध से जोड़ते हैं। भक्ति काल के उदय सम्बन्धी शुक्ल जी के मत से असहमति जताते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि-'मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस हिंदी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता, जैसा कि आज है।' (हिंदी साहित्य की भूमिका) आचार्य द्विवेदी भक्तिआंदोलन पर इस्लामी आक्रमण का प्रभाव तो स्वीकार करते हैं, किंतु भक्ति आंदोलन को उसकी प्रतिक्रिया नहीं मानते। बहरहाल दोनों आचार्यों के मतों में भिन्नता के बावजूद इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भक्ति आंदोलन का एक सम्बन्ध इस्लामी आक्रमण से भी है। द्विवेदी जी भक्ति आंदोलन को भारतीय परंपरा का स्वाभाविक विकास मानते है, इसे उन्होंने शास्त्र और लोक के द्वन्द्व की उपज माना है जिसमें शास्त्र पर लोकशक्ति प्रभावी साबित हुई, और भक्ति आंदोलन का जन्म हुआ। इसके मूल में वह बाहरी कारणों की जगह भीतरी शक्ति की ऊर्जा देखते है-'भारतीय पांडित्य ईसा की एक शताब्दी बाद आचार-विचार और भाषा के क्षेत्रों में स्वभावतः ही लोक की ओर झुक गया था। यदि अगली शताब्दियों में भारतीय इतिहास की अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना अर्थात् इस्लाम का प्रमुख विस्तार न भी घटी होती तो भी वह इसी रास्ते जाता। उसके भीतर की शक्ति उसे इसी स्वाभाविक विकास की ओर ठेले जा रही थी।' (हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ0-15)। द्विवेदी जी, मध्यकालीन भक्ति साहितय के विकास के लिए बौद्ध धर्म के लोक धर्म में रूपांतरित होने और प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगार प्रधान कविताओं की प्रतिक्रिया को देखते है। इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत उल्लेखनीय है-'अच्छा होगा कि प्रभाव और प्रतिक्रिया दोनों रूपों में इस्लाम की व्याख्या सहज भाव और अकुंठ मन से किया जाए। तब आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी के बीच दिखने वाला यह प्रसिद्ध मतभेद अपने-आप शांत हो जाएगा। भक्ति-काव्य के विकास के पीछे बौद्ध धर्म का लोक मूलक रूप है और प्राकृतों के श्रृंगार काव्य की प्रतिक्रिया है तो इस्लाम के सांस्कृतिक आतंक से बचाव की सजग चेष्टा भी है।' (हिंदी साहित्य

और संवेदना का विकास, पृ**0-33)** वह मध्यकालीन भक्तिकाव्य के उदय में इस्लाम की आक्रामक परिस्थिति का गुणात्मक योगदान स्वीकार करते हैं। भक्ति आंदोलन के उदय के पीछे तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियाँ भी कार्यरत थी, इसका विवेचन के दामोदरन, इरफान हबीब, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध ने किया है। इस्लामी राज्य की उत्तर भारत में स्थापना और उसकी स्थिरता के कारण व्यापार वाणिज्य का तेजी, से विकास होता है, नये उद्योग-धंधे ही नहीं, स्थापित होते, नए-नए नगरों का भी निर्माण होता है, इसके फलस्वरूप भारत का जो कामगार वर्ग था, जिसमें प्रायः निचली जातियों के लोग अधिक थे की आर्थिक स्थिति में सुधार होता और उनमें एक आत्मसम्मान, अपनी सम्मानजनक सामाजिक स्थिति को पाने की भावना बलवती होती है। यह अकारण नहीं है कि भक्ति आंदोलन में इन निचली जातियों की भागीदारी सर्वाधिक है। इस्लामी राज्य स्थापित से होने से परम्परागत सामाजिक ढाँचें को एक धक्का लगता है, सामंतों एवं पुरोहितों का प्रभुत्व-प्रभाव कम होता है। कह सकते है भक्ति आंदोलन के उदय में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ सभी अपना योगदान दे रही थी। अत: भक्ति आंदोलन के उदय में कई कारणों का संयुक्त योगदान है।

6.9.3 भक्ति आंदोलन का महत्व

भक्ति आंदोलन मध्यकाल का एक व्यापक और प्रभावी आंदोलन था, जिसने भारतीय समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। इसने एक ओर जहाँ सत्य शील, सदाचार, करूणा, सेवा जैसे उच्च मूल्यों को प्रचारित किया वहीं समाज के दबे-कुचले वर्ग को भक्ति का अधिकारी, बनाकर उनके अंदर आत्मविश्वास का संचार भी किया। भक्ति आंदोलन की प्रगतिशील भूमिका को रेखांकित करते हुए शिवकुमार मिश्र लिखते है-'इस आंदोलन में पहली बार राष्ट्र के एक विशेष भूभाग के निवासी तथा कोटि-कोटि साधारण जन ही शिरकत नहीं करते, समग्र राष्ट्र की शिराओं में इस आंदोलन की ऊर्जा स्पंदित होती है, एक ऐसा जबर्दस्त ज्वार उफनता है कि उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सब मिलकर एक हो जाते है, सब एक दूसरे को प्रेरणा देते है, एक-दूसरे से प्रेरणा लेते है, और मिलजुल कर भक्ति के एक ऐसे विराट नद की सृष्टि करते हैं, उसे प्रवहमान बनाते हैं, जिसमें अवगाहन कर राष्ट्र के कोटि-कोटि साधारण जन सदियों से तप्त अपनी छाती शीतल करते हैं, अपनी आध्यात्मिक तृषा बुझाते हैं, एक नया आत्म् विश्वास, जिंदा रहने की, आत्म सम्मान के साथ जिंदा हरने की शक्ति पाते हैं।' **(**भक्ति-आंदोलन और भक्तिकाव्य-पृ**. 11)** भक्ति आंदोलन एक व्यापक लोकजागरण था।

6.10 भक्ति कालीन कविता का उदय

भक्तिकाव्य भक्ति आंदोलन की उपज है। सबसे पहले हमें निर्गुण पंथ दिखलाई पड़ता हैं, जिनमें कबीर प्रमुख हैं। कबीर रामानंद के शिष्य हैं। कबीर के पहले महाराष्ट्र में नामदेव हिंदी में रचना कर चुके थे, उनमें निर्गुण और सगुण दोनों की उपासना है। कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन पर अद्वैतवाद, वैष्णवी अहिंसावाद, प्रप्रत्तिवाद, सिद्ध, नाथ मत का पूरा प्रभाव था। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर जोर देते हुए, बहुदेववाद, शास्त्रों एवं कर्मकाण्डों का विरोध किया। उनकी भक्ति भावमूलक हैं, जिसकी उपलब्धि सद्गुरू की कृपा से होती है। कबीर की ही परंपरा में रैदास, रज्जब, दादू आदि संत कवि आते हैं। सूफी मत पर आधारित प्रेमाख्यानक काव्य तब प्रकाश में आता है जब भारत में सूफी मत का प्रसार होता हैं। सूफी फकीरों में निजामुद्दीन ओलिया और ख्वाजामुइनुद्दीन चिश्ती प्रमुख हैं। सूफी संत कवियों में कुतुबुन, मंझन, मलिजक मुहम्मद जायसी, उसमान आदि प्रमुख हैं। इन सूफी संतों ने प्रचलित हिंदू कथाओं को, आधार बनाकर ईश्वरीय प्रेम का निरूपण किया है। रामभक्ति की शुरुआत रामानंद से होती है। जिसे चरमोत्कर्ष पर गोस्वामी तुलसीदास ले जाते हैं। उत्तर भारत में कृष्ण भक्ति का प्रसार वल्लभाचार्य ने किया। पुष्टिमार्गी अष्टछाप के कवियों ने कृष्णकाव्य का प्रणयन किया इनमें सूरदास और नंददास प्रमुख है। अष्टछाप कवियों के पूर्व

संस्कृत में जयदेव और मैथिल में विद्यापति ने कृष्ण काव्य की रचना की थी। आगे की इकाई में भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं के उद्भव एवं विकास का विस्तृत विवेचन किया जाएगा।

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आलवर भक्तों में महिला भक्त थीं**?**

2. द्वैताद्वैत का प्रवर्तन किसने किया**?**

3. शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध करने वाले प्रथम वैष्णव आचार्य हैं**?**

4. गुजरात के प्रमुख भक्त कवि हैं**?**

5. नवधा भक्ति का उल्लेख किस ग्रंथ में हैं**?**

6. भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन किसने माना है**?**

7. भक्ति आंदोलन को भारतीय परंपवरा का स्वाभाविक विकास किस आलोचक ने माना है**?**

8. नामदेव की भक्ति किस प्रकार हैं**?**

6.11 सारांश

हिंदी साहित्य का पूर्वमध्यकाल (**14**वीं सदी के मध्य से **17**वीं सदी के मध्य तक) के साहित्य की मूल संवेदना भक्ति होने के कारण भक्तिकाल कहा गया। भक्ति के आदि बीज वेदों में मिलते हैं, ब्राह्मण, ग्रंथों, उपनिषद, पुराणों से होते हुए भागवत धर्म में भक्ति को व्यापक आयाम मिलता है। कालांतर में वैष्णव आचार्यों रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, मध्वाचार्य ने भक्ति को दार्शनिक आयाम देते हुए भक्ति मार्ग को उदार बनाया। दक्षिण के आलवार भक्तों ने राम, कृष्ण की उपासना पर जोर दिया और दक्षिण भारत में एक आंदोलन की तरह भक्ति आंदोलन का प्रचार किया। दक्षिण से भक्ति आंदोलन का प्रसार उत्तर भारत में होता है रामानंद, वल्लभाचार्य के माध्यम से। भक्ति आंदोलन एक व्यापक आंदोलन था जिसमें सभी वर्ग, जाति, क्षेत्र, भाषा की भूमिका थी। मूलतः धार्मिक आंदोलन होते हुए भी भक्ति आंदोलन का एक सामाजिक आयाम भी है। तत्कालीन राजनीति, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ और पहले चली आ रही लोकपरम्परा, भक्ति आंदोलन के उदय का कारण बनती है। भक्ति काव्य इसी आंदोलन की उपज है। इसी की कोख से, संत काव्य, सूफी प्रेमाख्यान काव्य, रामकाव्य, कृष्ण भक्ति काव्य का जन्म होता है। जिसे कबीर, जायसी, सूर, तुलसी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हैं।

6.12 शब्दावली

(1) अवतारवाद- वैष्णव संप्रदाय में ईश्वर के अवतार की कल्पना की गई। ईश्वर धर्म और धरा की रक्षा के लिए धरती पर जन्म लेता है। विभिन्न शास्त्रों में अवतारों की संख्या भिन्न-भिन्न है, कहीं **7**, कहीं **10** कहीं **24** अवतारों का उल्लेख मिलता है। राम और कृष्ण प्रमुख अवतार है, जिनकी भक्ति का मध्यकालीन भक्ति काव्य में वर्णन मिलता है।

(2) प्रपत्ति भावना- प्रपत्ति का अर्थ है शरणागति। प्रभु के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पित कर देना। प्रपत्ति को भक्ति का प्रमुख साधन माना गया हैं।

(3) अनात्मवाद- भारतीय चिंतन परंपरा में आत्मा सम्बन्धी दो विचारधारा है- आत्मवाद और अनात्मवाद या नैरात्म्यवाद। आत्मवाद के अनुसार आत्मा नित्य, अजर-अमर, चेतन है। हिंद-धर्म-दर्शन आत्मवादी है। अनात्मवाद के अनुसार या तो आत्मा है ही नहीं और यदि है तो वह नश्वर और परिवर्तनशील है।

(4) मायावाद- शंकराचार्य के अनुसार आत्मा, परमात्मा दोनों में अद्वैत संबंध है। किंतु माया के कारण मनुष्य दोनों की अद्वैतता का अनुभव नहीं कर पाता। माया के कारण ही मनुष्य सांसारिक प्रपंचों और जगत केा सत्य मान परमात्मा से विमुख रहता है। इस माया के नाश द्वारा ही मनुष्य को परमपद की प्राप्ति हो सकती है। माया के बंधनों से मुक्ति ज्ञान से होती है।

(5) बहुदेवोपासना- बहुदेववाद हिंदू धर्म की विशेषता है। हिंदू धर्म में ईश्वर के कई रूपों की मान्यता है। दअसल बहुदेववाद अवतारवाद की देन है।

(6) नवधाभक्ति- भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों का उल्लेख है। ये नौ साधन हैं-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य, आत्मनिवेदन। यही नवधा भक्ति है।

6.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अंडाल

2. निम्बार्क

3. रामानुजाचार्य

4. 'नरसी मेहता

5. भागवत पुराण

6. ग्रियर्सन

7. हजारी प्रसाद द्विवेदी

8. सगुण-निर्गुण

6.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।
4. शुक्ल, रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
5. मिश्र, शिव कुमार- भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन।

6.15 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	- रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास	- सं. नगेंद्र
3. भारतीय चिंतन परम्परा	- के**0** दामोदरन
4. हिन्दी साहित्य कोश-भाग-**1**	**-** सं. धीरेन्द्र वर्मा
5. भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार	- सं. गोपेश्वर सिंह
6. भक्ति काव्य का समाज दर्शन	- प्रेमशंकर

6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के मतों का परिचय दीजिए?

(2) भक्ति आंदोलन के उदय एवं विकास पर प्रकाश डालिए?

(3) 'अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी हिन्दी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।' इस कथन का आशय स्पष्ट करते हुए भक्ति आंदोलन के उदय के कारणों की व्याख्या कीजिए।

(4) भक्ति आंदोलन की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

इकई 7 **रीतिकालः परिचय एव आलोचना**

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 रीतिकाल परिचय
7.3.1 पृष्ठभूमि एव प्रवर्त्तक का प्रश्न
7.3.2 काल-विजान
7.3.3 नामकरण
7.3.4 वर्गीकरण
7.3.5 प्रवृत्तियाँ
7.4 रीतिकालः आलोचनात्मक संदर्भ
7.4.1 दरबारीपन
7.4.2 वर्ण्य- संकोच: नकल या मौलिकता
7.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान
7.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ
7.6 रीतिकाल: मूल्यांकन
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.11 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री
7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास के उत्तर-मध्यकाल को 'रीतिकाल' की संज्ञा प्रदान की गई है। मध्यकालीन कविता के दो भाग है, जिसमें एक को भक्तिकाल कहा गया और दूसरे को रीतिकाल। भक्तिकाल अपनी विषय वस्तु एवं अभिव्यक्ति में अलग ढंग का काव्य है, तो रीतिकाल अलग ढंग का। कालगत मजबूरी न हो तो भक्तिकाल एवं रीतिकाल को एक साथ विवेचित करने का भी कोई औचित्य नहीं है। भक्तिकाल लोक संवेदना से युक्त काव्य है तो रीतिकाल राजाश्रय प्राप्त काव्य। एक भक्तित्व से युक्त है तो दूसरा श्रृंगारिक तत्व से। रीतिकालीन साहित्य के बारे में तटस्थ मूल्यांकन भी कम ही हुए हैं। एक वर्ग के आलोचक जहाँ इसे घोर सामंती छाया का काव्य मानते हैं तो दूसरा वर्ग इसे साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ काव्य कहता है। इन दो अतिवादों के बीच रीतिकालीन कविता के पुनर्मूल्यांकन के प्रयास भी समय-समय पर होते रहें हैं। इस इकाई के माध्यम से हम रीतिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं उसके साहित्यिक मूल्यांकन का प्रयास करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- रीतिकाल के काल-सीता, नामकरण से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकालीन प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकालीन समाज, संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकाल के वर्गीकरण एवं स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल के प्रमुख कवियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल की उपलब्धि एवं सीमा को जान सकेंगे।

7.3 रीतिकाल परिचय

'रीतिकाल' मध्यकाल का प्रमुख काव्यान्दोलन था। भक्ति काल के बाद रीतिकालीन साहित्य का आगमन और फिर रीतिकालीन साहित्य के बाद पुनर्जागरणकालीन चेतना का उदय, यह चक्र कई इतिहासकारों के लिए पहेली सा है। लेकिन जो इतिहासकार साहित्य के समाज शास्त्रीय पद्धति से उसका अध्ययन करता है, उसके लिए रीतिकालीन साहित्य सामंती समाज को समझने का एक प्रामाणिक माध्यम भी बन जाता है। इस दृष्टि से रीतिकालीन कविता का अपना अलग महत्व है। इस इकाई में हम रीतिकालीन कविता को उसकी संपूर्णता में समझने को प्रयास करेंगे। रीतिकालीन साहित्य की विशेषता से पूर्व आइए हम उसकी पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करें।

7.3.1 पृष्ठभूमि

भारतीय मध्यकाल में भक्तिकाल का साहित्य जहाँ अपने औदात्य में प्रसंशित काव्य रहा है,

वहीं रीतिकाल विषय-वस्तु के स्तर पर हमें उतना संतुष्ट नहीं कर पाता। इसके कई कारण हैं, जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे। कई आलोचकों ने यह प्रश्न उठाया है कि भक्तिकाल जैसे श्रेष्ठ साहित्यिक काल के बाद रीतिकाल का आगमन कैसे और क्यों हुआ? साहित्य में क्या इतिहास-संस्कृति या समाज में परिवर्तन अचानक नहीं होता। लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया के बाद कोई परिवर्तन होता है। इतिहास के राजनीतिक दृष्टिकोण से यदि हम देखें कि क्या कोई बड़ा (आधाभूत) परिवर्तन हुआ है तो इसका उत्तर हमें नहीं में मिलेगा। पूरे मध्यकाल की चेतना राजनीतिक दृष्टि से सामंती ही है, हाँ उसके स्वरूप में परविर्तन अवश्य हुआ है। रीतिकाल तक आते-आते सम्पूर्ण देश पर (प्रायः) मुगलकालीन सल्तनत स्थापित हो चुकी होती है। छोटे-छोटे हिन्दु राजा मुगल दरबार में 'कर' भेजकर भोग-विलीस

में रत होते हैं। राजाश्रय प्राप्त कवियों का प्रधान ध्येय कामोद्दीप्त राजाओं के लिए उपभोग के चित्र खड़ा करना हो गया, कविता के मल्य पीछे चले गये। भक्तिकाल से रीतिकाल में रूपान्तरण पर टिप्पणी करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है.....''भक्ति की अनुभूति की सद्यनना को व्यक्त करने के लिए बहुत बार राधा-कृष्ण के चरित्र, और दाम्पत्य जीवन के विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया। ..... कालान्तर में राधा-कृष्ण के चरित्र अपने रूप में हट गए और वे महज़ दाम्पत्य जीवन के प्रतीक -रूप में अवशिष्ट रह गए। प्रेम और भक्ति की संपृक्त अनुभूति में से भक्ति क्रमशः क्षीण पड़ती गई, और प्रेम का श्रृंगारिक रूप केन्द्र में आ गया। भक्तिकाल के रीति- काल में रूपान्तरण की यही प्रक्रिया है।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - **56)** राजनीतिक दृष्टि से मुगलसत्ता की प्रतिष्ठा और हिन्दु राजाओं का लडाई से अलग होना, मनोवैज्ञानिक रूप से श्रद्धा तत्व के अभाव में प्रेम का वासनामय होना, परम्परा की दृष्टि से प्राकृत-संस्कृत की श्रृंगारिक रचना इत्यादि वे कारण थे, जो रीतिकाल के उदय होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

7.3.2 काल-विभाजन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल का काल-विभाजन करते हुए इसे **1643** ई. से लेकर **1843** ई. तक स्थिर किया है। चिंतामणि त्रिपाठी से लेकर अन्तिम बड़े रीतिकालीन कवि पद्माकर के रचनाकर्म को यह काल- समेटे हुए है। मोटे तौर पर प्रमुख आलोचकों ने रीतिकाल का काल विभाजन इस प्रकार किया है-

समय सीमा	आलोचक
1643-1843 ई.	रामचन्द्र शुक्ल
1700- 1900 ई.	हजारी प्रसाद द्विवेदी
1700-1868 ई.	डा. नगेन्द्र
1650-1850 ई.	रामस्वरूप चतुर्वेदी
1650- 1850 ई.	रामविलास शर्मा/ बच्चन सिंह
1624- 1832 ई.	मिश्रबंधु

काल-विभाजन संबंधी प्रमुख आलोचकों के मतों को देखने पर यह बात सहज ही ध्वनित होती है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल-विभाजन ही मोटे तौर पर स्वीकृत रहा है।रीतिकाल के काल-विभाजन को संशोधित रूप में **1650** ई. से **1850** ई. के बीच मान लिया गया है। **1643** ई. से चिन्तामणि त्रिपाठी के माध्यम से रीतिकालीन प्रवृत्ति अखंड रूप से चली और पद्माकर की मृत्यु **1832** ई. के बाद समाप्त होती है। **1842- 43** ई. से राजा लक्षमण सिंह और राजा शिवप्रसाद सितारे 'हिन्द' का रचनाकाल प्रारंम्भ हो जाता है, अतः मोटे तौर पर **1850** ई. से रीतिकाल का समापन काल एवं आधुनिक काल का प्रारम्भ वर्ष मान लिया गया है।

रीतिकाल के प्रवर्त्तन के प्रश्न पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में मतैक्य नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी रीतिकाल के प्रवर्त्तन का श्रेय चिंतामणि त्रिपाठी को दिया है। उन्होंने लिखा है- '' इसमें संदेह नहीं कि काव्यरीति का सम्यक् समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने किया। पर हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्रायः **50** वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।'' केशवदास का समय **1590** से प्रारम्भ होता है, जो कविप्रिया, रसिकप्रिया का रचनाकाल भी है। आचार्य शुक्ल के अतिरिक्त रीतिकाल के प्रवर्त्तक पर अन्य आचार्यों का मत इस प्रकार है-

केशव - जगदीश गुप्त, श्यामयुन्द दास, डा. नगेन्द्र

विद्यापति - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

कृपाराम - भगीरथ मिश्र

इन सभी मतों का समन्वय करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ‘‘हिन्दी रीतिकाल परम्परा का आरंभ कहाँ से होता है, इस संबंध में कई दृष्टिकोण उपस्थित किए गए हैं। कालक्रम की दृष्टि से कृपाराम (रचनाकाल – 1541 ई.) का नाम पहले आता है, रचनाकार – व्यक्तित्व की समृद्ध की दृष्टि से केशव दास का (1555-1617 ई.) और आगे अखंड परम्परा चलने के विचार से चिंतामणि का (रचनाकाल - **1643** ई. के आस-पास)। रीतिकाव्यधारा अधिक सजग और व्यस्थित रूप से चलने के कारण यहाँ प्रवर्त्तन की बात कुछ अधिक स्पष्ट रूप से उठती है। कई काव्यशास्त्रीय पक्षों, और प्रबंध तथा मुक्तक शैलियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण भक्ति से रीतिकाव्यधारा में रूपान्तरण का श्रेय अधिकतर केशवदास को दिया जाता है। वे कालक्रम से भक्तिकाल में है, पर प्रवत्ति की दृष्टि से रीतिकाल में। **"(**हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास’, पृष्ठ - **63)** आधुनिक आलोचकों ने रीतिकाल का सम्यक् निरूपण करने के कारण केशवदास को ही रीतिकाल का प्रवर्त्तक मान है।

7.3.3 नामकरण

रीतिकाल के नामकरण के प्रश्न पर टिप्पणी करते हुए डा. बच्चन सिंह ने लिखा है ‘‘ इस काल का नाम रीतिकाल रखने का श्रेय रामचन्द्र शुक्ल को है। प्रवृत्ति की दृष्टि से इससे बेहतर नाम की कल्पना नहीं की जा सकती ।’’ **(**हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास’ पृष्ठ **179)** नामकरण के औचित्य पर चर्चा करते हुए हिन्दी साहित्य कोश, भाग **1** में टिप्पणी की गई है-" इस काल के काव्य की प्रभुत्व धारा का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। यह ‘रीति’ शब्द संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ‘रीति’ शब्द से भिन्न अर्थ रखनेवाला है । .....संस्कृत की रीति संबंधी यह धारण हिन्दी काव्यशास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गई है। परन्तु रीति को काव्य - रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य- रचना करना, रीति का अर्थ मान्य हुआ। इस प्रकार रीतिकाल का अर्थ हुआ ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो। इनके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही ‘रीति’ नाम से विख्यात हुई। ’’ **(**पृष्ठ- **563)** रीतिकालीन काव्य रचना की विशेष पद्धति क्या थी? इस प्रश्न को थोडा़ और अच्छे ढंग से समझ लेना चाहिए। रीतिकाल के अधिकांश कवि, आचार्य - कवि थे। वे राजकुमार- राजकुमारियों को शास्त्रीय ज्ञान देने के लिए शिक्षक नियुक्त किये गए थे। अतः पहले वे शास्त्रीय ढंग से किसी विषय के लक्षण बताया करते थे और फिर व्यावहारिक रूप से लक्षण को स्पष्ट रकने लिए उदाहरण के रूप में स्व-निर्मित कविता की रचना किया करते थे। इस प्रकार लक्षण- उदाहरण की यह विशेष पद्धति ही ‘रीतिकाल’ नामकरण का आधार बनी। ‘रीतिकाल’ का नामकरण इसी आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। बावजूद इसके कई आलोचकों ने इस नामकरण से असहमति व्यक्त की है। उनका तर्क है कि ‘रीतिकाल’ नामकरण से इस युग की किसी प्रवृत्ति का बोध नहीं होता । रीतिकाल के अतिरिक्त इस युग का नामकरण अन्य आलोचकों ने अपने तर्की के अनुसार किया है , उसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

नामकरण	आलोचक
अलंकृत काल	मिश्रबंधु
कलाकाल	डा. रामाशंकर शुक्ल ‘रसाल’
श्रृंगार काल	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
रीतिकाल	ग्रियर्सन
मुक्तक काल	नन्ददुलारे बाजपेयी
दरबारीकाल	राहुल सांस्कृत्यायन
रीतिकाल	रामचन्द्र शुक्ल, डा. नगेन्द्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी, बच्चन सिंह

रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की प्रधानता रही, अलंकरण की वृत्ति के कारण अलंकारों का प्रयोग ज्यादा हुआ तथा दरबारी वृत्ति के प्रायः रचनाकार थे, अतः उपरोक्त नामकरण भी अपनी सार्थकता अवश्य रखते हैं। किन्तु 'रीतिकाल; नामकरण अपनी वैज्ञानिकता एवं प्रसिद्धि के कारण बहुमान्य रहा है। अतः यहाँ हम भी इसी नामकरण को उचित मानते हैं।

7.3.4 वर्गीकरण

रीतिकाल का मूल स्वरूप दरबारीकाल और श्रृंगारिक रहा है, किन्तु उसके स्वरूप में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम रीतिकाल का विभाजन किया है। शुक्ल जी ने स्पष्ट ढंग से रीतिकाल को दो भागों में विभाजित किया है-

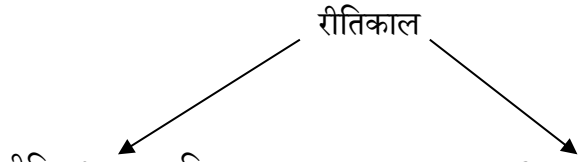

शुक्ल जी के अनुसार रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति रीति निरूपण की रही है। लेकिन कुछ कवियों ने रीति पद्धति का पालन नहीं किया है, इसलिए उन्होंने उन कवियों को 'अन्य कवि' कहा है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल का सबसे पूर्व, वैज्ञानिक विभाजन करने हुए इसे रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध इत्यादि कहा है। डा. नगेन्द्र ने इसे और स्पष्ट ढंग से विभक्त करते हुए रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त नाम दिया है। डा. बच्चन सिंह ने रीतिकालीन कविता का विभाजन करते हुए इसे रीतिचेतस और काव्य चेतस नाम दिया है। रीतिबद्ध कविता के साथ ही उन्होंने मुक्त रीति नामक विभाजन और किया है और उसे पुनः क्लासिकल (बिहारी) और स्वच्छन्द (घनानन्द) के उप-विभाजनों में बाँट दिया है। वस्तुतः रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन विभाजन ही सर्वमान्य रहै हैं, जिसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

रीतिकालीन कविता का वर्गीकरण

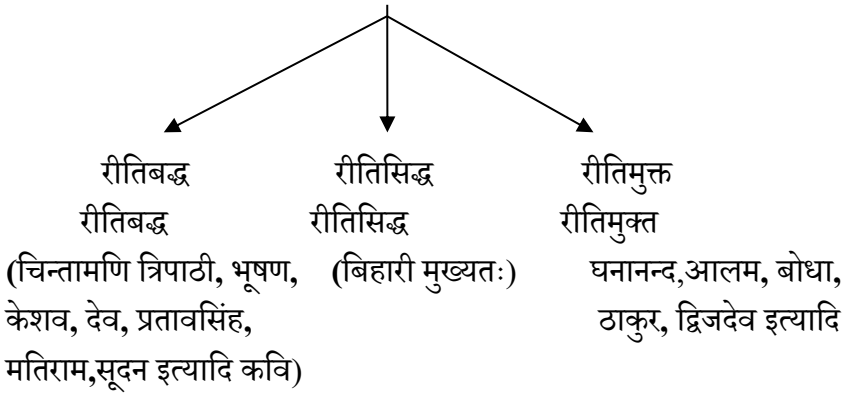

रीतिकाल कविता संबंधी उपरोक्त विभाजन का आधार यह है कि जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों की रचना की है, वे रीतिबद्ध कहलाये। जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों के आधार पर उदाहरणों की रचना की, वे रीतिसिद्ध कहलाये तथा जिन कवियों ने रीतिकालीन लक्षण-उदाहरण से इतर स्वच्छन्द रूप से प्रेमपरक कविताएँ लिखी है वे रीतिमुक्त कहलाये।

7.3.5 प्रवृत्तियाँ

जैसा कि हमने अध्ययन किया कि रीतिकालीन साहित्य राजश्रय प्राप्त साहित्य रहा है। राजश्रय प्राप्त साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि में राजाओं की इच्छा, उनकी रूचि एवं उनके हित साधन की प्रवृत्ति प्रेरक रूप में रहती है।

रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति भी सामंती कारणों से पचिचालित हुई है। संक्षेप में यहाँ हम रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति समझने की कोशिश करेंगे।

- रीति-निरूपण की प्रवृत्ति : रीतिकाल कविता की सबसे बडी़ पहचान यह है कि कविता करने की एक विशेष पद्धति का पालन अधिकांश कवियों ने किया है, उसी को रीति-निरूपण कहा गया है। पहली पंक्ति में लक्षण एवं द्वितीय पंक्ति में उदाहरण लिखना इसी पद्धति के अंतर्गत आते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि वाग्धारा बँधी हुई नालियों में कहने लगी। कविता कहने की बँधी हुई रीति का पालन करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि कवियों द्वारा चुने गए वर्ण्य- विषयों में संकोच हो गया। रूप-विधान के चुनाव से साहित्य कैसे संकुचित होता है, इसका अच्छा उदाहरण है- रीतिकालीन कविता।

श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति - रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की ही अधिकता रही। इसी का लक्ष्य कर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'श्रृंगार काल' कहा था।अन्य रसों वीर रस की दृष्टि से भूषण का काव्य महत्वपूर्ण है, लेकिन वह उस युग की मूल प्रवृत्ति से मेल नहीं खाता है। श्रृंगार प्रवृत्ति के मूल में सामंतो की उपभोगपरक दृष्टि की मुख्य भूमिका रही है। इस काल के कवियों ने भी राजाओं को कामोद्दीप्त करना। अपनी कविता का प्रधान लक्ष्य मान लिया था। श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति के मुख्य वर्ण्य विषय बने-नायिका भेद, नखशिख एवं ऋतु-वर्णन। 'पानिप अमल की झलक झलकन लागी/काई-सी गइ है लरिकाई कढ़ि अंग ते ॥' जैसे वाक्य रीतिकालीन कविता में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है- ''नगर के बाहर के उनके उपवनों में भारतीय और पारसी पुष्पों की बहार थी। कमलो से सुशाभित और भ्रमरों से मुखरित स्वच्छ सरोवरों मै स्नान करती हुई सुन्दरियों के अनावृत्त सौन्दर्य को देखकर कवियों की सरस्वती फूट पड़ती थी''

सहजता बनाम अलंकरण- भक्तिकालीन सहजता की प्रतिक्रिया रीतिकालीन अलंकरण के रूपमें हुई। मिश्रबंन्धु जैसे इतिहासकारों ने इस काल की कविता में अलंकारों के आधिक्य को देखकर ही इसे 'अलंकृत' काल कहा है। केशवदास जैसे बड़े कवि की कविता अलंकारों के आधिक्य से दुरूह हो गई है। भूषण जैसे प्रतिभाशाली कवियों में भी अलंकार का निरर्थक प्रयोग हुआ है। कविता में अलंकार जहाँ सौन्दर्य की वृद्धि करे वहाँ तक तो ठीक है, लेकिन जहाँ वह केवल सजावट के लिए लाये गये हों, वहाँ कविता की आत्मा मर जाये तो आश्चर्य ही क्या? अलंकरण की इस प्रवृत्ति को आचार्य शुक्ल ने- हाथी-दाँत के टुकड़े पर महीन बेलबूटे कहा है। भूषण का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिवराजभूषण' अलंकार ग्रन्थ ही है। केशव की कविप्रिया और मतिराम की 'ललित ललाम ' में अलंकार विवेचन ही है। अलंकार निरूपण की दृष्टि से जसवन्त सिंह का 'भाषा भूषण' रीतिकाल का आधार ग्रन्थ रहा है।

सामंती चित्र और दरबारीपन-

रीतिकालीन-कविता की प्रेरक शक्ति सामंतवाद और दरबारीपन रहै हैं। राहुल सांकृत्यायन, रामविलास शर्मा जैसे आलोचक रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति 'दरबारीपन' मानते हैं। इसमें आश्रयदाता राजा की प्रशस्ति पर बल होता है। भूषण का ग्रन्थ शिवराज भूषण, छत्रसालदशक राजप्रशस्ति और दरबारी मनोवृत्ति का अच्छा उदाहरण है। तुसली जहाँ इस बात के लिए सतर्क थे कि उनकी लेखनी से प्राकृत लोगों का गुनगान न हो जाये ('कीन्हे प्राकृतजन गुन गाना/सिर धुनि गिरा लागि पछताना') वहीं इस काल के कवियों ने गर्व से अपने को दरबारी कवि बताया है। सामंती उपभोग चित्रों पर टिप्पणी करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है- ''सामंती दिनचर्या का वर्णन देव ने अपने अष्टयाम में किया है। ऋतु के अनुकूल मादक द्रव्य एकत्र करने में कोई चूक नहीं होती थी। वसंत और वर्षा अपने-आप उद्दीपन है। ग्रीष्म में बर्फ, शीतल पाटी, अंगूरी आसव, खस की टाटी, और ऊँचीहीं कुच है , तो शिशिर में गिलमैं, गुनीजन, गलीचा, सेज, सुराही , सुबाला आदि ।..... यह सब सामंती शान के आदर्श थे। जीवन-दर्शन के इस सोपान पर कवि अपनी कल्पना के बल पर पहुँच जाता था । इन आदर्शों से गाँव का कोई नाता नहीं था। इसलिए नागर

संस्कृति में बिहारी ने गाँव की हँसी उड़ाने में कोई कसर नहीं की है। सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवन्त चित्रण कहीं नहीं मिलेगा।''

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. रीतिकाल का समय ..... ईसवीं के बीच है।
2. रीतिकालीन साहित्य पर..... ने सबसे पहले वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया।
3. रीतिकाल को श्रृंगार काल ..... ने कहा है।
4. चिन्तामणि त्रिपाठी से रीतिकाल का प्रवर्त्तन ..... ने माना है।
5. कृपाराम से रीतिकाल का प्रवर्त्तन..... ने माना है।

अभ्यास प्रश्न **2**

निम्नलिखित शब्दों पर **8-10** पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

1. रीतिकाल की पृष्ठ भूमि
2. रीतिकालः नामकरण की समस्या
3. रीतिकाल की प्रवृत्ति

7.4 रीतिकालः आलोचनात्क संदर्भ

रीतिकालीन काव्य प्रकृति पर चर्चा करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - '' रीतिकाल में कवि ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण करता है (भक्तिकाल में ईश्वर की नर- लीला का चित्रण है।) यहाँ भक्तिकाल और (रीतिकाल की प्राथमिकता के बीच अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। भक्त तुलसीदास लिखते हैं-

''कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ।''

पर आचार्य भिखारीदास का कहना है-

आगे के सुकबि रीझिहें तों कविताई न तौ,
राधिका - कन्हाई सुमिरन को बहानें है।''

कहने का अर्थ यह है कि दोनों काव्य आन्दोलनों की प्रेरणा भूमि अलग है। आइए अब हम रीतिकालीन कविता को आलोचनात्मक संदर्भी में समझने का प्रयास करें।

7.4.1 दरबारीपन

दरबारीपन स्थिति नहीं प्रवृत्ति है। जब कोई कवि, लेखक आपने आश्रयदाता की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा अपने संकुचित स्वार्थ के लिए करता है, जब कोई कवि/ लेखक सामजिक गतिशीलता से विमुख होकर किसी आधिपत्यकारी ताकतों के हित में लिखता है तो उसे हम दरबारीपन कह सकते हैं। दरबारीपन के लिए जरूरी नहीं कि कवि/ लेखक राज दरबार में बैठकर ही लिखे। हाँलाकि रीतिकालीन कविता राजाश्रय और दरबार में ही लिखी गई है। रीतिकालीन साहित्य की उपयोगिता का मूल्यांकन करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में लिखा गया है ''यह काव्य समाज को प्रगति प्रदान करने में समर्थ नहीं है। रीतिकाव्य और कुछ प्रबन्धकाव्यों में भी हमें व्यापक जीवन-दर्शन वहीं मिलता, इसमें कोई सन्देह नहीं। ..... आश्रयदाता की प्रशंसा में उठी हुई काव्य- स्फूर्ति का सामाजिक तो नहीं परन्तु ऐतिहासिक महत्व अवश्य है। आश्रयदाता की प्रशंसा कला और काव्य के संरक्षण और आश्रय के कारण भी थी और इसके लिए उनकी उदार भावना सराहनीय है। ये राजाश्रय, जिनमें रीतिकालीन कलाकृतियों का विकास

हुआ , कवि- दूर से प्रति-भावों को अपने गुणों और कला-प्रेम के कारण खींच सके। अतः मध्ययुगीन राजाश्रय ने कला, काव्य के संरक्षण और प्रेरणा के लिए महत्तवपूर्ण कार्य किया है, यह हमें मानना पड़ेगा ।''

7.4.2 वर्ण्य-संकोचः नकल या मौलिकता

रीतिकालीन कविता के वर्ण्य-संकोच पर प्रायः आलोचकों में आपत्ति की है। **200** वर्षों तक कविता श्रृंगार नायिका -भेद, अलंकरण एवं रीति-निरूपण के इर्द-गिर्द घूमती रही है। इस वर्ण्य-संकोच के कारण जहाँ यह कविता सामजिक गतिशीलता में अपना काम जोड़ने से रह गई, वहीं दूसरी ओर कविता के कुछ सुन्दर चित्र भी इकट्ठे हुए। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने रीतिकालीन कविता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- ''संस्कृत का काव्यशास्त्र, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और पुस्तक-परंपरा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य और उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित शास्त्रीय संगीत- इन सबका रचनात्मक संपर्क रीतिकाल में हुआ। तब यह स्वाभाविक था कि इन कवियों के लिए मौलिकता का एक ही क्षेत्र सूक्ष्म परिकल्पना का रह जाए। आश्रयदाता की प्रशंसा तथा श्रृंगार -वर्णन के समय बहुत बार यह परिकल्पना अतिरंजना के आवेश में ऊहा का रूप धारण कर लेती है ।.....पर बहुत जगहों पर यह परिकल्पना आत्मीय अनुभूति में डूब कर अनुपम काव्य- लय की सृष्टि करती है जो रीतिकाव्य की श्रेष्ठतम् उपलब्धि है। पंडितों के अलावा ऐसे छंन्द ग्रामीण अंचलों तक के मध्य-वित्त परिवार में लोगों को कंठस्थ रहै हैं, 'हजारा' जैसे संकलन इसके कारण और प्रमाण है । '' आगे रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि - ''इनकी मौलिकता काव्य- पक्ष में है, आचार्यत्व में नहीं। और हिन्दी कविता के इतिहास के लिए यह अच्छा ही है। क्योंकि यदि आचार्यत्व की मौलिकता होती तो फिर इन्हें हिन्दी आलोचना और काव्यशास्त्र के संदर्भ में देखा- परखा जाता । कविता के संदर्भ में नहीं। "रीतिकालीन कविता -सिद्धान्त की मौलिकता पर टिप्पणी करतेहुए रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ''आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग एक ही दोहै में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कविकर्म में प्रवृत्ति हो जाते थे। काव्यागां का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन-मंडन, नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ । "रीतिकालीन आचार्यों ने किसी मौलिक सिद्धान्त की रचना नहीं की लेकिन क्या इनकी कविता का कोई मूल्य नहीं है? इस पर टिप्पणी करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं- ''इन रीतिग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना । अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः श्रृंगाररस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षणों से चुनकर इक्ट्ठा करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।''

7.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान

रीतिकाल पर आचार्य रामचन्द्र ने सर्वप्रथम वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार किया । शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकाल के समानान्तर भक्तिकालीन साहित्य था, इसलिए वे भक्तिकालीन काव्यात्मक (नैतिकता एवं लोकबद्धता) प्रतिमान के धरातल पर रीतिकाल का मूल्यांकन करते हैं, जिसका परिणाम यह रहा कि वे रीतिकालीन साहित्य को सहानुभूति न दे सके। इसका असर यह हुआ कि रीतिकालीन साहित्य के प्रति वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन का अभाव ही रहा। जैसा कि हिन्दी साहित्य कोश भाग एक में लिखा गया है- '' रीतिकालीन काव्य के सम्बन्ध में सामान्यतः दो प्रकार के मत हैं- एक उसे नितान्त है य और पतनोन्मुख काव्य कहकर उसके प्रति घृणा और द्वेष का भाव जगाता है और दूसरा

उस पर अत्यधिक रीझकर केवल उसे ही काव्य मानता है और अन्य रचनाओं, जैसे भक्ति और आधुनिक युग की कृतियों को उत्तम काव्य में परिगणित नहीं करता। वस्तुतः ये दोनों ही दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण है। रीतिकालीन काव्य पर जो दोष लगाये जाते हैं, वे ये हैं- अश्लीलता, समाज को प्रगति प्रदान करने की अक्षमता, आश्रयदाता की प्रशंसा, विलासप्रियता और रूढ़िवादिता। रीतिकालीन समस्त काव्य को दृष्टि में रखकर जब हम इन दोषों पर विचार करते हैं तो हम कह सकते हैं कि ये समस्त दोष उस युग के काव्य या समस्त रीतिकाव्य पर लागू नहीं किये जा सकते हैं। साथ ही, इन दोषों में से अधिकांश प्रत्येक युग के काव्य में किसी-न-किसी अंश में पाये जाते हैं।'' **(पृष्ठ - 564)** पीछे हमने पढ़ा कि रीतिकालीन कविता को दो स्वरूप हैं। एक, सैद्धान्तिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने लक्षण देकर काव्य की सैद्धान्तिक विवेचना की हैं दूसरे, व्यावहारिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने कविताओं की रचना की है। लक्षण-मुक्त कविता ही रीतिकालीन साहित्य का प्राणतत्व है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है, ''रीतिकालीन काव्य की विशिष्टता इस बात में है कि उसकी मूल प्रेरणा ऐहिक है।" **('हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 56)** डा. नगेन्द्र ने भी काव्यात्मक प्रतिमान के आधार पर रीतिकालीन कविता को महत्तवपूर्ण माना है। श्रृंगारिक चित्रों की सरसता जैसी रीतिकालीन साहित्य में देखने को मिलता है, वैसी अन्य किसी साहित्य में नहीं। एक -दो उदाहरण देखें-

कुन्दन को रँगु फीको लगै झलकै अति अंगन चारू गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई॥
को बिनु मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों -ज्यों निहारियों नेरे है नैननि त्यों-त्यों खरी निखरै सी निकाई॥
फाग की भीर अभीरन तें गहि गोविन्दैं लैगई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर' ऊपर नाय अबीर की झोरी॥
छीन पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ, कह्यो मुसक्याइ, लला, फिर आइयो खेलन होरी॥

7.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ

रीतिकालीन कविता की भाषा प्रधानतः ब्रजभाषा ही रही है। ब्रजभाषा श्रृंगार एवं नीति के सर्वथा अनुकूल पड़ती है। समरसता की दृष्टि से तो रीतिकालीन कविता की प्रशंसा अधिकांश आलोचकों ने की है, लेकिन व्याकरणिक दृष्टि से यह कविता हमें बहुत संतुष्ट नहीं कर पाती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा हैः '' रीतिकाल में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी कि जिससे उस च्युतसंस्कृति दोष का निराकरण होता जो ब्रजभाषा काव्य में थोडा़ बहुत सर्वत्र पाया जाता है। और नहीं तो वाक्य दोषों का पूर्ण रूप से निरूपण होता जिससे भाषा में कुछ और सफाई आती।'' **(**हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ **169)** शुक्ल जी ने भाषा अव्यवस्था का कारण ब्रज और अवधी इन दोनों काव्यभाषाओं का कवि इच्छानुसार सम्मिश्रण भी था। इस सम्बन्ध में बच्चन सिंह ने टिप्पणी की हैः ''पर रीतिकाल में हिन्दी का भौगौलिक क्षेत्र पहले से व्यापक हो गया। ..... अतः उनकी बोलियों में स्थानीय बोलियों का भी सन्निवेश हो गया। इससे ब्रजभाषा और भी समृद्ध हुई। '' **(**हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ **186)** यानी शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकालीन भाषा में व्याकरणिक दोष है वहीं बच्चन सिंह ने भाषाई विस्तार को रीतिकालीन कविता का गुण कहा है। इन सबसे अलग रामस्वरूप चतुर्वेदी ने रीतिकालीन भाषा की तुलना भक्ति काल की भाषा से की है। एक ओर भक्ति कवि भाखा (लोकभाषा) में रचना करने पर गर्व करते हैं (भाखाबद्ध करवि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई - तुलसी) तो दूसरी ओर केशवदास भाखा में रचना करने के कारण लज्जित है। रामस्वरूप चतुर्वेदी की इस संदर्भ में टिप्पणी है ''रीतिकालीन काव्य भाषा का सामान्य रूप क्रमशः अधिकाधिक स्थिर और शास्त्रीय होता गया। रीतिकालीन भाषा के क्रमशः जड़ होने के पीछे

एक कारण यह भी था कि जहाँ अन्य युगों में काव्यभाषा के कई आधार कवियों को विकल्प रूप में सुलभ थे- खडी़ बोली - ब्रजभाषा - अवधी-वहाँ रीतिकाल में आकर काव्यभाषा का एक ही आधार प्रतिष्ठित हो गया- ब्रजभाषा। स्वभावतः कबीर और सूर के समय से लेकर भिखारीदास तक ब्रजभाषा के पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया कितनी बार संभव हो सकती थी?'' (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - **57)**

अभ्यास प्रश्न 3

सत्य/असत्य बताइए -

1. रीतिकालीन कविता राजाश्रय में लिखी गई है।
2. रीतिकालीन को अलंकृत काल मिश्रबधुओं ने कहा है।
3. लक्षण ग्रन्थों का सम्यक समावेश हिन्दी कविता में आचार्य केशव ने किया है।
4. कृपाराम की 'हिततरंगिणी' रीतिकाल की पहली रचना मानी जाती है।
5. रीतिकाला की कविता का समय मुगल काल का समय है।

7.6 रीतिकाल: मूल्यांकन

आपने अध्ययन किया कि रीतिकालीन कविता का लक्ष्य सामजिक जागरण करना या समाज को गतिशील करना नहीं था, बल्कि इसका लक्ष्य सामंतों का मनोरंजन करना या राजकुमार/राजकुमारियों को शिक्षा देना था या जीवकोपार्जन करना । इस दृष्टि से नैतिकता की तुला पर कोई चाहै तो इस काव्य को ख़ारिज कर सकता है, जैसा कि रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। लेकिन यह देखने पर यह काव्य उतना है य नहीं है, बल्कि कहीं-कहीं यह हमारी मदद भी करता है। डा. बच्चन सिंह ने रीतिकाल का मूल्यांकन करते हुए लिखा हैः '' मुगल शैली के मिनिएचर चित्रों की भाँति रीतिकालीन काव्यों- विशेषतः श्रृंगारिक काव्यों की बिंब चेतना अनेक मुद्राओं में अभिव्यक्त हुई है। मुद्राओं का इतना वैविध्य भक्तिकालीन काव्य में नहीं मिलेगा। "रीतिकाल का समय मोटे तौर पर भारतीय इतिहास में मुगलकाल का समय है। हम जानते हैं कि मुगलकाल में चित्रकला, वास्तुकला एवं संगीत का प्रचुर विकास हुआ था। रीतिकाल के काव्यों में मूर्तिमता, चित्र , बिंब, ध्वनि इल्यादि पर मुलकालीन ललित कलाओं का पर्याप्त प्रभाव है। सामंती जीवन के चित्र उकेरने की दृष्टि से रीतिकाल जैसे परिचायक मिलना कठिन है। डा. बच्चन सिंह ने लिखा है कि सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवंत चित्रण कहीं नहीं मिलेगा। इस प्रकार का मन्तव्य इतिहासकार हरिशचन्द्र वर्मा ने व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है कि मुगलकाल की सभ्यता - संस्कृति को समझने के लिए रीतिकालीन साहित्य से अच्छा परिचायक दूसरा कोई नहीं है। रीतिकालीन काव्य के मूल्यांकन के प्रश्न पर विचार करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है '' रीतिकालीन काव्य का आकर्षण समाज में क्यों बना रहा? इस प्रश्न से आलोचक और इतिहासकार बार-बार उलझते हैं और घूम फिरकर एक ही सामधान उभरता है इस काव्य की श्रृंगारिकता को गाढ़े रेखांकित करके। .....एक सामान्यतः धर्म-भीरू समाज को काव्यास्वाद की यह बहुत बड़ी सहूलियत मिल गई। रीतिकालीन श्रृंगार-चित्रण की यह अपने में विशिष्टता है। .....आकर्षण का एक दूसरा कारण यह है कि रीतिकालीन काव्य भले राजाश्रय में लिखा गया हो, ये ग्रन्थ आश्रयदाताओं को समर्पित हों या उनका नामकरण इन कृपालु शासकों के नाम पर हुआ है और वे उनकी साहित्य-शिक्षा के लिए रचे गए हों, पर इन मुक्तकों में अंकित जीवन प्रायः शत्-प्रतिशत् सामान्य ग्रहस्थ घरों का है। ये नायक-नायिकाएँ राजा-रानियाँ-राजकुमारियाँ नहीं है, वरन् साधारण गोप- गोपियाँ या खाते-पीते घरों की युवतियाँ हैं, जिन्हें उस युग का मध्य वर्ग कहा जा सकता है। '' (हिन्दी साहित्य संवेदना का विकास, पृष्ठ - **58)**

7.7 सारांश

इस इकाई के माध्यम से अब तक आप रीतिकालीन कविता के स्वरूप एवं प्रवृत्ति से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि-

- हिन्दी साहित्य का 'उत्तर रमध्यकाल' **(1650- 1850** ई. **)** रीतिकाल कहलाता है।
- इस काल की कविता का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। काव्य-रचना की प्रणाली के रूप में रीति को ग्रहण किया गया है। कवि अपनी कविता में पहले काव्य के लक्षण लिखता था और फिर उसको स्पष्ट करने के लिए उदाहरण की रचना करता था। लक्षण-उदाहरण की यह विशिष्ट पद्धति ही 'रीति' है। और इसी कारण इस काव्य धारा को 'रीतिकाल' कहा गया है।
- रीतिकाल के विकास में कई तत्वों का योगदान है। संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और मुक्तक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य, उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित संगीत, तत्कालीन राजनीतिक वातावरण, जिसमें हिन्दु राजा युद्ध से अलग होकर उपभोग की ओर मुड़े, भक्तिकाल के भक्ति-आस्था की श्रृंगार में प्रतिक्रिया इत्यादि तत्वों का प्रभाव एवं प्रेरणा रीतिकालीन कविता पर देखा जा सकता है।
- रीतिकालीन कविता राजदरबार में लिखा गया है। अतः इसका उद्देश्य राजाओं की रूचि से जुड़ा रहा है। श्रृंगारिक चित्र, अलंकरण की वृत्ति ा, दरबारीपन एवं रीति-निरूपण रीतिकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।
- रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन भेद किए गये हैं। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त
- रीतिकालीन साहित्य नैतिकता की दृष्टि से या मानवीय मूल्यों के औदात्य की दृष्टि से हमें भले ही सन्तुष्ट न कर पाये, लेकिन मुगलकालीन सामंती क्रियाकलापों का यह प्रामाणिक दस्तावेज है।

7.8 शब्दावली

रीतिबद्ध	-	काव्य रचना की बँधी हुई परिपाटी पर काव्य रचना करना।
दरबारीपन	-	सामंत/ राजा को प्रसन्न करने के लिए लिखा गया काव्य।
अखण्ड	-	बिना अवरोध के चलने वाली प्रवृत्तियाँ
प्रशस्ति	-	किसी की प्रशंसा बढ़ा-चढ़ा करना।
पुनर्जागरण	-	नवीन चेतना का उदय
रूपान्तरण	-	स्वरूप बदलने की प्रक्रिया।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न **1**

1. **1650- 1850** ई. 2. रामचन्द्र शुक्ल 3. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
4. रामचन्द्र शुक्ल 5. भगीरथ मिश्र

अभ्यास प्रश्न 3

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वर्मा धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम- (सं) ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी।

7.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं. डा. नगेन्द्र, मयूर पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. रीतिकाल की भूमिका - डा. नगेन्द्र

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रीतिकालीन कविता के नामकरण की समस्या पर विस्तार से विचार कीजिए?
2. रीतिकालीन कविता का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 8 - आधुनिक हिंदी कविता: भारतेन्दु युग

इकाई का स्वरुप
8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 आधुनिक हिन्दी कविता : भारतेन्दु युग
8.3.1 जीवन परिचय
8.3.2 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व
8.4 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्यगत विशेषताएँ
8.4.1 परम्परागत विषय की कविताएँ
8.4.1.1 भक्ति संबंधी कविताएँ
8.4.1.2 रीति संबंधी कविताएँ
8.4.2 नवीन विषय वस्तु की कविताएँ
8.4.2.1 राष्ट्रीयता
8.4.2.2 सामाजिक चेतना
8.5 शिल्प पक्ष
8.5.1 भाषा
8.5.2 काव्य शिल्प
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 सहायक/ उपयोगी पाठय सामग्री
8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

आपने पूर्व की इकाई 'हिन्दी साहित्य का आधुनिककालः पद्य का अध्ययन कर लिया है उस इकाई के माध्यम से आपने यह जाना है कि आधुनिक काल की पृठभूमि क्या थी तथा वह कौन सी परिस्थितियाँ थी, जिसके कारण आधुनिकता का विकास हुआ। तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक - सांस्कृतिक परिस्थितियों से किस प्रकार आधुनिक काल का पद्य निर्मित हुआ, आपने पिछली इकाई में यह जाना। इसके अतिरिक्त आधुनिक पद्य का काल विभाजन एवं मुख्य प्रवृत्तियों को भी आपने अध्ययन किया। आधुनिक साहित्य के प्रवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को दिया गया है। क्योंकि समाज की विकसनशील स्थितियों से साहित्य को पहली बार भारतेन्दु ने ही जोड़ा। आर्चाय रामचन्द्र शुक्ल ने इस संबंध में टिप्पणी की हैः " भारतेन्दु हरिचन्द्र का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों का बड़ा (दोनों पर) गहरा पड़ा। उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार हिंदी साहित्य को भी नये मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। उनके भाषा संस्कार की महता को सब लोगों ने मुम्तखंड से स्वीकार किया और वे वर्तमान हिंदी गद्य के प्रवर्तक माने गये। ..... भाषा का निखरा हुआ सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पद्य की ब्रजभाषा का भी बहुत संस्कार किया। पुराने पड़े हुए शब्दों को हटाकर काव्यभाषा में भी वे बहुत कुछ चलतापन और सफाई लाये। इससे भी बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और वे उसे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये। नयी शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदल चुकी थी। उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नयी उमंगें उत्पन्न हो रही थीं। काल की गति के साथ-साथ उनके भाव और विचार तो बहुत आगे बढ़ गये थे, पर साहित्य पीछे ही पड़ा था..... भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जीवन के साथ फिर से लगा दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत करने वाले हरिश्चन्द्र ही हुए।" **('**हिंदी साहित्य का इतिहास **',**पृष्ठ **404)** । तय है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। लेकिन कविता की दृष्टि से भी उनका साहित्य कम मूल्यवान नहीं है। काव्य में भी भारतेन्दु ने कम प्रयोग नहीं किए हैं ।

इसके अतिरिक्त पत्र- पत्रिकाओं के प्रकाशन से भारतेन्दु ने कविता को समसाकयिक विषयों से जोड़ने का ऐतिहासिक कार्य भी किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों दृष्टियों से समूह हैं। कवि के रूप में उन्होंने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों भाषाओं में कविताएँ लिखी हैं। जिनमें स्वरूपगत भेद है। भारतेन्दु हरिश्चन्दु के काव्य में व्यक्त राष्ट्रीयता, समाज सुधार, राजभक्ति, भक्ति ,नीति, श्रंगार आदि विविध विषयों से संबन्धित कविताओं को अध्ययन कर हम उनके रचना -कर्म को जानेंगे तथा यह समझने को प्रयत्न करेंगे कि हिन्दी साहित्य-संस्कृति में भारतेंदु का क्या महत्व है। आइए हम भारतेन्दु कृतित्व के आस्वादन-अवलोकन से पूर्व उनकी जीवनी संक्षेप में जानें।

8.2 उद्देश्य

आधुनिक पद्य की शुरूआत भारतेंदु हरिश्चन्द्र के माध्यम से होती है। अब आप आधुनिक हिंदी कविता के संदर्भ में भारतेंदु हरिश्चन्द्र का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई के पढ़ने के बाद आप:

- भारतीय नवजागरण की पीठिका को समझ सकेंगे।
- भारतीय नवजागरण के स्वरूप से परिचित हों सकेंगे।
- भारतीय नवजागरण के साथ भारतेंदु हरिश्चन्द्र के अर्न्तसम्बन्ध को जान सकेंगे।

- भारतेंदु हरिश्चन्द्र के साहित्य की मूल अंतः संबंधों को जान पायेंगे।
- भारतेंदु हरिश्चन्द्र के साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- भारतेंदु हरिश्चन्द्र के सामाजिक साहित्यिक प्रदेय से परिचित हो सकेंगे।
- भारतेंदु हरिश्चन्द्र के माध्यम से आधुनिक हिन्दी कविता की पारिभषिक शब्दावली से परिचित हो सकेंगे।

8.3 आधुनिक हिन्दी कविता : भारतेन्दु युग

8.3.1 जीवन - परिचय

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता भारतेंदु हरिश्चन्द्र का जन्म **9** सितम्बर सन् **1850** ई0 में हुआ था। आप **18 - 19** वीं शताब्दी के जगत् - सेठों के एक प्रसिद्ध परिवार से सम्बन्ध रखते हैं। आपके पूर्वज सेठ अमीचन्द का उत्कर्ष भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के समय में हुआ था। सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष होने पर अमीचन्द ने अंग्रजों की सहायता की थी, यह अलग बात है कि उसके बाद भी अंग्रेजों ने उनके साथ प्रतिकूल आचरण किया । उसी परिवार में सेठ अमीचन्द के प्रपौत्र गोपानचन्द (उपनाम गिरिधरदास, **1844** जन्म) का जन्म हुआ । गिरिधरदास जी अपने समय के प्रसिद्ध कवि तथा कवियों - लेखकों के आश्रयदाता थे। गिरिधरदास जी का लिखा नहुष काव्य नाटक ब्रज भाषा में लिखा, हिन्दी के प्रारंभिक नाटकों में से एक है। इन्ही गिरिधरदास जी के ज्येष्ठ पुत्रके रूप में भारतेंदु हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ था। इस प्रकार हम देखते है कि भारतेंदु को दो चीजें विरासत में मिलीं । एक उनके घर का साहित्यिक संस्कार दूसरे, धन की उपलब्धता। धन की उपलब्धता ने ही ' भारतेंदु - मण्डल ' के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र जी का पारिवारिक जीवन दुखमय रहा। पाँच वर्ष की अल्पायु में ही उनकी माता पार्वती देवी तथा दस वर्ष की अवस्था में उनके पिता का देहान्त हो गया। विमाता के तिक्त व्यवहार से भी उन्हें बहुत कष्ट हुआ। पिता की अकाल मृत्यु के कारण भारतेन्दु जी की शिक्षा व्यवस्थित रूप से संपन्न नहीं हो पाई। पिता की मुत्यु के पश्चात् उन्होने काशी के क्वीन्स कॉलेज में अध्ययन किया, लेकिन अध्ययनको क्रमिकता प्रदान नहीं कर सके। कॉलेज छोड़ने के पश्चात् भारतेंदु जी ने स्वाध्याय से हिन्दी, संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, मारवाड़ी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। उस समय काशी के राजा शिवप्रसाद सिंह 'सितारे हिंद' प्रतिष्ठित विद्वान थे भारतेंदु जी ने सितारे हिंद से भी शिक्षा ग्रहण की। तेरह वर्ष की अल्पायु में ही उनका विवाह काशी के लाला गुलाबराय की पुत्री मन्ना देवी से हुआ। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में भारतेंदु जी सपरिवार जगन्नाथ यात्रा पर गये। इस यात्रा का भारतेंदु जी के व्यक्तित्व पर दूरगामी प्रभाव पड़ा । जगन्नाथ यात्रा के पश्चात् भारतेंदु जी कानपुर, लखनऊ, मसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृमसर, दिल्ली, अजमेर, प्रयाग, पटना, कलकत्ता, बस्ती, गोरखपुर, बलिया, वेद्यनाथ, उदयपुर आदि अनेक स्थानों की यात्रा पर गये। इन यात्राओं से भारतेंदु का साहित्यिक ओर सांस्कृतिक व्यक्तित्व निर्मित हुआ। विशेषतौर से भारतेंदु की बंगाल यात्रा ने उनको नवीन विषयों - विधाओं की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् **1880** में पं0 सुधाकर द्विवेदी पं. रधुनाथ तथा पं0 रामेश्वरदत्त व्यास के प्रयासों से उन्हे ' भारतेंदु ' की उपाधि प्रदान की गई। **6** जनवरी **1885** ई. को अल्पायु में ही भारतेंदु जी का देहावसान हो गया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र जी बहुमुखी प्रंतिभा के धनी थे। नाटक निबंध, कविता के क्षेत्र में आपका अमूल्य योगदान तो है ही, इसके अतिरिक्त आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, इतिहास, कहानी जैसी साहित्यिक विधाओं के प्रवर्तक भी बने।

भारतेन्दु जी का पूरा जीवन दूसरों की सहायता करने में तथा साहित्य की सेवा में व्यतीत हुआ। साहित्य की तरह ही आपका पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी महत्वपूर्ण योगदान है। भारतेन्दु ने चार पत्रिकाओं प्रकाशन संपादन किया था। साहित्य - पत्रकारिता के अतिरिक्त सामाजिक - सांस्कृतिक सुधार के कार्यो में भी आप अग्रणी थे। चाहे वह धर्म के प्रचारार्थ स्थापित 'तदीय समाज' हो या महिला शिक्षार्थ प्रकाशित 'बालाबोधिनी' पत्रिका । इस प्रकार भारतेंदु हरिश्चंद्र का जीवन-विवके ऐतिहासिक आवश्यकता की माँग के कारण निर्मित हुआ था। प्राचीन और नवीन काव्यधाराओं का मणिकांचन योग भारतेंदु के व्यक्तित्व में उपस्थित हुआ है। भारतेंदु अपनी भक्ति - नीति, देश - प्रेम एवं भाषा - साहित्य प्रेम के कारण प्रसिद्ध रहे है। भारतेंदु में राजभक्ति एवं राष्ट्रभक्ति का द्वन्द्व भी देखने को मिलता है। यहाँ हमने भारतेंदु हरिश्चंद्र जी के कृतित्व को समझने के लिए उनके जीवन का संक्षिप्त अध्ययन किया । अब हम भारतेंदु हरिश्चंद्र के कृतित्व की संक्षिप्त रूपरेखा देखेंगे।

8.3.2 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व

भारतेंदु हरिश्चंद्र जी की अल्पायु को देखते हुए उनका विपुल साहित्य आश्चर्यचकित करता है। न केवल परिमाण की दृष्टि से वरन गुणवता की दृष्टि से भी भारतेनदु जी का कृतित्व 2 लाघनीय है। भारतेन्दु जी के कृतित्व संबंधी विशेषताओं का विश्लेषण हम आगे के बिन्दुओं में करेंगे, यहॉ हम उनके साहित्य की एक झलक मात्र का एक अवलोकन करेंगे।

गद्य साहित्यः भारतेन्दु हरिश्चन्द् का गद्य साहित्य हिन्दी साहित्य की एक निधि है। चाहे वह नाटक हो, निबंद्य हो या पत्रकारिता। सर्वत्र उनके मौलिक विचारों का दर्शन हमें होता है। गद्य साहित्य में सर्वप्रथम भारतेंदु जी ने नाटकों की रचना की। उनकी नाट्य कृतियो को तीन भागों में विभक्त किया गया है - अनुदित, मौलिक और अपूर्ण। विषय की दृष्टि से इन्हें ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं पौराणिक में विभक्त किया गया है -

भारतेंदु हरिश्चंद्र जी की अनुदित रचनाओं में है।

- 'विद्यासुन्दर'(**1868** ई, संस्कृत रचना 'चौरपंचाशिका' के बंगला संस्करण का अनुवाद)
- 'पाखण्डविडम्बन' (**1872** ई, कृष्ण मिश्रकृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तृतीय अंक का अनुवाद)
- 'धनंजय - विजय (**1874** ई, कंचन कविकृत व्यायोग' का अनुवाद)
- 'कर्पूर - मंजरी' (**1875** ई, राजशेखर कविकृत प्राकृत सट्टक का अनुवाद)
- 'भारत जननी' (**1877** ई, नाट्य गीत)
- 'मुद्राराक्षस'(**1878** ई, विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद)
- 'दुर्लभ बंधु' (**1880** ई, में प्रथम दृश्य 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'मोहन चन्द्रिका मे प्रकाशित हुआ। यह कृति शेक्सपियर के 'मर्चेण्ट आफॅ वेनिश' का अनुवाद है, रमाशंकर व्यास तथा राधाकृष्णदास ने इस कृति को पूर्ण किया।)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मौलिक नाट्य रचनाएँ -

- 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (**1874** ई.,प्रहसन)
- 'सत्य हरिश्चन्द्र' (**1875** ई,)

- 'श्री चन्द्रावली' **(1876** ई,नाटिका)
- 'विषमौषधम्' **(1876** ई, भ्राण)
- 'भारत-दुर्दशा (**1880** ई, नाट्य रासक)
- 'नीलदेवी' **(1881** ई, प्रहसन)
- 'प्रेमजोगिनी' (अपूर्ण, **1875** ई. नाटिका, प्रथम अंक के केवल चार दृश्य का लेखन)
- 'सती प्रताप' **(1875** ई, **(1875** ई, गीतिरूपक, केवल चार अंक)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने कई आधुनिक गद्य विधाओं के भी प्रवत्तक रहे है। भारतेन्दु ने उपन्यास, नाटक, इतिहास, जीवनी, आत्मकथा जैसी विधाओं की शुरूआत भी की थी। भारतेन्दु का उपन्यास 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' मराठी उपन्यास के आधार पर लिखा गया है। भारतेन्दु की अन्य गद्य रचनाएँ हैं -

- भाषा संबंधी - 'हिन्दी भाषा'
- नाट्यशास्त्र - 'नाटक'
- इतिहास और पुरातत्त्व - कश्मीर कुसुम
- महाराष्ट् देश का इतिहास
- रामायण का समय
- अग्रवालों की उत्पत्ति
- खत्रियों की उत्पत्ति
- बादशाह दर्पण
- बूंदी का राजवंश
- उदय पुरोदय
- पुरावृत्त संग्रह
- चरितावली
- पंच पवित्रात्मा
- दिल्ली दरबार दर्पण
- कालचक्र
- पत्र - पत्रिकाएँ: कविवचन सुधा
- हरिश्चन्द्र मैगजीन
- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका
- बालाबोधिनी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य साहित्य विपुल है, यहॉ उसकी केवल संक्षेप में सूची प्रस्तुत की गई है, क्योंकि यहाँ हमारे अध्ययन का विषय भारतेन्दु की काव्य रचनाएँ हैं। आइए अब हम भारतेन्दु जी का काव्य रचनाओ का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें -

परम्परानुरूप् साम्प्रदायिक पुष्टिमार्गोय रचनाएँ :-

- भक्ति सर्वस्व **(1870** ई.)
- कार्तिक स्नान (**1872** ई.)
- वेशाख माहात्मय **(1872** ई.)
- देवी छद्म लीला **(1874** ई.)
- प्रातः स्मरण मंगल पाठ **(1874** ई.)
- तन्मय लीला **(1874** ई.)
- दान लीला **(1874** ई.)
- रानीछद्मलीला **(1874** ई.)
- प्रबोधिनी **(1874** ई.)
- स्वरूप **(1874** ई.)
- श्रीपंचमी **(1875** ई.)
- श्रीनाथ स्तुति **(1877** ई.)
- अपवर्गदाष्टक **(1877** ई.)
- अपवर्ग पंचक **(1877** ई.)
- प्रातः स्मरण स्तोत्र **(1877** ई.)
- वैष्णव सर्वस्व
- वल्लीभ सर्वस्व
- तदीप सर्वस्व
- भक्ति सूत्र वैजयन्ती आदि।

भक्ति तथा दिव्य-प्रेमसंबंधी रचनाओं में

- प्रेम मालिका **(1871** ई.)
- प्रेम सरोवर **(1874** ई.)
- प्रेमाश्रु-वर्णन **(1874** ई.)
- प्रेम माधुरी **(1875** ई.,यह भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र के कवित्त सवैयों का एकमात्र संग्रह है। यह ग्रन्थ भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र का रीतिवादी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में भारतेन्दृ ने धनानंद, ठाकुर, बोधा, रसखान द्वारा वर्णित प्रेम विरह के समान ही विरह की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।)

- प्रेम-तरंग **(1877.** ई यह ग्रन्थ भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि यह पदों की नही बल्कि गानों का संग्रह है। इस ग्रन्थ में, जनता में प्रचलित लोक गीतों को साहित्यिक रूप दिया गया है। इस ग्रन्थ में ब्रजभाषा, खड़ी बोली, उर्दू, बंगला, पंजाबी, आदि कई भाषाओं की रचनाओं का समावेश है।)
- प्रेम प्रलाप **(1877** ई.)
- होली **(1879** ई.)
- मधु मुकुल **(1880** ई.)
- वर्षा विनोद **(1880** ई.)
- विनय प्रेम-पचासा **(1880** ई.)
- फूलों का गुच्छा **(1882** ई.)
- प्रेम फुलवारी**(1884** ई., 'प्रेम फुलवारी' **94** पदों का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में दैन्य भाव के विरह संबंधी, प्रीति संबंधी एवं राधा-स्तुति तथा कृष्ण-स्तुति के पद हैं यह पदों की विशुद्ध शैली में रचित भारतेन्दु जी के प्रोढ़ ग्रन्थौ में है। 'चन्द्रावली नाटिका मे। इस ग्रन्थ्र के अनेक पद रखे गये हैं।)
- कृष्णचरित्र **(1884** ई.)
- जैन कुतूहल **(1874**ई.)

परम्परागत रचनाएँ :-

- उत्तर भक्तमाल **(1876-1877** ई.)
- गीत गोविन्दानन्द **(1877-1878** ई.)
- सतसई श्रृंगार **(1875-1878** ई.)

नवीन प्रकार की रचनाएँ :-

- स्वर्गवासी श्री अलवरत वर्णन अन्तर्लायिका **(1861** ई.)
- श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र **(1869** ई.)
- सुमनांजलि **(1871** ई, प्रिस आफॅ वेल्स के पीड़ित होने पर)
- मुह दिखावनी' **(1874** ई.)
- श्रीराम कुमार शुभागमन वर्णन' **(1875** ई.)
- भारत भिक्षा' **(1875** ई.)
- मानसोपायन' **(1875** ई.)
- मनोमुकलमाला' **(1877** ई.)
- भारत वीख्य'**(1878** ई.)
- विजय वल्लरी' **(1881** ई.)

- विजयिनी-विजय पताका या वैजयन्ती' **(1882** ई.)
- नये जमाने की मुकरी' **(1884** ई.)
- जातीय संगीत' **(1884** ई.)
- रिपनाष्टक' **(1884** ई.)

ऊपर हमने भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित ग्रन्थ की सूची देखी । इसके अतिरिक्त भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र के भक्ति, प्रेम, श्रृंगार और नवीन विषयों पर स्फुद दोहे, कवित, सवैया, पद, गजल, भी मिलते हैं। व्यंग्य और हास्य की दृष्टि से उर्दू भाषा में लिखित 'स्यापा' **(1874** ई.) तथा 'बंदर सभा'**(1879** ई.) उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र कृत रचनाओं की संक्षिप्त रूपरेखा मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की दृष्टि जीवन क्षेत्रों को स्पर्श कर सकी है। भारतेन्दु के काव्य साहित्य की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि एक ओर उन्होंने जहाँ परम्परागत विषयों पर अपनी लेखनी चलाई वहीं दूसरी ओर तत्कालीन समस्याओं का समावेश करते हुए नवीन काव्य प्रयोग भी किये। आगे की बिंदुओ में हम भारतेन्दु हरिशचन्द्र के काव्य की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 1

क) निम्नलिखित कथनों में कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। कथन के सामने उचित चिन्ह लगाएँ।

१. भारतेन्दु हरिशचन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्तक हैं। ( )

२. भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने जीवन और साहित्य के विच्छेद को दूर किया, यह कथन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का है। ( )

३. भारतेन्दु हरिशचन्द्र का जन्म ९ सितम्बर १९५**0** ई. को हुआ था ( )

४. भारतेन्दु उपाधि हरिश्चंद्र को १८८**0** ई. में दी गई। ( )

५. भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने चार पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। ( )

(ख) सही विकल्प चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:

१. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी का ..... की अल्पायु में स्वर्गवास हो गया।

(३४**,** ३७**,** ४**0,** ४५)

२. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी का प्रथम नाटक ..... था।

(भारत दुर्दशा**,** अंधेर नगरी**,** विद्यासुंदर**,** दुर्लभ बंधु)

३. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी के पिता ..... भाषा के अच्छे कवि थे।

(मराठी**,** बंगला**,** ब्रजभाषा**,** अवधी)

४. ..... नाटक शेक्यपियर के नाटक का अनुवाद है।

(अंधेर नगरी, प्रेम योगिनी, दुर्लभ बंधु, भारत दर्दशा)

8.4 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्यगत विशेषताएँ

किसी भी युग-समाज में या कहें कि इतिहास में बदलाव की प्रक्रिया अनायास नहीं होती। उसके ठोस भौतिक कारण होते है। सामाजिक-राजनीतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियांे में हुए परिवर्तन से साहित्य भी प्रभावित होता है, क्योंकि साहित्य अंततः सांस्कृतिक क्रिया ही है। जैसा कि कहा गया इतिहस में बदलाव न तो अचानक प्रकट हाता है, न ही उसकी प्रक्रिया यकायक होती है। बदलाव या परिवर्तन लम्बे राजनीतिक – सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम होता है। **1850.**ई. के लगभग समय भी इतिहास में कुछ ऐसा ही 'पार्ट' अदा करता है। एक ओर रीतिकाल की समाप्ति की समय दूसरी ओर आधुनिक नवजागरण की उत्पत्ति का समय। नये युग का साहित्य नये रूप् की मागँ भी करता है।इसलिए यह सोचना गलत होगा कि विषय वस्तु और रचना-शैली में कोई अंतर नहीं है। या रचना शैली व्यक्तिगत होती है। यह सही है कि हर लेखक अपनी भाषा एवं शैली में विशिष्ट होता, किन्तु उसेक व्यक्तिगत शैली पर भी युगीन रचना एंव लेखक के परिवेश का गहरा असर होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य का साहित्यिक महत्व इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो उठता है कि हिन्दी साहित्य में पहली बार विषय वस्तु के बदलाव के साथ काव्यरूप का चुनाव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। हालांकि उन प्रयोगों का काव्य में वे उतना व्यवस्थित नहीं कर पाये, लेकिन उनका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद रूप से उच्चे स्थान का अधिकारी है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जब रचनाक्षेत्र में आये, तब ब्रजभाषा के संबंध में यह दृढ़ मान्यता थी कि वह भक्ति - नीति -श्रृंगार की भाषा है। ब्रजभाषा में जो मधुरता, सरलता एवं प्रवाह है वह किसी दूसरी भाषा में नही है, ऐसे समय मे खड़ी बोली में कविता करना आसान काम नहीं था। भारतेन्दु हरिचन्द्र जी के लिय यह आसान रहा भी नहीं। स्वंय भारतेन्दु ने मात्र सत्तर कविताएँ खड़ी बोली में लिखीं । लेकिन खड़ी बोली में भी कविता हो सकती है, यह ऐतिहासिक कार्य उन्होंने प्रारम्भ किया। जैसा कि कहा गया भारतेन्दु के साहित्य में पर्दापण के समय रीतिवादी कविता का प्रचलन था। स्वय। भारतेन्दु जी के पिता गिरिधरदास जी पुराने ढंग के अच्छे कवि थे। भारतेन्दु जी के परिवार का संस्कार वैष्वव भक्ति का था। अतः भक्ति -नीति का संस्कार उनके ऊपर परम्परा से ही पड़ गया था। इसके अतिरिक्त आधुनिक विचारधारा के दबाव के कारण उन्होंने कविता में राष्ट्रीयता समाज-सुधार जैसे विषयों को शामिल भी किया। काव्य-प्रयोग की दृष्टि से भी भारतेन्दु ने कई प्रयोग किए। चाहे लोक गीतों को साहित्य में ढालने का कार्य हो या छन्द संबंधी प्रयोग सर्वत्र भारतेन्दु जी की काव्य सजगता देखी जा सकती है। भारतेन्दु के काव्य संबंधी संक्षिप्त प्रस्तावना के बाद आइए हम भारतेन्दु काव्य की प्रमुख प्रवृतियों को जानें। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की कविता के मुख्य दो स्वरूप् स्वीकार किये गए हैं। एक मे उनके प्राचीन ढंग की कविताएँ हैं। दूसरी नई प्रवृतियों से संचालित कविताएँ हैं।

8.4.1 परम्परागत विषय की कविताएँ

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया कि भारतेन्दु प्राचीन एवं नवीन के संधिस्थल पर खड़े थे। अतः उन्में परम्परा और नवीनता दोनों के तत्व मिलते हैं। परम्परागत प्रवृतियों में भी उनकी कविता में वैविध्य देखने को मिलता है। एक ओर वे वैष्णव भक्ति की कविताएँ लिखते हैं, दूसरी ओर रीतिकालीन मनोवृति की यहॉ हम भारतेन्दु हरिश्चन्दु के परम्परागत कविताओं को स्वरूप् देखेंगे तथा उसकी विशेषताओं से परिचित होंगे।

4.4.1.1 भक्ति संबंधी कविताएँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का परिवार वैष्णव भक्ति से संबंधित था। स्वंय भारतेन्दु जी बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे। भारतेन्दु जी की पुरी यात्रा के संदर्भ को हमने पढ़ा, उस यात्रा का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। वैसे भी, जैसा कि टी.एस.इलियट ने लिखा है कि श्रेष्ठ साहित्यकार की मज्ना में उसकी परम्परा अनुस्यूत रहती है। भारतेन्दु में पूर्ण मध्यकालीन परम्परा को हम देख सकते है। वल्लभ संप्रदायके अतिरिक्त भारतेंन्दु ने राम काव्य, जैन काव्य पर भी कविताएँ लिखी हैं। भक्ति के पदों में भी एकरसता नहीं मिलती, उसमें भी भावों एवं अनुभूति-अभिव्यक्ति की विविधता देखने को मिलती है। भारतेन्दु के ऊपर सूर, तुलसी, मीरा, कबीर का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। भारतेन्दु का विनय पद देखिय, जिस सूर तुलसी का प्रभाव परिलक्षित हो रहा है -

''हरि लीला सब विधि सुखदाई।''

× × ×

नहि ईश्वरता अँटकी वेद में

तुम तो अगम अनादि अगोचर सो कैसे मतभेद में।।''

× × ×

'हमन है मस्त मस्ताना हमन को होशियारी क्या? '

× × ×

''खोजत वसन ब्रज की बाल

निकसिकै सब लेहु, छिपिकै कह्यो स्याम तमाल

सुनत चेचलहित चुहँ दिसि चकित निरख्तनारि

मधुर बैननि हिओ फरकत जानिकै बनवारि

कदम पर ते दरस दीनो, गिरिधरन धनश्याम ''

उपर्युक्त उद्धरण देखने से सहज ही संकेत मिलता है कि भारतेन्दु जी के भक्ति पद कही देन्य-विनय के हैं, कहीं प्रेमाभक्ति के।

8.4.1.2 रीति संबंधी कविताएँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को रीतिकाल की श्रृंगारिकता परम्परा से या कहें कि विरासत में मिली थी। भारतेन्दु जी के पिता का दरबार लगा करता था। स्वंय भारतेन्दु जी के यहाँ साहित्यकारों का जमघट लगा करता था। 'भारतेन्दु-मण्डल' का इस दरबार से घनिष्ठ संबंध था। हम कह सकते हैं कि 'भारतेन्दु-मण्डल' के निर्माण में इस दरबारी मनोवृत्ति का बहुत बड़ा हाथ था। 'भारतेन्दु के समय कविता का एक स्वरूप् समस्यापूर्ति भी था। समस्यापूर्ति का संबंध ज्यादातर श्रृंगार से ही है। भारतेन्दु जी की श्रृंगारिक कविताएँ मतियम, घनानन्द, देव, पद्माकर, की परम्परा में है। भारतेन्दु जी की श्रृंगारिक कविताओं के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

'ब्रज के लता पता मोहि कीजे

गोपी - पद -पकंज पावन की रज जामेसिर भीजे।।'

× × ×

'सिसुताई अजों न गई तन तें, तऊ जोबन जोति बटोरे लगी।

सुचि के चरचा हरिचन्द की, कान कछूक दे, भौहं मरोरे लगी।

बचि सासु जेठानिनि सौ, पियते दुरि घुंघट में दृग जोरे लगी।

दुलही उलही सग अंगन तें , दिन द्धै तै पियूस निचारे लगी।

× × ×

कूकें लगी कोइलें कदम्बन पै बैठि फेरि

कि धोए धोए पात हिलि हिलि सरसै लगै।

बोले लगे दादुर मयूर लगे नाचे फेरि

देखि के सँयोगी जन हिय हरसै लगे।

हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी

लखि हरिचन्द फेर प्रान तरसे लगे।

फेरि झूमि झूमि बारसा की रितु आई फेरि

बदर निगोरे झूकि झूकि बरसै लगै।।

यह संग में लागिये डोले सदा बिन देखे न धीरेज आनती हैं।

छिन हू जो वियोग परै न झपै उझपैं पल में न समाइबो जानती है।

पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखिया डुखियॉ नही मानती है।

× × ×

लाज समान निवारि सबै प्रन प्रेम को प्यारे पसारन दीजिये।

जानन दीजिये लोगन को कुलटा कहि मोहि पुकारन दीजिये।।

प्यों हरिचन्द सबै भय टारि के लालन घूँघट टारन दीजिये।

छांड़ि संकोचन चन्द मुखै भरिलोचन आज निहारन दीजिये।।

8.4.2 नवीन विषयवस्तु की कविताएँ

हमने पूर्व में अध्ययन किया कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र युग प्रवर्तक साहित्यकार थे। साहित्य -समाज के अंतर्सम्बन्ध को स्थापित करने की दृष्टि से आपका महत्व ऐतिहासिक एवं युगान्तकारी है। इस दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य विशेष महत्वपूर्ण है। खड़ी बोली पद्य भारतेन्दु ने बहुत कम लिखा है, कारण यह कि भारतेन्दु जी का क्व्यं - विषय (भक्ति-नीति-श्रृंगार) ब्रजभाषा के निकट ज्यादा रहे है। बावजूद इसके भारतेन्दु के काव्य में आधुनिकता के दर्शन य़त्र-तत्र हो ही जाते है। देशभक्ति भारतेन्दु साहित्य का मुख्य विषय रहा है। इसके अतिरिक्त सामाजिक सुधार आपकी रचनाओं की मुख्य विषय वस्तु है। भारतेन्दु के व्यंग्य, उनकी भाषा-शैली सब कुछ अपने ढंग की अलग विशेषता रखते हैं। आइए अब हम भारतेन्दु साहित्य की प्रमुख विशेषता से परिचय प्राप्त करें।

8.4.2.1 राष्ट्रीयता

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की राष्ट्रीयता को लेकर कई तरह के भ्रम फैलाये गये हैं (देखें रस्साकस्सी-वीरभारत तलवार की पुस्तक)। कुछ लोगों की नजर में भारतेन्दु राजभक्त हैं तो कुछ की दृष्टि में सच्चे राष्ट्रभक्त। इस संबंध में हमें पूर्वाग्रह मुक्त होकर भारतेन्दु साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता सरकारी कर्मचारी थे। इसलिए सवभावतः भारतेन्दु जी राजभक्ति की ओर झुके, लेकिन क्रमशः उन्हे विक्टोरिया साम्राज्य की वास्तविकता का भान होने लगां। राष्ट्रीयता के चित्रण में भारतेन्दु जी कई बार पौराणिक इतिवृतों से प्रेरणा लेते हैं और कई बार तत्कालीन समस्याओं से । भारतेन्दु ने अतीत को प्रेरणा के रूप में ग्रहण किया है। प्रबांधिानी' में लिखित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ये छन्द देखिए -

सीखत कोउ न कला, उदर भरि जीवन केवल।

पसु समाज सब अन्न खात पीउत गंगा जल।।

धन विदेस चलि जात तऊ पिय होत न चंचल।

जड़ समान हवे रहत अकिल हत रच न सकल कल।

जीवन विदेस की वस्तु लै ता बिनु कक्षु नहिं कर सकत।

जागो - जागो अब साँवरे सब कोउ रूख तुमरो तकत।।

× × ×

कहां गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर

चन्द्रगुप्त चाणक्य कहां नासे करिके थिर

कहँ क्षत्ती सब मरे जरे सब गए किते गिर

कहां राज को ताने साज, जेहि जानत है चिर

कहं दुर्ग सन - धन, बल गयों, धुरहि धूर दिखात जग

जागो अब तो खले बल दलन रक्षहु अपुनी आर्य मग।''

अतीत को स्मरण करना पुनजगिरणवादी चेतना है। भारतेन्दु हरिश्चन्द ने इसीलिए विभिन्न कविताओं के माध्यम से अपने गोरवशाली अतीत को स्मरण किया है। अतीत के गोरवशाली परम्परा को भारतेन्दु जी ने कई बार-बार स्मरण किया है, किन्तु कई बार वे सीधे - सीधे भारत - दुर्दशा को स्मरण करते है, यहाँ अकी लेखकी ज्यादा समसामयिक है -

जो भारत जंग में रहयो सबसों उत्तम देश

तहि भारत में रहयो अब नहिं सुख को लेस।

× × ×

रोअहु सब मिलके आवहु भारत भाई

हा। हा। भारत दुर्दशा ने देखी जाई

× × ×

कठिन सिपाही द्रोह अनज जा जन बल नासी।

जिन भय सिर न हिलाइ सकट कहुँ भारतवासी।।

× × ×

हाय सुनत नहि, निठुर भय क्यों परम दयाल कहाई

उठहु वीर तलवार खीचं माऊ धन संगार।

× × ×

वीरो की प्रशंसा - कहा तुम्है नहि खबर जय की छूट ग्वाई।

जीति मिसर में शत्रु - सेन सब दई भगाइ।

तड़ित तार के द्वार मिल्यो सुभ समाचार यह।

भारत सेना कियो घोर संग्राम मिश्र मह।

× × ×

‘‘अरे बीर इक बेर उठहु सब फिर कित सोए।

लेहु करन करवालि काढ़ि रन - रंग समोए।

चलुह बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ायो।

लेहु म्यान सों खंडा खींचि रन रंग जमाओ।

अपने सिंहनाद से शत्रुओं के हृदय को दहला दो।

मारू बाजे बजे कहो धौसां घहराहीं

उडहि पताका सत्रु - हृदय लसि लखि थहराहीं। ''

8.4.2.2 सामाजिक चेतना

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी नवजागरणवादी चेतना के रचनाकार थे। नवजागरण एक प्रकार से सांस्कुतिक जागरण लेकर आया। समाज और संस्कुति का गहरा सम्बन्ध है। सामाजिक चेतना राष्ट्रीयता की ही अभिव्यक्ति होती है। जिस व्यक्ति में राष्ट्रीय भाव बोध जितना गहरा होगा, उसकी ही तीव्र होंगे। उसकी कविता में सामाजिक परिस्थितियों के चित्र उतने ही तीव्र होगे। जैसा कि पूर्व मे कहा गया है हक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में राजभक्ति - राष्ट्रभक्ति दोनों के तत्व है, इसलिए उनकी सामाजिक चेतना पूरी तरह क्रान्तिकारी नहीं है, बल्कि सुधारात्मक है। भारतेन्दु की सामाजिकता में सामाजिक – सांस्कृतिक - आर्थिक - राजनीतिक सुधार की आकांक्षा व्यक्त की गई है। कुछ उदाहरण इष्ट्रवय है -

(आर्थिक) ''अंग्रेज राज सुस साज सजे सब भारी ।

पे धन विदेश चलिजात इहै अति खारी।। ''

× × ×

मारकीन मलमल बिना चलत कहू नहि काम

परदेशी जुलाहन के मानहुँ भए गुलाम

(विदेशीवस्तुं) वस्त्र काँच कागज कलम चित्र खिलौन आदि

आवत सब परदेश सो नितहि जहाजन लादि

× × ×

(सामाजिक यहि असार संसार में चार वस्तु है सार

व्यवहार) जुआ मदिरा मांस अरू नारी संग विहार

× × ×

(कूपमंडूकता) रोकि विलायत गमन इप मंडूक बनायो

ओरन को ससंर्ग घुड़ाई प्रचार घटायो।

अभ्यास प्रश्न 2)

(क) रिक्त स्थानो में उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए:

1) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के पिता का नाम ..... था।

2) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य मे पर्दापण के समय ..... प्रवृत्तिया प्रचलित थीं।

3) भारतेन्दु जी के परिवार का संस्कार ..... भक्ति का था।

4) 'हमन है ..... क्या **?**

5) 'ब्रज के लता ..... मोहिं कीजै**,**

(ख) टिप्पणी लिखिए: नीचे दिये गये शब्दो पर **5** पंक्तियों मे टिप्पणी लिखिए।

1) भारतेन्दु - मण्डल

---

2) आधुनिक गद्य विधाएँ

---

3) राष्ट्रीयता

8.5 शिल्प पक्ष

साहित्य में विषय वस्तु एवं रूप - गठन दोनों महत्वपूर्ण होते हैं। विषय वस्तुका संबंध जहाँ बदलती सामाजिक प्रवृत्तियों से है वहीं रूप का संबंध बदलती सामाजिक अभिरूचियों की स्थिरता से है। अर्थात् रूप् तभी बदलते हैं जब सामाजिक रूप से समाज में आधार भूत परिवर्तन उपस्थित हो जाते हें। ज्यादातर ऐसा होता है कि कथ्य रूप - निर्माण में अपनी प्रभावी भूमिका निभाता है या विधान वर्ण्य - वस्तु को संयोजित करने में अपनी भूमिका निभाये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का समय संधिकाल का समय है। एक ओर ब्रजभाषा का संस्कार (भक्ति - नीति - श्रृंगार की प्रवृत्तियाँ) तो दूसरी ओर आधुनिकता (नवजागरण) का आभास। एक ओर विचार दूसरी ओर संस्कार। स्वाभाविक था कि ऐसे समय में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अभिव्यक्त किया गया साहित्य संकान्तिकालीन चेतना से युक्त होता। आइए अब हम भारतेन्दु साहित्य को समझने के लिए उनके शिल्प - विधान का संक्षिप्त रूप में अवलोकन करें।

संरचना या शिल्प की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कुछ परम्परागत तत्वों का प्रयोग किया और कुछ नवीन प्रयोग किये। संरचना के अंतर्गत मुख्यतः भाषा, शैली, रस, छंद, अलंकार इत्यादि की गणना की जाती है। आइए हम भारतेन्दु काव्य संरचनागत विशेषताओं का अध्ययन करें -

8.5.1 भाषा

भारतेन्दु युग के काव्य की सर्वप्रमुख भाषा ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा उस युग के साहित्य की भाषा थी। हर युग के समाज में मुख्यतः दो भाषाएँ अनिवार्य रूप से होती ही है । एक उस समाज के आभिजात्य वर्ग की भाषा या साहित्य की भाषा और दूसरे जन सामान्य के दैनिक कार्य - व्यवहार की भाषा । भारतेन्दु काल में ब्रजभाषा काव्य की भाषा थी और खड़ी बोली बोलचाल की। इसी बीच गद्य खड़ी बोली में लिखा जाने लगा था। इस द्वैतपूर्ण स्थिति में कविता करना कठिन कार्य था। भारतेन्दु की काव्य भाषा में भी यह द्वैतपूर्ण स्थिति हमें देखने को मिलती है। उन्होने ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों में काव्य रचना की है। बावजूद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र विनम्रतावश यह लिखते हैं कि उनकी अभिरूचि खड़ी बोली कविताओं के अनुकूल नहीं है। सनृ **1881** में भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने खड़ी बोली की कविताएँ 'भारत मित्र' में प्रकाशनार्थ भेजी थी। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका मे उनकी प्रसिद्ध कविता 'मंद मंद आवे देखे प्रात समीरन' छपी थी। 'हिंदी भाषा ' निबन्ध के नई भाषा की कविता में उन्होने अपना दोहा उद्धृत किया है -

भजन करो श्रीकृष्ण का मिल कर सब लोग ।

सद्ध होयगा काम और छुटेगा सब सोग॥

पर इस टिप्पणी देते हुए भारतेन्दु जी ने लिखा है - अब देखिए, कैसी भौंडी कविता है ! आगे भारतेन्दु ने लिखा है 'जो हो, मैने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊ पर वह मेरे चिन्तानुसार नही'। भारतेन्दु की स्पष्ट स्वीकारोक्ति के बावजूद उन्होने लगभग **70** कविताएँ खड़ी बोली में लिखी हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि भरतेन्दु हरिष्चन्द्र के काव्य की भाषा ब्रजभाषा रही है । भारतेन्दु ने साहित्य के रूप् में स्वीकृत ब्रजभाषा को और परिष्कृत किया। भारतेन्दु के काव्य में कई भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं, जैसे अंग्रेजी (पोर्ट, शैंपेन, ब्रांडी), उर्दू (खाना, तमाशा, ऐश-आराम, बेकाम इत्यादि) भाषाओं के अतिरिक्त स्थानीय भोजपुरी शब्दों को प्रयोग भी मिलता है।

8.5.2 काव्य – शिल्प

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने व्यवस्थित रूप से प्रबन्ध काव्य तो नही लिखा लेकिन प्रबन्ध एवं मुक्त काव्य रूप के क्षेत्र में उन्होने काफी प्रयोग किये है। भारतेन्दु जी के काव्य रूपों में निबंध काव्य, वर्णनात्मक काव्य, विवरणात्मक काव्य एवं मुक्तक काव्यों की गणना की जाती है। निबंध काव्यों में बकरी विलाप, प्रातः समीर, रिपनाष्टक, वर्णनात्मक काव्यों में होली लीला, मधुमुकुल छंद, हिंडोला, विवरणात्मक काव्यों में विजयिनी विजय वैजयंती, भारत वीरत्व, भारत शिक्षा, मुक्तक काव्यों में प्रेम मालिका, कार्तिक स्नान, प्रेमाश्रु वर्णन, जैन कुतूहल, प्रेम तरंग, प्रेम प्रलाप, गीत-गोविदानंद, होली , मुधु मुकुल, राग सग्रहं वर्षा विनोद, विनय - प्रेम पचासा, प्रेम फुलवारी, कृष्णचरित, देवी छद्मलीला, दैन्य प्रलाप, तन्मय लीला, बोधगीत, भीष्मस्वराज इत्यादि रचनाएँ शामिल हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने काव्य क्षेत्रं में कभी परम्परागत रूप - विधान का परिपालन किया है और कभी अपनी ओर से नवीन प्रयोग किया हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रयुक्त छंद - विधान, रस एवं अलंकारों के प्रयोग से हम उनकी शिल्प - कला को ओर बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

छंद :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मुख्य काव्य भाषा ब्रजभाषा थी। स्वाभाविक था कि वे ब्रजभाषा काव्य में प्रयुक्त विविध काव्य - छंद का प्रयोग करते । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ब्रजभाषा काव्य के दोहा, कवित्र, सवैया, चौपाई, पद, छप्पय, घनाक्षरी, कुण्छलियाँ, सरोठा के साथ ही लोकगीतों के लावनी, कजली, होली इत्यादि छन्दों का प्रयोग किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अधिकांश पद्य साहित्य प्रगीत मुक्तक रूप में है। इनकी रचनाओं में अधिकांश विषम मात्रिक छंद का प्रयोग मिलता है।

अलंकार:

ब्रजभाषा काव्य परम्परा के अनुकूल भारतेन्दु ने अपने काव्य में कई अलंकारो का प्रयोग किया है। अनुप्रास, यमक, पुनरूक्ति प्रकाश , उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, संदेह आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

अभ्यास प्रश्न **4**

(क) निर्देश : नीचे दिये गए कथन में कुछ सही हैं ओर कुछ गलत। वाक्य के सामने उपयुक्त चिह्न लगाइए।

1) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र का समय संधिकाल का है। ( )

2) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र की कविता की मुख्य भाषा खड़ी बोली है। ( )

3) मन्द मन्द आवे देखो प्रात समीरन 'कविता हरिष्चन्द्र चन्द्रिका में छपी थी। ( )

4) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र की कविता में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं। ( )

5) बकरी विलाप रचना वर्णनात्मक काव्य रूप में है। ( )

(ख) 'क' और 'ख' वर्गों का सही मिलान कीजिए ।

'क'	'ख'
1) कविवचन सुधा	काव्य
2) अंधेरे नगरी	पत्रिका
3) दानलीला	इतिहास
4) कश्मीर कुसुम	उपन्यास
5) पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा	नाटक

8.6 सारांश

- भारतेन्दु हरिष्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रवर्न्तक हैं। नवजागरणवादी चेतना से पहली बार साहित्य को जोड़ने का काम भारतेन्दु जी ने ही किया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि भारतेन्दु ने साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और वे उसे षिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये। हमारे साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत्त करने वालें हरिश्चन्द्र ही हुए।
- भारतेन्दु हरिष्चन्द्र जी का जन्म काषी के प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। आपके पिता ब्रजभाषा के प्रतिष्ठित कवि थे। इस प्रकार साहित्यिक माहौल भारतेन्दु जी को बाल्यकाल से ही मिला।
- भारतेन्दु हरिष्चन्द्र जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी सहित्यकार थे। **45** वर्ष की अल्पायु में ही आपने हिन्दी साहित्ष् को जो सेवा की है, वह अपने आप में महत्वपूर्ण है। आपने हिन्दी की कई गद्य विधाओं का प्रवर्तन किया । उपन्यास, निबंध, आत्मकथा, आलोंचना,यात्रा - साहित्य जैसी विधाएँ आपके कारण हिन्दी साहित्य में आई।
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी साहित्यिक पत्रकारिता के भी जनक हैं। 'कविवचन सुधा', हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', हरिश्चन्द्र मेगजीन' एवं ' बालावोधिनी' पत्रिका के माध्यम से आपने साहित्य को तत्कालीन समस्याओं से जोड़ा ।
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य को हम मुख्यत: दो भागों में विभक्त कर सकते हैं । भाषा की दृष्टि से भी आपने दो भाषाओं का प्रयोग किया है। प्राचीन या परम्परागत विषयों भक्ति - नीति - श्रृंगार की रचनाएँ आपके कविता ससहितय का मूल हैं । इसके अतिरिक्त तत्कालीन समस्याओं विदेशी वस्तु के प्रयोग, देश के धन का बाहर जाना, लूट - खसोट, सामा्रज्यवादी नीति का विरोध भी आपकी रचनाओं की मख्य विशेषता है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त आपने खड़ी बोली कविता में भी रचनाएँ की हैं, लेकिन खड़ी बोली गद्य की तरह वह महत्वपूर्ण नहीं है।
- हिन्दी कविता के विषय भक्ति - नीति - श्रृंगार ही माने जाते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने हिन्दी कविता के अंतर्गत राष्ट्रीयता एवं समाज सुधार जैसे विषयों को शामिल कर दिया । यह आपकी हिंदी कविता को युगान्तकारी देन है।

8.7 शब्दावली

- संस्कार -किसी वस्तु, व्यक्ति, विचार को परिष्कृत, शुद्ध करने की क्रिया
- विच्छेद - अलगा
- प्रवृत्त - झुकाव, करने की दिशा
- समसामयिक - अपने युग का
- बहुमुखी प्रतिभा - किसी व्यक्ति में कई विशेषताओं का पाया जाना
- मणिकांचन योग - सुन्दर संयोग
- द्वन्द्व - दो विरोधी वस्तुओं के बीच संघर्ष
- श्लाघनीय - श्रेष्ठ प्रयत्न
- निर्विवाद - बिना किसी विवाद के

- पर्दापण - आगमन
- अनुस्यूत - लगा रहना, साथ होना
- संधिकाल - बीच का समय
- संक्रान्तिकालीन चेतना - अवस्द्धपूर्ण समय

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न **1)**

(क) (१) ✓ **(२)** × **(३)** ✓ **(४)** ✓ **(५)** ✓

(ख) (१) – 44 (२) – विद्यासुन्दर **(३)** – ब्रजभाषा **(४) -** दुर्लभ बंधु

अभ्यास प्रश्न **2)**

(क) (१) – गिरिधरदास **(२)** – रीतिकालीन **(३) -** वैष्णव

(४) - हमन है मस्त मस्ताना हमन को होशियारी क्या? **(५) - 'ब्रज** के लता पता मोहिं कीजे'

अभ्यास प्रश्न **4)**

(क) (१) ✓ **(२)** × **(३)** ✓ **(४)** ✓ **(५)** ✓

(ख)(1) – पत्रिका **(2)** – नाटक **(3)** – काव्य **(4)** – इतिहास **(5) -** उपन्यास

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, किशोरी लाल, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय।

2. शर्मा, (सं.)हमेन्त, भारतेन्दु समग्र, हिन्दी प्रचारक संस्थान।

3. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा का विकास, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली।

4. आधुनिक काव्य (भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी) – इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विष्वविद्यालय, नई दिल्ली।

8.10 सहायक/ उपयोगी पाठय सामग्री

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

2. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कृतित्व का परिचय प्रस्तुत कीजिए।

2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य प्रवृत्तियों का विशेषता बताइए।

इकाई 9 : हिंदी कविता का द्विवेदी युग : परिचय एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 हिंदी कविता का द्विवेदी युग: परिचय
9.3.1 नामकरण एवं काल विभाजन
9.3.2 द्विवेदी युग का रचना वृत्त
9.4 महावीर प्रसाद द्विवेदी : रचनागत संदर्भ
9.5 मैथलीशरण गुप्त : रचनागत संदर्भ
9.6 द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ
9.6.1 राष्ट्रीयता
9.6.2 सुधार
9.6.3 नवजागरण
9.6.4 इतिवृत्तात्मकता
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 संदर्भ प्रश्नों के उत्तर
9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इस युग का नामरकण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान एवं सम्मान को ध्यान में रखते हुए किया गया है। हिंदी कविता में भारतेन्दु युग के बाद के काल को 'द्विवेदी युग' कहा गया है। नामकरण के संबंध में आपने पूर्व में अध्ययन किया कि इसके कई आधार होते है। रचनाकार-व्यक्तित्व, युग की प्रवृत्ति और सामाजिक-राजनीतिक कई कारण होते हैं जिससे नामकरण स्थिर किया जाता है। पिछले खण्ड में आपने आधुनिकता की विशेषता एवं उसकी प्रवृत्ति का अध्ययन किया। आपने देखा कि आधुनिकता की अवधारणा के मूल में आधुनिक वैचारिक और ज्ञान-विज्ञान की महती भूमिका रही है। आधुनिकता तर्क, बुद्धि एवं मानव केंद्रित चिंतन से विकसित हुआ प्रत्यय है। आधुनिकता की अवधारणा पश्चिम में सर्वप्रथम विकसित हुई। पश्चिमी संस्कृति और भारतीय संस्कृति के घात-प्रतिघात से भारतीय आधुनिकता का उदय हुआ है, जिसे भारतीय संदर्भों में पुनर्जागरण कहा गया है। पुनर्जागरण को हिंदी साहित्य में लाने का श्रेय भारतेन्दु हरिशचंद्र को है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र की सृजनात्मक परम्परा के वाहक महावीर प्रसाद द्विवेदी बनते है। भारतेन्दु युग गद्य की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है लेकिन उसकी कविता का पक्ष उतना सशक्त नहीं है। हिंदी साहित्य में इस अभाव की पूर्ति महावीर प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक एवं युगप्रवर्त्तक व्यक्तित्व के माध्यम से हुआ, इसीलिए उनके योगदान को बाद के सभी प्रगतिशील रचनाकारों ने स्मरण किया है। भारतेन्दु की परम्परा और महावीर प्रसाद द्विवेदी की परम्परा एक ही है। दोनों के मूल में भारतीय नवजागरण की भूमिका ही काम कर रही है। इस इकाई में हम द्विवेदी युग के रचनाकारों, उनकी रचनात्मक प्रवृत्तियों एवं भारतीय चिंताधारा के संदर्भ में उनके योगदान का रचनात्मक मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृत्तिव से परिचित हो सकेंगे।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी के हिंदी साहित्य (कविता) में किये गए योगदान को समझ सकेंगे।
- द्विवेदी-युग के प्रमुख रचनाकार मैथिलीशरण गुप के रचनात्मक-कर्म से परिचित हो सकेंगे।
- द्विवेदी युग के रचनात्मक प्रदेय का मूल्यांकन कर सकेंगे।

9.3 हिंदी कविता का द्विवेदी युग : परिचय

हिंदी कविता का द्विवेदी युग इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसी युग में आकर भाषागत-द्वैत समाप्त हुआ। भारतेन्दु-युग तक हिंदी कविता में दो भाषाएँ चलती रहीं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली के द्वैत और संघर्ष से भारतेन्दुकालीन कविता प्रभावित और संचालित हुई है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जब हिंदी साहित्य के रचना क्षेत्र में आये तो उन्होंने सर्वप्रथम यह महसूस किया कि भाषाई-द्वैत को बिना समाप्त किये हिंदी कविता का वास्तविक विकास संभव नहीं है। ब्रजभाषा की समाप्ति केवल भाषाई मुक्ति नहीं थी। भाषा और संस्कार, भाषा और संस्कृति अविभाज्य हैं। साहित्यिक संस्कृति बिना सांस्कृतिक चेतना के संभव नहीं है और सांस्कृतिक उन्नति बिना साहित्यिक दाय से पूरी नहीं हो पाती। हिंदी कविता का प्रारम्भिक समय भारतीय जनजागरण से सीधे प्रभावित होता है। कम-से-कम छायावाद तक का काव्य भारतीय नवजागरण की प्रेरणा से सृजित हुआ है, जबकि उसके बाद का काव्य तत्कालीन सामाजिक,

राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं आधुनिक विचारधारा से। इस दृष्टि से द्विवेदी युगीन की मूल आत्मा को हम आलोचनात्मक ढंग से समझने का प्रयास करेंगे।

9.3.1 नामकरण एवं काल विभाजन

जैसा कि हम पढ़ चुके हैं कि महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान को लक्ष्य करके इस युग को 'द्विवेदी युग/काल' कहा गया है। नामकरण के संदर्भ में हमें यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि साहित्यिक नामकरण में उस युग की रचनात्मक प्रवृत्ति ही सबसे ज्यादा उपयुक्त होती है। रचनात्मक प्रवृत्ति के आधार पर स्थिर नामरकण उस काल के साहित्य से सीधे जुड़ता है। जबकि किसी रचनाकार-व्यक्तित्व के प्रभाव से किया गया नामरण ऐतिहासिक चेतना से सीधे नहीं जुड़ता बल्कि वह रचनाकार-व्यक्तित्व के माध्यम से जुड़ता है। इसे हम इस प्रकार समझा सकते हैं –

ऐतिहासिक चेतना

↓

रचनाकार-व्यक्तित्व

↓

प्रवृत्ति निर्धारण

लेकिन यदि साहित्यिक क्षेत्र में इस प्रकार की घटना घटे कि किसी रचनाकार का व्यक्तित्व उस युग की प्रवृत्ति से बड़ा दिखे तो दो बातें ध्वनित होती है। एक, उस युग की प्रवृत्ति से कहीं बड़ा रचनाकार का व्यक्तित्व है। और दूसरे, युग की प्रवृत्तियॉं अपने विकासमान स्थिति में हैं। अधिकांश ऐसा देखा गया है कि किसी विधा के आरंभिक दौर में उस विधा को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले रचनाकार का व्यक्तित्व उस युग में केंद्रीय हो उठता है। किसी विधा के पर्याप्त विकसित होने के उपरान्त बड़े रचनाकार उसे विकसित करने में और बढ़ाने में अपना योगदान देने के बाद केन्द्रिय भूमिका से हट जाते हैं और रचनागत प्रवृत्ति केंद्र में आ जाती है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के माध्यम से खड़ी बोली हिंदी कविता साहित्य में स्थापित होती है, अत: यह नामकरण उचित ही है। इस युग का एक नामकरण 'जागरण-सुधार काल' भी किया गया है (देखें –डॉ0 नगेन्द्र का 'हिंदी साहित्य का इतिहास') जो महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की ही एक प्रमुख विशेषता है। केन्द्र में जिस प्रकार परिधि सम्मिलित हो जाती है। उसी प्रकार महावारी प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक व्यक्तित्व में जागरण-सुधार सम्मिलित हो जाते हैं। जागरण का तात्पर्य जहॉं नवजागरणवादी मनोवृत्ति है, वहीं जागरण के पश्चात् पैदा हुई सामाजिक-साहित्यिक सुधार की भावना ही, 'जागरण-सुधार' है।

द्विवेदी युग का काल मोटे तौर पर 1900 ई0 से लेकर 1918 या 1920 ईसवी तक निर्धारित किया गया। हालांकि कुछ जगह काल सीमा की समाप्ति सन् 1925 तक भी स्थिर की गई है। ''द्विवेदी-युग उनके सम्पादन काल के प्रारम्भ (1903 ई0) से 1925 ई0 के लगभग तक माना जाता है।'' (देखें-हिंदी साहित्य कोश, भाग एक, पृष्ठ 264) यहॉं द्विवेदी-युग का समय 1903 से 1925 तक स्थिर किया गया है, जो व्यावहारिक नहीं है। आधुनिक इतिहासकारों ने 1901 से 1920 तक के समय को 'द्विवेदी युग' कहा है। कुछ इतिहासकारों ने 18 वर्ष की एक पीढ़ी के आधार पर का तर्क देकर तथा 1918 से छायावादी प्रवृत्तियों की शुरूआत देखते हुए इस काल को 1901 से 1918 ईसवी तक स्थिर किया है। हम जानते हैं कि इतिहास में किसी खास तिथि से कोई प्रवृत्ति न प्रारम्भ होती और न समाप्त होती

है। ईसवी या तिथि इतिहास में लचीलेपन से युक्त होने चाहिए क्योंकि वे सुविधापूर्ण ढंग से विश्लेषित किये जाते हैं। 1903 ई0 में महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक बनते हैं और 1920 तक वे अनवरत सरस्वती का संपादन करते हैं। उसके पश्चात् कुछ अंतराल के बाद पुन: संपादन कर्म से जुड़ते हैं और 1925 तक वे 'सरस्वती' से जुड़े रहते हैं। तो क्या 'द्विवेदी काल' का प्रारम्भ 1903 से माना जाए। सरस्वती पत्रिका 1900 ई0 से विधिवत रूप से प्रकाशित होना प्रारम्भ होती है। 1900 से 1902 ईसवी तक श्यामसुंदर दास 'सरस्वती' का सम्पादन करते हैं। हमने पहले ही कहा कि काल-विभाजन में सुविधा एवं लचीलापन होना चाहिए। सन् 1901 से 'द्विवेदी काल' मानने से दोनों शर्तें पूरी हो जाती हैं। 1920 ईसवी तक छायावादी प्रवृत्तियॉ उभार लेने लगती हैं और यही वह वर्ष है जब द्विवेदी जी सरस्तवी के सम्पादन कार्य से मुक्त होते हैं, अत: सन् 1901 से 1920 ईसवी के बीच के समय को 'द्विवेदी काल' कहा जा सकता है।

9.3.2 द्विवेदी युग का रचना वृत्त

जिस प्रकार ग्रह के प्रभाव से उपग्रह निर्मित हो जाते हैं, उसी प्रकार बड़े रचनाकार के सृजनात्मक व्यक्तित्व से लेखकों का एक वर्ग निर्मित हो जाता है। हिंदी कविता में मध्यकाल तक इस प्रकार का रचनात्मक वलय धार्मिक-दार्शनिक नेताओं के इर्द-गिर्द निर्मित होता था, जैसे – रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, रामानंद, मध्वाचार्य, चैतन्य महाप्रभु आदि। चूँकि मध्यकाल तक रचनात्मक ऊर्जा के मूल में धार्मिक-आध्यात्मिक प्रेरणा मुख्य हुआ करती थी, इसलिए धार्मिक नेतृत्वकर्त्ता एक रचनात्मक मण्डल तैयार किया करते थे। आधुनिक कालीन कविता में धर्म हट गया, उसका स्थान नवजागरणवादी चेतना ने ले लिया। इस युग में जो रचनाकार नवजारगण की सृजनात्मक ऊर्जा को जितने अच्छे ढंग से अभिव्यक्त कर सका, वह अपने आस-पास रचनाकारों का मण्डल निर्मित करने में उतना ही समर्थ हुआ है। जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र के रचनात्मक व्यक्तित्व के प्रभाव से 'भारतेन्दु मण्डल' निर्मित हुआ, ठीक उसी प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्यिक अनुशासन एवं सृजन ने 'द्विवेदीवृत्त' को जन्म दिया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में कवियों का कइ वर्ग सम्मिलित था। कुछ तो द्विवेदी जी के प्रभाव से रचना कर रहे थे तो कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक रचनात्मकता के प्रभाव वश। यहॉ हम द्विवेदीकालीन प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे। श्रीधर पाठक वैसे तो भारतेन्दु कालीन कवि हैं। उनकी प्रसिद्ध कविताएँ जगत सच्चाई सार, उजड़ग्राम, श्रांतपथिक एकान्तवासी योगी 1886 ई0 के लगभग ही प्रकाशित हो चुकी थी, लेकिन उनका रचनात्मक कर्म द्विवेदी-युग में भी सक्रिय रहा। श्रीधर पाठक ने मुख्यत: प्रकृति प्रेम की कविताएँ लिखी हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त आपने सामाजिक सुधार से संबंधित भी कई रचनाएँ की है। पं0 अयोसिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदी-युग में सर्वाधिक बड़े कवियों में से एक है। आप भारतेन्दु-युग से ही रचना क्षेत्र में सक्रिय थे, लेकिन आपकी महत्वपूर्ण कृत्तियाँ द्विवेदी युग में ही सृजित हुई हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय की हिंदी कविता को सबसे बड़ी देन उनका महाकाव्य 'प्रियप्रवास' है, जो सन् 1914 में प्रकाशित हुआ। ग्रंथ की भूमिका में हरिऔध ने विस्तार से खड़ी बोली के विरोधियों के इस तर्क का उत्तर दिया है कि खड़ी बोली में कविता नहीं लिखी जा सकती। 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली हिंदी का प्रथम महाकाव्य है। हरिऔध जी ने संस्कृत वर्णवृत्तों में आधुनिक संदर्भों को पिरोया है। महाकाव्य की विशेषत इस दृष्टि से भी है कि इसकी नायिका राधा है। यहॉ राधा का चित्रण प्रेमिका रूप में नहीं है, बल्कि लोकसेविका रूप में है। 'वैदेही वनवास', चौखे चौपदे चुभते चौपदे, मधुकलश आपकी अन्य महत्वपूर्ण काव्य-कृत्तियॉ हैं। मैथलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सबसे बड़े कवि हैं। गुप्त जी महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इस युग की समस्य संभावनाएँ एवं सीमाएँ गुप्त जी के काव्यों में प्रकट हुई हैं। रंग में भंग, जयद्रथ वध, विकट भट, प्लासी का युद्ध, गुरूकुल, किसान, पंचवटी, सिद्धराज, साकेत, यशोधरा इत्यादि आपके प्रसद्धि काव्य है। साहित्यिक प्रयोग एवं विषयवस्तु दोनों दृष्टियों से मैथिली शरण गुप्त जी द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। मैथिली शरण गुप्त जी की

साहित्यिक विशेषताओं पर हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे। रामचरित उपाध्याय द्विवेदी-युग के पुरानी परम्परा के कवि माने जाते हैं। इनका परिचय देते हुए रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है ''ये संस्कृत के अच्छे पंडित थे और पहले पुराने ढंग की हिंदी कविता की ओर रूचि थी। 'सरस्वती' में जब खड़ी बोली की कविताएँ निकलने लगी तब वे नये ढंग की रचना की ओर बढ़े..... 'राष्ट्रभारती', 'देवदूत', देवसभा' 'देवी द्रौपदी', 'भारत भक्ति' 'विचित्र विवाह इत्यादि अनेक कविताएँ उन्होंने खड़ी बोली में लिखी हैं। पं0 गिरिधर शर्मा नवरत्न की कविताएँ, सरस्वती तथा अन्य पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होती रही है। ये ब्रजभाषा, संस्कृत ओर अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार थे। इनकी कविताएँ इतिवृत्तात्मक शैली में ही प्राय: लिखी गई हैं। लोचन प्रसाद पाण्डेय द्विवेदी युग के प्रसिद्ध कवि हैं। आपने प्रबन्ध काव्य तथा मुम्तक काव्य दोनों की रचना की है। आपकी काव्य-संवदेना विस्तृत है।

उपर्युक्त कवि द्विवेदी-वृत्त के कवि है। ये वे कवि है जिनकी रचनाएँ 'सरस्वती' पत्रिका में बराबर प्रकाशित होती रहीं या जिन पर महावीर प्रसाद द्विवेदी का पर्याप्त प्रभाव रहा है। लेकिन इसके अतिरिक्त द्विवेदी-युग में कवियों का एक वृत्त ऐसा भी है जो भिन्न-भिन्न धारा की कविता लिखते रहे हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन कवियों 'द्विवेदीमंडल के बाहर की काव्यभूमि' की संज्ञा दी है। इन कवियों में मुख्य रूप से राय देवी प्रसाद 'पूर्ण, पं0 नाथूराम शंकर शर्मा, पं0 गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही', पं0 सत्यनारायण कविरत्न, लाला भगवान दीन, पं0 रामनरेश त्रिपाठी, पं0 रूपनारायण पाण्डेय आदि है।

9.4 महावीर प्रसाद द्विवेदी : रचनागत संदर्भ

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म 1864 ई. में रायबरेली जिले के दौलतपुर नामक स्थान पर हुआ था। आपकी मृत्यु 1938 ई. में हुई। भारतेन्दु के बाद किसी एक व्यक्तित्व ने आधुनिक हिंन्दी साहित्य को प्रभावित किया है तो वो है – महावीर प्रसाद द्विवेदी। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला, उन्नाव एवं फतेहपुर में हुई। उसके उपरान्त आप बम्बई चले गये। यहीं पर आपने संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। अध्ययन समाप्ति के उपरान्त आपने रेलवे विभाग की नौकरी कर ली। इस विभाग के अनुशासन बहुत योग दिया। बाद में अपने रेलवे की नौकरी छोड़ दी और 'सरस्वती' के संपादन के माध्यम से साहित्य की सेवा करते रहे। महावीर प्रसाद द्विवेदी का अवदान उनके भाषा संबंधी सुधार कार्य एवं एक पूरी पीढ़ी को दिशा निर्देशित करने में है। फिर भी आपकी कविताएँ अपने ढंग से ऐतिहासिक महत्व रखती हैं। यहाँ हम द्विवेदी जी की प्रमुख काव्य-कृतियों की एक सूची प्रस्तुत कर रहे हैं।

अनुदित:

- विनय विनोद-1889 ई. भर्तृहरि के वैराग्य शतक का दोहों में अनुवाद
- विहार वाटिका – 1890 ई. गीत गोविन्द का भावनुवाद
- श्री महिम्न स्तोत्र – 1891 ई. संस्कृत के महिम्न स्तोत्र का संस्कृत वृत्तों में अनुवाद।
- गंगा लहरी- 1891 ई. पण्डितराज जगन्नाथ की 'गंगा लहरी' की सवैयों में अनुवाद।
- ऋतुतरंगिणी – 1891 ई. कालिदास का ऋतुसंहार का छायानुवाद
- सोहागरात (अप्रकाशित) – बाइरन के ब्राइडल नाईट का छायानुवाद।
- कुमारसंभवसार- 1902 ई. कालिदास के कुमारसंभव के प्रथम पाँच सर्गों का सारांश।

मौलिक कृतियाँ :

- देवी-स्तुति-शतक – 1892 ई.
- कान्यकुब्जावलीव्रतम् – 1898 ई.
- समाचार पत्र सम्पादक स्तव – 1898 ई.
- नागरी- 1900 ई.
- कान्यकुब्ज- अबला विलाप- 1907 ई.
- काव्य मंजूषा – 1903 ई.
- सुमन – 192 ई.
- द्विवेदी काव्य – माला -194**0** ई.
- कविता कलाप- 1909 ई.

रचनात्मक एवं आलोचनात्मक संदर्भ

हिंन्दी साहित्य में महावीर प्रसाद द्विवेदी के मूल्यांकन से पूर्वहमें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि जिस युग में द्विवेदी जी रचना कर रहे थे वह अपनीसंपूर्ण मानसिकता में ब्रजभाषा के सामंती संस्कारों से आच्छन्न युग था। उस समय के साहित्यिक माहौल एंव स्थिति पर हिंदी साहित्य कोश में लिखा गया है। "वह समय हिंदी के कलात्मक विकासका नहीं, हिंदी के अभावोंकी पूर्ति का था। अपने ज्ञान के विविध क्षेत्रों – इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञा, पुरातत्व, चिकित्सा, राजनीति, जीवनी, आदि से सामग्रीलेकर हिंदी के अभावोंकी पूर्ति की।" (पृष्ठ-439) महावी प्रसाद द्विवेदी युग प्रवर्त्तक रचनाकार हैं। उनका बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने साहित्य में फैली शीतकालीन संस्कारों से हिंन्दी कविता की मुक्त कर उसका वर्ण्य- क्षेत्र विस्तृत किया। स्वयं 'रसज्ञांजन'की भूमिका में कविता का आदर्श महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस प्रकारव्यक्त कियाहै-"कविता का विषय मनोरंजक एवं उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त ..... सभी पर कविता हो सकती है। " आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक योगदान को इस प्रकार स्मरण किया है- "महावीर प्रसाद जी द्विवेदी को पद्यरचना की एक प्रणाली के प्रवर्तक के रूप में पाते हैं ..... पहली बात तो यह हुई कि उनके कारण भाषा में बहुत कुछ सफाई आयी। बहुत-से कवियों की भाषा शिथिल और अव्यवस्थित होती थी और कई लोग ब्रज और अवधी आदि का मेल भी कर देते थे। इस प्रकार के लगातार संशोधन से धीरे-धीरे बहुत-से कवियों की भाषा साफ हो गई। उन्हीं नमूनों पर और लोगों ने भी आपना सुधार किया।" मराठी के प्रभाव से द्विवेदी जी की कविता में गद्य का पदविन्यास आ गया। इसके अतिरिक्त वे वडर्सवर्थ के इस सिद्धान्त से भी प्रभावित थे कि गद्य और पद्य का पदविन्यास एक ही प्रकार का होना चाहिए। इस प्रभाव का दुष्परिणाम यह हुआ कि द्विवेदी जी की कविता और उस मंडल के कवियों की कविताएँ प्राय: इतिवृत्तात्मक हो गईं हैं। उनमें वह सूक्ष्मता, कोमलता एवं कल्पना की उड़ान नहीं मिलती जो छायावादी कवियों की विशेषताएँ है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक योगदान का मूल्यांकन करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- "आचार्य द्विवेदी मूलत: व्यवस्थापक हैं, जो उस समय नये-नये बनते खड़ी बोली हिंन्दी भाषा और साहित्य के विकास की ऐतिहासिक आवश्यकता थी।"

9.5 मैथिलीशरण गुप्त : रचनात्मक एवं आलोचनात्मक संदर्भ

आपने पूर्व में अध्ययन किया कि मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सबसे बड़े कवि हैं। गुप्त जी इस दृष्टि से द्विवेदी युग का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। यहाँ हम यह देखेंगे कि वह कौन सी विशेषताएँ थी जिसके कारण मैथिलीशरण गुप्त का काव्य इस युग का प्रतिनिधि काव्य बना। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के आलोचनात्मक मूल्यांकन पूर्व आइए हम उनके जीवन परिचय एवं रचनाओं की संक्षिप्त रूपरेखा से परिचित हों।

जीवन एवं काव्य परिचय

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 ई. में झाँसी के चिरगाँव नामक स्थान पर हुआ था। आपकी मृत्यु 1964 ई. में हुई। मैथिलीशरण गुप्त के रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनकी पत्रिका 'सरस्वती' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाएँ कलकत्ता से निकलनेवाले 'वैश्यापारक' पत्र में प्रकाशित होती थीं। द्विवेदी जी की प्रेरणाएवं प्रभाव से मैथिलीशरण गुप्त की रचनात्मक प्रतिभा में काफी उभार आया। 'रंग में भंग' कृति के प्रकाशनके पश्चात गुप्त जी चर्चित हुए। लेकिन जिस कृति के कारण में 'राष्ट्रकवि' कहलाये, वह थी- 'भारत भारती' जागरण गीत है। 'हम कौन थे, क्या हो गये है और क्या होंगे अभी/आओ, विचारों आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।' इस ग्रंथ का केंद्रीय प्रतिपाद्य है। मैथिलीशरण गुप्त की अन्य रचनाओं में साकेत, यशोधरा, अनध, विकटभट, किसान,विष्णुप्रिया, द्वापर, जयभारत, नहुष, पंचवटी, हिडिम्बा, सिद्धराज इत्यादि हैं। इन कृतियों में 'साकेत' महाकाव्य रामभक्तिशाखा में तुलसीदास के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ बन गया है।

'साकेत' मैथिलीशरण गुप्त की रचनात्मक क्षमता का सर्वाधिक उज्जवल नक्षत्र है। इस ग्रन्थ के आधार पर मैथिलीशरण गुप्त को रामभक्ति शाखा का कवि कहा गया है। प्रश्न यह है कि क्या मात्र रामभक्ति शाखा के अनुकरण से ही गुप्त जी बड़े कवि हुए हैं ? बड़ा कवि वही हेाता है जो परम्परा के हाय को स्वीकार करते हुए भी उसे समृद्ध करता है। तुलसीदास से हटकर रामभक्ति शाखा में नया जोड़ना एक प्रकार से चुनौती ही थी, जिसे मैथिलीशरण गुप्त जी ने सफलतापूर्वक साधा है। प्रश्न कियाजा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त का नयापन क्या है ? तुलसीदास के राम संपूर्ण चराचर जगत को धारण करने वाले ब्रह्म हैं किन्तु मैथिलीशरण गुप्त ने आधुनिक नवजागरणवादी चेतना के अनुरूप राम को मानव रूप में ही देखने का प्रस्ताव/आग्रह किया है--"राम तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?/विश्व में रमे हुये नही सभी कहीं हो क्या ?/ तब में निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे/तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।" आगे 'साकेत'की ही पंक्तियाँ है--

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,

संदेश यहाँ में नहीं स्वर्ग का लाया,

उस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

नवजागरणवादी चेतना के तहत ईश्वर का मानव रूप में चित्रण एक बिन्दु था, जो मैथिलीशरण गुप्त को बड़ा कवि बनाता है। एक दूसरा बिन्दु है गुप्त जी का नारी चित्र। 'साकेत' महाकाव्य में यदि वे चाहते तो राम या सीता को प्रतिनिधि व्यक्तित्व प्रदान कर सकते थे। लेकिन 'साकेत'की नायिका 'उर्मिला'है जो आधुनिक नवजागरण के अनुरूप ही पुनर्मूल्यांकन के योग्य है। कैकेई, उर्मिला,विष्णुप्रिया, यशोधरा जैसी स्त्री चरित्रों को जितनी करूणा मैथिलीशरण

गुप्त ने प्रदान किया है, उतना कोई आधुनिक साहित्यकार नहीं। नारी के सम्बनध में मैथिलीशरण गुप्त का बीज वक्तव्य तो प्रसिद्ध है ही-

"अबला जीवन, हाय, तुम्हारी यही कहानी,

आँचन में है दूध और आँखों में पानी।"

मैथिलीशरण गुप्त के नारि-चित्रण पर डॉ बच्चन सिंह ने टिप्पणी की है: "जहाँ-तहाँ नारी की विद्रोह वाणी भी सुनाई पड़ती है किन्तु उसमें तेजस्विता नहीं है। ये सारी नारियाँ पारिवारिक मार्यादाओंके भीतर सब कुछ सहती हैं। विष्णुप्रिया कहती है- 'सहने के लिए बनी है, सह तू दुखिया नारी।" वस्तुत: मैथिलीशरण गुप्त से यह आशा करना कि वे विद्रोही चरित्रों की सृष्टिकरें, यह उचित नहीं है। "गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बृड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमताअर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्यप्रणालियों को ग्रहणकर चलने की शक्ति। इस दृष्टि से हिंदी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं।"

9.6 द्विवेदी युग की प्रवृत्तियॉं

हिंदी कविता में महावीर प्रसाद का महत्व उनके द्वारा किये गये भाषा-सुधार; सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन, रीतिवाद विरोधी अभियान चलाने एवं एक पूरी पीढ़ी को दिशा-निर्देशन के चलते है। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी का रचना-कर्म अपने शिष्य मैथिलीशरण गुप्त की तुलना में कमजोर है। द्विवेदी जी महत्व हिंदी साहित्य में कविता की श्रेष्ठता की दृष्टि से उतना नहीं है, जितना श्रेष्ठ रचना निर्मित करने की प्रेरणा से है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि महावी प्रसाद द्विवेदी का कवित्व श्रेष्ठता की दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना ऐतिहासिक दृष्टि से। इस दृष्टि से द्विवेदी युग की कविता प्रवृत्ति को हम महावीर प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक व्यक्तित्व की ही छाया कह सकते हैं। आइए, हम संक्षेप में द्विवेदी कालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को जानने का प्रयास करें।

9.6.1 राष्ट्रीयता

महावीर प्रसाद द्विवेदी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान प्रारम्भ में अंग्रेजी प्रशासन के अंग थे, या कहें कि सरकारी कर्मचारी थे। इसीलिए स्वयम् द्विवेदी जी और 'सरस्वती' के प्रारम्भिक लेखों में राष्ट्रीयता के तत्व नहीं पाये जाते। सरस्वती के शुरूआती अंकों में द्विवेदी जी अंग्रेजी प्रशासन के खिलाफ लेख छापने से बचते रहे। बल्कि शुरूआती कुछ लेख ब्रिटिश हुकुमत के पक्ष में भी छपे। लेकिन क्रमश: द्विवेदी –युग की कविता राष्ट्रीयता की ओर झुकती चली गई। द्विवेदी जी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' की रचना की, जो राष्ट्रीय बोध की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व रखती है। 'भारत-भारती' कुछ पंक्तियॉं देखें –

है ठीक ऐसी ही दशा हत-भाग्य भारतवर्ष की।/ कब से इतिश्री हो चुकी इसके अखिल उत्कर्ष की।

× × ×

दृढ़-दुख दावानल इसे सब ओर घेर जला रहा, तिस पर अदृश्टाकाश उलटा विपद-वज्र चला रहा। यद्यपि बुझा सकता हमारा नेत्र-जल इस आग को, पर धिक् हमारे स्वार्थमय सूखे हुए अनुराग को

× × ×

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी/ आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।/ यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं, हम कौन थे, इस ज्ञान का, फिर भी अधूरा है नहीं।

'भारत-भारती' उद्बोधन परक शैली में लिखी गई है। इसी कारण इसने तत्कालीन समय में युवाओं को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुप्त जी का महत्वपूर्ण ग्रंथ 'साकेत' की कथा पौराणिक इतिवृत्त के आधार पर रची गई है, लेकिन जगह-जगह उसमें भी राष्ट्रीयता की झलक मिल जाती है। जैसे –

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में

सिंधु पार वह बिलख रही व्याकुल मन में।

× × ×

आओ, यदि जा सको रौदं हमको यहॉ

यों कह पथ में लेट गये बहु जन वहॉ

राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति की दृष्टि से सियारामशरण गुप्त की कविता पंक्ति भी उल्लेखनीय है –

कवि के स्वतंत्र देश

तेरे लिए कौन नया गीत आज गाऊं मैं

मेरे घट में हो आज गंगा-जमुना का नीर,

भक्ति हो संगम का तीर्थ-तीर,

रेवा, शोप, वैत्रवली, पंचनद गोदावरी

उल्लसित प्रेम-प्रेमी

शिक्षा, सिंधु सरयु, पवित्र कृष्णा, कावेरी

सबके पुनीत अमिभज्जन से

नव-अभिषेक करूँ आज के सुदिन का,

आऊं मातृभूमि के चिरन्तर से

एक रस आ रही अखण्ड निर्मलिनता।

इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी की राष्ट्रीय भाव बोध की

पंक्ति देखें –

द्वार-द्वार पर जाकर विजया

करूणा प्रेम-निधान।

सबको लगी जगाने गाकर

देशभक्ति-भय गान।।

उसके गान अतीत काल के
थे सुख रूप-ललाम।

सुनकर के आहें भरते थे

कृषक कलेजा थाम।।

उसके गान हृदय में भरते
थे साहस उत्साह।

बतलाते थे स्वतंत्रता को

सुख पाने की राह।।

× × ×

एक घड़ी की भी परवशता कोटि नरक के सम है।

पलभर की भी स्वतंत्रता सौ स्वर्गों से उत्तर है।

9.6.2 सामाजिकता

द्विवेदी जी की कविता समाज सुधार या सामाजिकता की व्यापक भावना से संचालित रही है। सामाजिक की भावना कहीं सामाजिक सुधार में अभिव्यक्त हुई है तो कहीं समाज को आगे बढ़ाने की गत्यात्मकता में। यहॉ हम द्विवेदी युग की कविता में अभिव्यक्त कुछ उदाहरणों के माध्यम से अपनी बात स्पस्ट करेंगे।

हिंसानल से शांत नहीं होता हिंसानल/जो सबका है वहीं हमारा भी है मंगल/मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर/हिंसा का है एवं अहिंसा ही प्रप्युत्त (अहिंसा का आग्रह – सिया राम शरण गुप्त)

× × ×

जाति, धर्म या सम्प्रदाय का, नहीं भेद-व्यवधान यहां सबका स्वागत, सबका आदर, सबका सम-सम्मान यहॉ।

× × ×

जाति धर्म या सम्प्रदाय का नहीं व्यवहार यहॉ,

राम-रहीम, बुद्ध,-ईसा का सुलभ एक सा ध्यान यहॉ।

× × ×

नारी पर नर का कितना अत्याचार है

लगता है, विद्रोह मात्र ही अब इसका प्रतिकार है।

× × ×

आ पहुँचा नवयुग सभी समक्ष तिहारें,

धन वारें धनी, दरिद्र दीनता वारें। (मैथिली शरण गुप्त)

× × ×

यह दहेज की आग सुवंशों ने दहकाई।

प्रलयवाही सी वही आज चारों दिशा छाई।

× × ×

बाल विवाह रोक हम देते यदि हमको मिलते अधिकार।

वृद्ध व्याह का किन्तु देश में कर देते हम खूब प्रचार।

× × ×

सामाजिक कतिपय कुप्सित नियम।

अति संकुलित छूतछात के विचार।

हर ले रहे हैं आज हमारा सर्वस्व। (अयोध्या सिंह आध्याय हरिऔध)

उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि द्विवेदी कालीन कविता अपनी सामाजिक चेतना में किसी भी कविता धारा से तुलनीय है।

9.6.3 नवजागरण

रामविलास शर्मा ने द्विवेदी युग के साहित्य को नवजागरण की 'द्वितीय मंजिल' कहा है। कारण यह है कि इस युग का साहित्य अपने मूल रूप में नवीन चेतना से आप्लावित है। पूर्व में कहा गया कि-साकेत और 'प्रियप्रवास' की नाभिकाएँ उर्मिला और राधा मात्र विरहिणी प्रेमिका रूप में यहाँ चित्रित नहीं हुई हैं बल्कि वे लोकसेविका रूप में चित्रित हुई हैं। 'प्रियप्रवास' की यह पंक्ति देखे –

अत: सबों से यह श्याम ने कहा

स्व जाति उद्धार महान् कर्म है।

चलों करें पावक में प्रवेश औ।

स धेनु लेवें निज जाति का बचा।

× × ×

बिना न त्यागे ममता स्व-प्राण की
बिना न जोखों-ज्वालादाग्नि में पड़े।

न हो सका विश्व महान् कार्य है।

न सिद्ध होता भव जन्म हेतु है।

× × ×

बढ़ों करो वीर स्वजाति का भला,

अपार दोनों विध लाभ है हमें।

किया स्व कर्तव्य उबार भी लिया।

सु-कीर्ति पाई यदि भस्म हो गये।

9.6.4 इतिवृत्तात्मकता

द्विदेवी युगीन कवता की एक बड़ी विशेषता इसकी इतिवृत्तात्मक शैली रही है। प्रश्न है कि इतिवृत्तात्मकता क्या है **?** आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदी जी की कविता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है – ''उनका जोर बराबर इस बात पर रहता था कि कविता बोलचाल की भाषा में होनी चाहिए.....परिणाम यह हुआ है कि उनकी भाषा बहुत अधिक गद्वत् (**Prosaic**) हो गयी।.....उनकी अधिकतर कविताएँ इतिवृत्तात्मक (**Matter of Fact**) हुई। उनमें वह लाक्षणिकता, वह चित्रमयी भावना और वक्रता बहुत कम आ पायी जो रस-संचार की गति को तीव्र और मन का आकर्षित करती है। 'यथा', 'सर्वथा', 'तथैव' ऐसे शब्दों के प्रयोग ने उनकी भाषा को और भी अधिक गद्य का स्वरूप दे दिया।' द्विवेदी युगीन कविता की पंक्तियॉ देखें, सर्वत्र गद्य का आभास मिलता है, 'दिवसावआन का समय था' पंक्ति में था, शब्द का प्रयोग वाक्य को गद्यवत बना रहा है या मैथिलीशरण गुप्त की काव्य पंक्तियॉ देखें –

क्षत्रिय ! सुनो अब तो कुयश की कालिमा को भेंट दो। निज देश को जीवन सहित तन-मन तथा धन भेंट दो।।

× × ×

पहले ऑखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे। छींटे वही उड़े थे, बड़े-बड़े अश्रु वे कब थे **?**

× × ×

मुझे फूल मत मारो

× × ×

वेदने ! तू भी भली बनी

× × ×

राम, तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?

× × ×

हम कौन थे , क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी

संक्षिप्त उदाहरणों के माध्यम से हम यह कहना चाह रहे हैं कि द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली उसकी विशिष्ट पहचान बन गई।

अभ्यास प्रश्न 1

क) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजि।

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म.....ई0 में हुआ था।
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने.....पत्रिका का संपादन किया।
3. प्रियप्रवास महाकाव्य के रचयिता.....हैं।
4. 'भारत-भारती'.....बोध की रचना है।
5. मैथलीशरण गुप्त.....शाखा के अंतर्गत आते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

क) सत्य/असत्य बताइए।

1. साकेत के रचनाकार महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं।
2. यशोधरा हरिऔध जी की रचना है।
3. 'भारत-भारती' राष्ट्रीय भाव बोध की रचना है।
4. इतिवृत्तामकता द्विवेदी युगीन कविता की विशेषता है।
5. दिवस का अवसान समीप था 'पंक्ति मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचना है।

9.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि –

- 'द्विवेदी युग' नामकरण के मूल में महावीर प्रसाद द्विवेदी का रचनात्मक व्यक्तित्व रहा है, जिसने हिंदी कविता को एक नयी दिशा दी।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी युगप्रवर्त्तक साहित्यकार थे। उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने साहित्य को सामंती चरित्र से मुक्त कर उसे आधुनिकता की ओर बढ़ने की दिशा प्रदान की।

- महावीर प्रसाद द्विवेदी ने व्याकरण सम्मत सुधार कर भाषा को साहित्यिक रूप प्रदान किया।
- द्विवेदी युग का साहित्य व्यापक रूप से नवजागरणवादी चेतना के तले रचा गया है। इस नवजागरण को सांस्कृतिक बोध एवं राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति से भली-भाँति समझा जा सकता है।
- द्विवेदी युगीन कविता की मुख्य प्रवृत्ति राष्ट्रीयता, समाज सुधार, नवजागरणवादी चेतना एवं इतिवृत्तात्मकता रही है।
- द्विवेदी युगीन साहित्य को उत्कर्ष प्रदान करने वाले कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरऔध, तथा मैथिलीशरण गुप्त प्रमुख हैं।

9.8 शब्दावली

- नवजागरण – अतीत के गौरव का रचनात्मक स्मरण
- इतिवृत्तात्मकता – द्विवेदी युगीन कविता की विशेषता, कविता का गद्यावत होना।
- रीतिकालीन संस्कार – श्रृंगार-स्तुति जैसे मनोभावों की प्रचुरता
- आधुनिक प्रवृत्ति – नवीन वस्तु, विचार को सृजित करने वाला व्यक्तित्व

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन
2. शुक्ल, रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा
3. नगेन्द्र, डॉ – हिंदी साहित्य का इतिहास (सं0), नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
4. सिंह, बच्चन – हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन

9.10 संदर्भ प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1) क)

1. 1864 ई0 2. सरस्वती 3. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

4. राष्ट्रीय 5. रामभक्ति शाखा

अभ्यास प्रश्न 2) क) 1. असत्य **2**. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, रामविलास, - महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण

2. सिंह, उदयभानु – महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य किन दृष्टियों से महत्वपूर्ण है **?** विवेचन कीजिए।

2. द्विवेदी युग की काव्य-प्रवृत्तियॉं स्पष्ट कीजिए।

10. **छायावाद : परिचय एवं मूल्यांकन**

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 छायावाद

10.3.1 परिभाषा

10.3.2 मत-मतान्तर

10.4 प्रवृत्ति

10.4.1. व्यक्तिवाद

10.4.2 जिज्ञासा व रहस्य

10.4.3 प्रेम व प्रकृति

10.4.4 रुढियों से मुक्ति

10.4.5 नवजागरण का काव्य

10.4.6 व्यक्ति सत्य व शाश्वत बोध के द्वंद्व की कविता

10.4.7 भाषा और शैली

10.5 छायावाद का मूल्यांकन

10.5.1 छायावाद : आलोचकों की नज़र से

10.5.2 छायावाद का प्रदेय

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

काव्यान्दोलन के सन्दर्भ में प्रासंगिकता के प्रश्न को जड़-जीवन संवेदनाओं के बीच लेखक की रचनात्मक उपस्थिति के रूप में देखा जाता है. किन्तु साहित्य में प्रासंगिकता हर बार अपना अर्थ विस्तार करती है...वैविध्य उत्पन्न करती है. छायावादी साहित्य ने हमें कविता को आधुनिक (पूरी तरह नहीं) सन्दर्भ दिया या प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के आधार के रूप में या कविता में राग, लय कैसे उत्पन्न करें, यह सीखने की तमीज़ दी या कविता में 'भावात्मक औदात्य' के लिए या यह सीखने के लिए कि 'साहित्यिक आन्दोलन के बीच कविता के विकास की परिणति' किस प्रकार होती है या साहित्यिक आन्दोलन के नेतृत्वकर्ता के बीच कवि के अपने विकास की दृष्टि से ...या अन्य कुछ कारण भी हैं? जिनके कारण छायावादी कविता को देखना काम्य हो सकता है. आज छायावादी कविता को पढना 'बौद्धिक उत्तेजना' उत्पन्न नहीं करता, जैसा कुछ दशक पूर्व किया करता था. आज छायावादी कविता पढ़ते समय लगता है कि हम बहुत पुरानी कविता पढ़ रहे हों, ऐसा आभास प्रगतिवादी, प्रयोगवादी या नयी कविता को पढ़ते समय नहीं होता; किन्तु छायावाद या छायावाद से पूर्व तक की कविता पढ़ते समय ऐसा ही लगता है. प्रश्न है कि ऐसा क्यों होता है कि हम छायावादी कविता मात्र 'भाव की थिरता' के लिए पढ़ते हैं, किसी बौद्धिक उत्तेजना के लिए नहीं? कारण की तलाश बहुत कठिन नहीं है. छायावादी कविता ने हमारे मस्तिष्क को आधुनिक बनाया, अपनी कीमत पर. मेरी बात शायद आगे स्पष्ट हो. यहाँ हम मात्र इस संकेत से आगे बढ़ जाना चाह रहे हैं कि कालिदास या दूसरे संस्कृत कवियों की हजारों वर्ष प्राचीन कविता पढ़ कर भी हमें यह नहीं लगता कि ये बहुत प्राचीन मनोवृत्ति की कवितायेँ हैं, किन्तु ऐसा छायावादी कविता को पढ़कर लगता है. ऐसा क्यों? छायावादी कविता 'मनोभावों को टाइप्ड' रूप में तैयार करती है...'मनोभावों को व्यैक्तिक' रूप प्रदान करती है; यह काम संस्कृत या कोई दूसरी हिन्दी कविता नहीं करती. संस्कृत कविता अपनी संरचना में प्राचीन है, उसकी वैचारिकता सामंती मूल्य हैं या भक्तिकालीन कविता सामंती औदात्य मूल्यों से आच्छादित है, किन्तु अपनी 'कहन शैली' की 'सार्वभौमिक छवि' के कारण वह आज भी हमारी बौद्धिकता को तृप्त करती है, किन्तु यह काम छायावादी कविता नहीं करती. छायावादी कविता हमारे भाविक अंतर्छावियों के तृप्ति की कविता है. अत: छायावादी कविता की प्रासंगिकता के प्रश्न को ठीक उसी प्रकार नहीं देखा जाना चाहिए जैसा कि क्लासिक या आधुनिक कविता को देखा जाता है. इस संक्षिप्त प्रस्तावना के बाद हम अपने मूल बिंदु पर लौटते हैं कि छायावादी कविता और छायावादी आलोचना की उत्पत्ति के बिंदु कौन-से हैं? या छायावादी आलोचना के उर्जा-श्रोत क्या हैं?

छायावादी काव्यान्दोलन हिंदी कविता में एक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक अभ्युदय तो था ही किन्तु उससे ज्यादा आधुनिक कविता...आधुनिक कवि का पहला महत्वकांक्षी प्रयास था. भारतेंदु , द्विवेदी युग का साहित्य भी एक गतिशील परंपरा का साहित्य था, किन्तु किसी कवितान्दोलन के साथ ही उसकी सैद्धांतिकी गढ़ने-बनाने की दृष्टि से छायावादी आन्दोलन हिन्दी का प्रथम काव्यान्दोलन था. भारतेंदु युग, द्विवेदी युग में भी भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व केन्द्रीय रूप में स्थापित था, किन्तु 'उनकी कविता से ज्यादा उनका युग प्रभावी' था. छायावादी कवियों का रचनात्मक व्यक्तित्व उनके युग पर हावी था. इस ढंग से छायावादी कवियों का रचनात्मक व्यक्तित्व हिंदी कविता की अपनी गति से आगे या बढ़ा हुआ था. क्या यह विरोधाभासी कथन होगा कि छायावादी कवि अपने युग के दबाव से मुक्त थे? नहीं हम ऐसा नहीं कह सकते. 'हर युग का साहित्य व साहित्यकार अपने युग की सम्भावना के निचोड़ होते' हैं, जैसे कथा साहित्य में प्रेमचंद का आगमन या नाटक में प्रसाद का आगमन या आलोचना में रामचंद्र शुक्ल का आगमन ... . उसी प्रकार क्या छायावादी कवियों का रचनात्मक आगमन भी था? छायावादी कविता को लेकर इतने भ्रम-अनिश्चय की स्थिति बन गयी है, क्योंकि इसकी सूक्ष्मता इसे सामाजिक – राजनीतिक दृष्टि से परंपरा का विकास सिद्ध करने में बाधक होती है तो छायावादी कविता में ऐसी विचित्रता थी कि

यह आलोचकों के लिए उलझन का विषय बन गयी. एक ओर यह पश्चिमी काव्यान्दोलन से प्रभावित है तो दूसरी ओर बंगला कविता के प्रभाव को भी धारण किये हुए है. एक ओर यह आधुनिक कविता भी है तो दूसरी ओर परंपरा व दर्शन से गहरे प्रभावित भी. एक ओर यह 'हृदय की कविता' है तो दूसरी ओर 'बुद्धि के औदात्य' की भी.. . एक ओर यह 'अमूर्तता को धारण' किये हुए है तो दूसरी ओर 'नवजागरण से गहरे प्रभावित' भी.. . यानी विचित्र ढंग से छायावाद अपनी व्याप्ति में इतनी संभावनाओं को समेटता काव्यान्दोलन था कि इसके प्रारंभ और व्याप्ति को लेकर एका नहीं बन पाई.

10.2 उद्देश्य

विद्यार्थियों! इस इकाई में आप छायावाद और उसकी मुख्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे.

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप हिंदी कवितान्दोलन के बरक्श छायावादी कवितान्दोलन को समझ सकेंगे.

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप छायावाद के प्रमुख कवियों से परिचित हो सकेंगे.

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप छायावाद की प्रमुख विशेषताओं से परिचय प्राप्त कर सकेंगे.

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप छायावादी आलोचना से परिचित हो सकेंगे.

10.3 **छायावाद**

10.3.1 परिभाषा

रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में छायावाद शब्द के प्रयोग को दो अर्थों में स्वीकार किया है। एक रहस्यवाद के अर्थ में तथा दूसरा प्रयोग काव्यशैली तथा पद्धति विशेष के अर्थ में। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी छायावादी कविता में रहस्य व अस्पष्टता को रेखांकित किया। एक जगह उन्होंने लिखा है-"छायावादी कवि कुछ कह रहे हैं। यह सुनाई तो पड़ता है। किंतु क्या कह रहे हैं, यह समझ में नहीं आता"। इसी प्रकार एक जगह उन्होंने छायावाद का अर्थ उन्होंने छाया के अर्थ में ग्रहण किया। डॉ नगेन्द्र ने छायावाद को "स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा। इसी संदर्भ में नन्ददुलारे बाजपेयी ने लिखा है-"मानव अथवा प्रकृति में व्यक्त आध्यात्मिक छाया का भान मेरे हिसाब से छायावाद की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा हो सकती है"। इस प्रकार ह। देखते हैं कि छायावाद को हर आचार्य ने अलग-अलग ढंग से ग्रहण किया है। इसी कारण अपनी पुस्तक छायावाद में नामवर सिंह ने इन सब का समन्वय करते हुए **1918** से **1936** के बीच चले हिंदी काव्यान्दोलन के रूप में स्मरण किया।

छायावाद का आंदोलन हो या कोई और कवितान्दोलन, उसे किसी परिभाषा में नहीं बांधा जा सकता। कारण यह कि किसी भी परिभाषा से किसी एक प्रवृत्ति को ही पकड़ा जा सकता है, जबकि काव्यान्दोलन में अनेक प्रवृत्तियों का संगुम्फन होता है।

10.3.1 मत-मतान्तर

किसी काव्यान्दोलन के प्रारंभ और समापन को लेकर इतना विवाद या चर्चा नहीं हुई, जितना कि छायावादी आन्दोलन को लेकर हुआ. प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अ-कविता, मोहभंग की कविता, जनवादी कविता...की समाप्ति या प्रारंभ को लेकर 'छायावाद' की तरह कौतुक की सृष्टि नहीं हुई. उपरोक्त आन्दोलनों को यह मानकर कि वे ऐतिहासिक गति-क्रम में उत्पन्न हुए और उसी से समाप्त हो गए, के तर्क से छायावाद को कई बार

अलग ढंग से देखा गया. छायावादी काव्यान्दोलन के प्रारंभ और समापन को एक बड़ी साहित्यिक घटना के रूप में देखा गया. यह छायावाद की विशिष्टता के कारण हुआ. छायावाद की समाप्ति से एक प्रकार से साहित्य में महाविताn/महाख्यान की समाप्ति भी हुई. छायावादी काव्यान्दोलन के बाद मिथक को लेकर अनेक महत्वपूर्ण कवितायेँ लिखी गयीं, किन्तु उनमें एक खास मनोवृत्ति को पकड़ने का प्रयास हुआ, उनमें सभ्यता के विमर्श महाख्यान के रूप में न आये...मुक्तिबोध का प्रयास इस ढंग से उल्लेखनीय है. छायावादी कवि ही छायावाद की समाप्ति की घोषणा करे (देखें युगांत में पन्त की घोषणा) , यह तथ्य इस बात का संकेत है कि छायावादी कवि अपने ऐतिहासिक दायित्व के प्रति कितने सजग थे.

छायावादी कविता में 'प्रश्न' और 'जिज्ञासा' है. वैसे ही उसमें प्रश्नवाचक और विस्मयादिबोधक चिह्न भी हैं; खासतौर से पन्त की कविता में. इस प्रकार का विस्मय वैदिक कविता में भी है...यानी संस्कृति के प्रारंभ के साहित्य में इस प्रकार का कौतूहल होता है. तो क्या छायावादी साहित्य पीछे की ओर जा रहा था? या छायावाद किसी नवीन सभ्यता का प्रारंभ है? कोई भी सभ्यता जब प्रारम्भिक अवस्था में होती है तो साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति जिज्ञासा और कौतूहल में होती है. अर्थात एक, तो छायावाद से हिन्दी कविता पुराने केंचुल छोड़ रही है तो दूसरी ओर छायावाद ने जिज्ञासा-कौतूहल को 'रचनात्मक टेक्नीक' बनाया. जिज्ञासा यहाँ बौद्धिक बाध्यता नहीं है, भावनात्मक बाध्यता है. रोमैंटिक कविता में 'अतिरिक्त जिज्ञासा' का भाव उत्पन्न करना उसकी एक रचनात्मक टेक्नीक होती है. वैदिककाल से लेकर रीतिकाल तक का समय सामंती मनोरचना का समय है. इसके बाद हिंदी कविता नवजागरण (सांस्कृतिक) से प्रभावित है, किन्तु कविता में इसका प्रारंभ छायावादी कविता से हुआ. इस प्रकार छायावादी कविता पूंजीवादी समाज के उत्कर्ष कल का आन्दोलन है. किन्तु इस आन्दोलन में 'बुद्धि' और 'हृदय' का द्वंद्व भी कम नहीं है. इस ढंग से एक ओर छायावाद 'बुद्धिवाद के उत्कर्ष' को सामने लाता है किन्तु दूसरी ओर पुराने जीवन मूल्य भी इसमें कम नहीं हैं.

छायावादी काव्यान्दोलन बहुधा लोगों को 'अस्पष्ट' लगता है. इस अस्पष्टता के कुछ ठोस कारण हैं. छायावाद में अस्पष्टता का आना 'कथ्यगत' या 'रहस्यात्मक' होने के कारण नहीं है, बल्कि इसका कारण खुद 'छायावादी कवियों के भीतर का आंतरिक द्वंद्व' है. सिद्ध कवियों के संध्या भाषा, कबीर की ऊलटबांसी , सूर के कूट पद अपने जटिल विधान के बावजूद अस्पष्ट नहीं हैं. वे दुर्बोध हैं किन्तु अस्पष्ट नहीं हैं. अस्पष्टता का कारण छायावादी कवियों का अपने कथ्य की अभिव्यक्ति में संकोच है न कि कथ्य के प्रति अज्ञानता. इस दृष्टि से छायावादी कविता को पढने की तमीज यह होनी चाहिए कि हम इसे मात्र सौन्दर्य-प्रेम की कविता के रूप में न पढ़ें , मात्र प्रकृति काव्य के रूप में न देखें, मात्र रोमैंटिक आन्दोलन के रूप में न देखें, अपितु इसे साभ्यतिक वैचारिक परिवर्तन के रूप में देखें, तभी छायावादी कविता का मर्म हमारे सामने खुल पायेगा.

छायावादी काव्यान्दोलन मूल रूप से नवजागरण का साहित्यिक रूपांतरण व उत्कर्ष था. नवजागरण का केंद्र बिंदु सांस्कृतिक-आध्यात्मिक-चेतनागत होता है. सामजिक जागरण इसी का अगला चरण है. चेतना का विकास जब सौन्दर्य से आवृत्त होता है, तब छायावादी काव्यान्दोलन की सृष्टि होती है. यानी मूल रूप से यह नवजागरण का साहित्यिक रूपांतरण तो है ही, साथ ही प्राचीनता-नूतनता के द्वंद्व से युक्त भी है. साहित्य में सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण नया नहीं है. वाल्मीकि से लेकर कालिदास तक और आगे भी लम्बी परंपरा रही है. किन्तु पूर्व के सौन्दर्य चित्र और छायावादी सौन्दर्य चित्रों में प्रमुख अंतर यह है कि छायावादी सौन्दर्य आधुनिक जीवन-दर्शन से आप्लावित है. छायावाद का प्रेम पूंजीवादी-बौद्धिक प्रेम है, जिसमें भाव और बुद्धि का द्वंद्व प्रमुखता से रेखांकित है.)

छायावाद और भ्रम

छायावाद को लेकर हिन्दी आलोचना में इतने भ्रम-संशय है कि कई बार लगता है कि ये आलोचनाएँ न होतीं तो संभवतः छायावादी साहित्य पाठकों को ज्यादा अच्छे प्रकार से समझ में आता. यानी छायावादी आलोचना ने छायावाद को समझने में सहयोगी की भूमिका कम निभाई, उलझाव ज्यादा पैदा किया. आज भी हिन्दी के किसी विद्यार्थी से आप छायावाद की परिभाषा पूछें तो वह डॉ नगेन्द्र की परिभाषा- "छायावाद स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह है" ही बतायेगा. किन्तु यह स्थूल क्या था? यह स्थूल द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता मात्र न थी. क्या छायावाद से पूर्व की सभी कृतियाँ इतिवृत्तात्मक थीं? डॉ देवराज जी ने प्रश्न उठाया है- 'भारत-भारती' को इतिवृत्तात्मक कृति कह सकते हैं. किन्तु क्या 'हरिऔध' का 'प्रियप्रवास' अथवा गुप्त जी का 'जयद्रथ वध' भी इतिवृत्तामक कृतियाँ हैं? हम ऐसा नहीं समझते. और यदि हमारी यह सम्मति ठीक है तो द्विवेदी युग के समस्त काव्य को इतिवृत्तात्मक कैसे कहा जा सकता है? (पृष्ठ 77, छायावाद: उत्थान,पतन ,पुनर्मूल्यांकन) यहाँ 'स्थूल' से यदि हम दूसरा अर्थ लें कि छायावाद से पूर्व व्यक्तिक भावनाएं , भाषा का कल्पनात्मक प्रयोग , स्त्री-प्रकृति का आलाम्वित रूप, कविता और दर्शन की सूक्ष्म व्याखाएं बाधित थे और छायावादी कविता ने इसकी प्रतिक्रिया की. द्विवेदी युगीन कविता 'नैतिक कविता' थी, जिसकी नैतिकता ईश्वरोंमुखी सामंती मूल्यों से संचालित थी, इसलिए पश्चिमी प्रभाव, रवीन्द्रनाथ का अंतर्राष्ट्रीयतावाद, नवजागरण की सांस्कृतिक चेतना तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से संभावित (सम्पूर्ण रूप से युक्त नहीं) छायावादी कविता को द्विवेदी युग एवं पूर्व की कविता से प्रतिक्रिया करना ही था. डॉ देवराज जी ने लिखा है- "छायावाद अनाधुनिक पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह था" (पृष्ठ 78, वही). द्विवेदी युग तक की कविता और छायावाद तक की कविता के एक अंतर को देखना हो तो दोनों काव्यान्दोलनों में आये नायकों के स्वरुप की तुलना कर लें. मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध के नायकों के साथ पन्त, निराला, प्रसाद के नायकों को को देखें तो स्पष्ट रूप से आप महसूस करेंगे कि छायावाद ने पौराणिक नायकों के स्थान पर ऐतिहासिक नायकों को स्थापित किया. छायावाद के बारे में एक बड़ा भ्रम है भी है कि इसके नायक-नायिका वायवी हैं, अर्थात बादल,वर्षा, नदी, रजनी....आदि, किन्तु सम्राट एडवर्ड अष्टम ,मार्क्स, गांधी, अरविन्द , विवेकानंद ...से लेकर अनेक भारतीय नायक इसके केंद्र में रहे हैं. किन्तु छायावाद का एक अंतर्विरोध या कहें कि ऐतिहासिक गति का एक पड़ाव यह रहा कि छायावाद पूरी तरह से आधुनिक काव्य नहीं बन सका है. छायावाद में 'आधुनिकता का प्रकाश' है, 'आभा' है, 'दर्शन' है, किन्तु 'जीवन यथार्थ' नहीं है.प्रसाद की मूल चेतना 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' के इर्द-गिर्द धूमती रही है तो निराला के ऊपर वेदांत का प्रभाव रहा है. महादेवी के ऊपर बौद्ध दर्शन का पर्याप्त प्रभाव रहा है. हाँ इस ढंग से सुमित्रानंदन पन्त जरुर मार्क्सवाद, अरविन्द और रवीन्द्रनाथ के दर्शन-मान्यताओं से प्रभावित रहे हैं. नंददुलारे बाजपेयी जब छायावाद को 'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान' (हिन्दी साहित्य:बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ 163) को छायावाद की सर्वमान्य परिभाषा बताते हैं तो वे छायावाद को उसी 'फ्रेम' में 'फिट' कर रहे होते हैं जिसमें महावीर प्रसाद द्विवेदी , प्रसाद जी उसे 'फिट' करने का प्रयास कर चुके होते हैं. छायावादी कवियों का अध्यात्म वैचारिक था, उनके जीवन का सत्य न था. महादेवी वर्मा का 'रहस्यवाद' (वैसे हम इसे रहस्यवाद नहीं समझते) भी वैचारिक है, उनका 'अनुभूतिगत सत्य' नहीं है. वस्तुतः छायावादी 'रहस्यवाद' या 'आध्यात्मिकता' की अपनी पृष्ठभूमि है. हमने ऊपर कहा कि छायावाद विचित्र ढंग से 'सामंती और वैज्ञानिक चेतना के बीच का काव्य' है, इसलिए यह अपनी सौन्दर्य चेतना को व्यक्त करने के लिए आध्यात्मिकता/छाया का आधार ग्रहण करता है, ठीक वैसे ही जैसे भक्तिकालीन कवि समाज को व्यक्त करने के लिए ईश्वर का आधार ग्रहण करते हैं.

छायावादी कवि जब काव्य-क्षेत्र में आये तब भाव या कहें कि श्रद्धापूर्ण भाव की प्रबलता थी, जिसमें तर्क के लिए कम-से-कम जगह थी. पन्त की कविता को देखें, खासतौर से 'गुंजन' और 'पल्लव' की कविता को; उसमें विस्मय और प्रश्नवाचक चिह्नों की भरमार है. कविता अब बुद्धि और तर्क से युक्त हो रही है, किन्तु उसमें विस्मय भी है. यह

विस्मय सामंती मूल्य चेतना और आधुनिक चेतना के द्वंद्व से सृजित हुआ है. यही छायावादी कविता का ऐतिहासिक-गति क्रम है. नंददुलारे बाजपेयी जी ने निराला काव्य में आये बुद्धि-तत्व को विशेष रूप से रेखांकित किया है.

छायावाद और रहस्यवाद

छायावादी भ्रम के निराकरण के प्रसंग में कुछ बातें रहस्यवाद के सन्दर्भ में करनी आवश्यक है. छायावादी कवि रोमांटिक हैं, रहस्यवादी/मिस्टिक नहीं. उपनिषद का ऋषि जब कहता है- 'वेदाहमेतं ('अहम वेद एतम' – मैं इसे जानता हूँ) तो वह रहस्यवाद है, यानी परम सत्ता से साक्षात्कार. रोमैंटिक आन्दोलन व छायावाद में परम सत्ता का साक्षात्कार नहीं है, उसका आभास है. यहाँ विषयांतर करते हुए रोमैंटिक अवधारणा की पश्चिमी व्याख्या को देखना उचित प्रतीत होता है. पश्चिम में क्लासिक और रोमैंटिक विचारधारा का लम्बा द्वंद्व रहा है. भारत में दोनों वृत्तियों का अद्भुत समन्वय रहा है. कालिदास एक साथ रोमैटिक व क्लासिक दोनों है. अंगरेजी के विद्वान प्रोफ़ेसर श्रीनिवास आयंगर ने राम को क्लासिक नायक व कृष्ण को रोमैंटिक नायक कहा है, किन्तु ध्यानपूर्वक देखें तो ये दोनों विष्णु के अवतार है. कहने का अर्थ यह कि भारतीय परंपरा में रोमैंटिक वृत्तियों को क्लासिक के अंतर्गत समेट लेने का चलन रहा है. आइए इस सन्दर्भ में एक पश्चिमी लोकख्यात कथा का आश्रय लेकर अपनी बात आगे बढ़ाएं. रोमैंटिक परंपरा और क्लासिक के द्वंद्व को पश्चिमी परंपरा में एडम-ईव के आख्यान में देखा गया है. एडम-ईव का शैतान के उकसाने पर फ़ल खाना और स्वर्ग से बहिष्कृत होना, नर और नारी होने का स्व-बोध, संतान की उत्पत्ति और उसे पाप का मूल और ज्ञान का फ़ल के रूप में देखना क्लासिक वृत्ति का मूल है. 'स्व' के ज्ञान , उत्पत्ति ने मनुष्य को 'ओरिजनल सिन' या 'सिनर' /पापी के रूप में देखा... और इसके उपचार क्रम में संयम, नियंत्रण, प्रभु, चर्च एवं परम्परा का सम्मान तथा उनके समक्ष समर्पण की अवधारणा सामने आयी. क्लासिक अवधारणा मानती है कि मनुष्य पापी है, अपूर्ण है. इसलिए उसे नियम व शास्त्रीय विधानों के अनुसार चलना चाहिए. रोमांटिसिज्म के दार्शनिक रूसो ने इस विधान को इंकार किया. रूसो ने कहा 'मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ, किन्तु वह हर जगह बेड़ियों में जकड़ा हुआ है'. यह बेड़ियाँ परंपरा, समाज, शास्त्र की बेड़ियाँ हैं. इसीलिए रोमैंटिक व्यक्ति/ कवि जो अदृश्य, परोक्ष है, उसे देखता है, जबकि क्लासिक कवि –जो है, उसका वर्णन करता है. इसीलिये रोमैटिक कविता में कल्पना, स्वप्न अनिवार्य व महत्वपूर्ण होते हैं. आध्यात्मिक भाव, अमूर्त भाव –प्रेम, करुणा, दया, उदारता...रोमैंटिक के लिए मूल्यवान हो जाते हैं. हृदय के भाव , हृदय की सत्ता रोमैंटिक व्यक्ति व कविता के लिए सार्थक हैं.

रोमैंटिक आन्दोलन के कवियों- ब्लेक, वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स- ने इसीलिये सत्ता के प्रतीक चर्च को नहीं माना. चर्च के ईश्वर को नहीं माना. ईश्वर की अपनी खोज प्रारंभ की. वर्ड्सवर्थ को परम सत्ता की प्रतीति प्रकृति में –नदी, बादल, झील, झरने में हुई. शेली शक्ति का उपासक है. पूरे ब्रह्माण्ड में हर जगह गतिमान परम सत्ता का आभास उसे प्रकृति की गत्यात्मकता में हुआ. 'ओड टू द वेस्ट विंड, 'स्काई लार्क' में वह गति में परम सत्ता को देखता है. जॉन कीट्स ब्यूटी/ सौन्दर्य में ही परम सत्ता को देखता है. ब्लेक इस ढंग से रहस्यवादी है. उसे प्रकृति के कण-कण में ईश्वर, चेतन-अचेतन का आभास होता है. यानी रोमैंटिक कवि अदृश्य लोक में आस्था रखता है, इसीलिये इस प्रकार की कविता में कल्पना की उड़ान मिलती है. किन्तु इस तथ्य को भी समझे जाने की आवश्यकता है कि रोमैंटिक को परमसत्ता का आभास है, साक्षात्कार नहीं. वर्ड्सवर्थ, कीट्स अपने विजन को डाउट/संदेह में समाप्त करते हैं. संदेह दुविधा का ही दूसरा नाम है.कीट्स के 'नाईटेंगल' में परमसत्ता रूपी बांसुरी की घुन बजती सुनाई पड़ती है, किन्तु अपनी तन्मयता के अंतिम क्षणों में उसे लगता है कि कहीं यह सपना तो नहीं था. इसी प्रकार वर्डसवर्थ को एक कविता 'टिंटर्न ऐनी' में ईश्वर के साक्षात्कार से ताकत मिलती है, किन्तु तभी वह कहता है-अगर यह कोरा विशवास हुआ तो .... स्पष्ट है कि रोमैंटिक कवि एक संदेह, दुविधा की सृष्टि करता है. आभास ऐसा ही होता है. रवीन्द्रनाथ को ईश्वर का साक्षात्कार नहीं आभास है. शिशिर कुमार घोष ने कहीं टिप्पणी की है-रवीन्द्र नाथ उस विरहिणी के

समान हैं जो दिन-रात ईश्वर को पुकारा करती है, किन्तु जब ईश्वर आकर कहते हैं कि चलो मेरे साथ चलो तो वह कहते हैं 'नहीं यहीं ठीक हूँ' . कहने का अर्थ यह है कि छायावादी कविता के संदेह, दुविधा को भी इसी ढंग से देखे जाने की आवश्यकता है.

रहस्यवाद का अध्यात्म और रोमानीपन से गहरा नाता है.आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'अज्ञात के प्रति जिज्ञासा का भाव' को रहस्यवाद कहा था. हम इसे अज्ञात के प्रति तादात्म्य को रहस्यवाद कहेंगे. तो यह अज्ञात परम सत्ता भी हो सकती है और कोई विचार, व्यक्तित्व भी. जहाँ अज्ञात परम सत्ता का बोधक है, वहां अध्यात्म है और जहाँ अज्ञात प्रिय या चेतना की बोधक है, वहां छायावाद है. वैसे अध्यात्म और रोमैनटीसिजम किसी बिंदु पर जाकर मिल जाते हैं. कबीर , सूफी कविता या मीरा की कविता को देखें...अपनी तन्मयता के क्षणों में अध्यात्म किस प्रकार रोमानी हो चला है.इसीलिये तो भक्त और प्रेमी की दशा एक समान हो जाती है. विरह का यह द्वैत एक रहस्यवाद को जन्म देता है. छायावादी 'रहस्यवाद' को समझना है तो अध्यात्म और प्रेम दोनों को समझना होगा, ठीक उसी प्रकार जैसे छायावाद को समझने के लिए भारतीय चिंतन परंपरा और पाश्चात्य चिंतन परंपरा दोनों को समझना अनिवार्य है. बहुत पहले भोलाशंकर व्यास जी ने टिप्पणी की थी-'छायावाद तक के साहित्य को समझना है तो हमें भारतीय दर्शन, चिंतन परंपरा को समझना अनिवार्य है और छायावाद के बाद के साहित्य को समझना है तो हमारे पास पाश्चात्य, चिंतन-दर्शन का ज्ञान अनिवार्य रूप से होना चाहिए. आचार्य व्यास की टिप्पणी हमें एक संकेत करती है. छायावाद इस ढंग से निर्णायक बिंदु है. यहाँ हम व्यास जी के मतों में आंशिक सुधार करना चाहेंगे.छायावाद के पूर्व या बाद के भेद की बजाय हमें इस ढंग से देखना होगा कि छायावाद में पूर्व और पश्चिम –भारतीय और पाश्चात्य चिंतन परंपरा दोनों का संयोजन है.

10.4 छायावादी कविता: प्रवृत्ति

छायावादी काव्यान्दोलन का आधुनिक हिंदी साहित्य में विशिष्ट योगदान है। छायावादी कविता को भक्ति कविता के बाद सर्वश्रेष्ठ हिंदी कविता का सम्मान भी प्राप्त है। इसका कारण यह है कि छायावादी कविता अपने युग में एक बड़े दायित्व का निर्वहन कर सकी है। इस कवितान्दोलन की विशिष्टता यह रही है कि इसके बाद हिंदी कविता आधुनिकता के धरातल पर गतिशील हो सकी है।

छायावादी कविता की आंतरिक विशेषताओं के कारण ही उसे आधुनिक हिंदी कविता में शीर्ष स्थान प्राप्त है। यहां हम संक्षेप में छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे।

10.4.1 व्यक्तिवाद

व्यक्तिवाद आधुनिक जीवन की विशेषता है। आधुनिकता ने व्यक्ति सत्य की घोषणा की। सामंतवाद में सामूहिकता पर बल था। सामूहिक सत्य में व्यक्ति सत्य स्थगित हो जाता है। आधुनिक जीवन मूल्यों ने व्यक्ति सत्य की प्रतिष्ठा की। स्मरण रहे कि छायावादी कविता का व्यक्ति सत्य प्रयोगवाद व नई कविता के व्यक्तिवाद से भिन्न है। छायावाद के समय तक पूंजीवाद अपने प्रारंभिक दौर में था। अर्थात विकास की अवस्था में था। एक दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह था कि छायावादी काव्यान्दोलन रोमैंटिसिज्म को लेकर चला था। रोमैंटिसिज्म में व्यक्ति सत्य को प्रमुखता मिले, यह स्वाभाविक है। निराला ने लिखा है-" मैंने मैं शैली अपनाई"। पंत ने लिखा-" वह बालिका मेरी मनोहर मित्र थी"। भावी पत्नी के प्रति, जूही की कली आदि कविताओं में तथा महादेवी वर्मा की कविताओं में व्यक्ति की निजी अनुभूतियों का प्रकाश है। मैं नीर भरी दुःख की बदली, मैं राग भी हूँ, रागिनी भी हूँ, जैसी कविताएं व्यक्ति सत्य की उद्घोषणाएं हैं।

10.4.2. जिज्ञासा व रहस्य

छायावादी कविता की दूसरी प्रमुख विशेषता जिज्ञासा व रहस्य की अभिव्यक्ति है। यह वही विशेषता है, जिसके कारण छायावाद पश्चिम के रोमैंटिसिज्म या रोमैंटिक आंदोलन से भिन्न हो जाता है। पश्चिम के रोमैंटिक आंदोलन में जिज्ञासा तो है किंतु रहस्य की ऐसी गाढ़ी परत नहीं है। ब्लेक जैसे कवियों में रहस्य तो है, किन्तु छायावाद की तरह उसमें धुंधलापन नहीं है।

हर रोमानी कविता में जिज्ञासा होती है। देख लूं उस पार क्या है, वाली मनोवृत्ति जिज्ञासा ही है। यह जिज्ञासा रोमैंटिक कविता का प्रमुख लक्षण है। इस पार प्रिये तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा, इस प्रकार की मनोवृत्ति छायावाद में बड़ी गहराई से दर्ज़ हुयी है।

छायावादी कविता के साथ एक बड़ी समस्या यह रही कि छायावादी कवियों ने अपनी जिज्ञासा के ऊपर एक अस्पष्टता का आवरण डाल दिया, जिसके कारण छायावादी कविता रहस्यवादी कविता की तरह पढ़ी जाने लगी। वास्तव में हर रोमैंटिक कविता की तरह छायावादी कविता भी जिज्ञासापरक कविता है।

10.4.3 प्रेम व प्रकृति

रोमानी कविता का एक लक्षण प्रेम की गहरी अनुभूति व उसकी अभिव्यक्ति होती है। हिंदी साहित्य में अपने प्रेम पर बात करना पहली बार हो रहा था। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा जैसे छायावादी कवियों ने सुंदर प्रेम कविताएं लिखीं। आधुनिक जीवन सत्य में व्यक्ति सत्य की प्रतिष्ठा होती ही है। इस ढंग से छायावादी कविता में निज प्रेम की सार्थक अभिव्यक्ति हुई।

छायावाद में सुमित्रा नंदन पंत तो प्रारंभ से ही प्रकृति के प्रति मोह (बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लोचन/ छोड़ अभी से इस जग को) जैसी कविताएं लिख ही रहे थे। छायावाद के अन्य कवियों ने भी प्रकृति के ऊपर महत्वपूर्ण कविताएं लिखीं। नदी, तालाब, झरना, पर्वत, समुद्र, पेड़, पक्षी आदि पर हिंदी कविता में पहली बार इतनी संख्या में कविताएं लिखी गईं। निराला ने लिखा है-

घर की लघुसीमा में

बंधें हैं मेरे क्षुद्र विचार

प्रेम का पयोनिधि तो

उमड़ता है निःसीम भू पर।

छायावाद में प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टि अपनाई गई। छायावाद से पहले प्रकृति आलंबन या उद्दीपन रूप में आई है। किंतु छायावाद ने उसे आश्रय बनाया। छायावाद में प्रकृति को लेकर इसी आत्मीयता के कारण मानवीयकरण अलंकार ही चल पड़ा। यह छायावाद की अपनी उपलब्धि रही।

10.4.4 रूढ़ियों से मुक्ति

प्रत्येक रोमैंटिक कविता सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति के तहत अभिव्यक्त होती है। रूढ़ियों से मुक्ति यहां दो स्तरों पर होती है। एक, व्यक्तित्व के स्तर पर। दूसरे, सामाजिक रूढ़ियों के मुक्ति के स्तर पर। रोमैंटिक कविता में व्यक्ति सत्य के आलोक में समाज को देखने पर बल होता है, जबकि क्लैसिक कविता में समाज के संदर्भ में व्यक्ति को देखने की कोशिश की जाती है। यही कारण है कि स्वच्छन्दतावादी कविता में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह हमेशा देखने को मिलता है। निराला ने मुक्त छंद का प्रवर्त्तन किया। निराला ने इसे कविता की मुक्ति घोषित किया। छायावादी

कविता एक ओर पुरानी काव्य पद्धति से टकरा रही थी तो दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियों पर प्रश्न चिह्न भी खड़ा कर रही थी। इस रूढ़ि मुक्ति को कविता के कथ्य, भाषा-शिल्प में नवीनता और नवीन दृष्टि में खोजा जा सकता है।

10.4.5 नवजागरण का काव्य

छायावादी साहित्य नवजागरण की उपज था। रामविलास शर्मा ने छायावादी साहित्य को नवजागरण के संदर्भ में ही याद किया है। नवजागरण दो संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न वैचारिक-आत्मीय ऊर्जा को कहा गया है। वर्तमान के प्रश्नों का रचनात्मक उत्तर अपनी परंपरा, अतीत व समाज में खोजना, उसे नए ढंग से व्यवस्थित करना और उसे क्रियान्वित करने के सूत्र उपस्थित करना भारतीय नवजागरण का ध्येय रहा है। भारतीय नवजागरण बड़ा पद रहा है। बाद के दिनों में इस नवजागरण के क्षेत्रीय रूप भी चल निकले। रामविलास शर्मा ने हिंदी क्षेत्र के नवजागरण के बरक्स 'हिंदी जाति' शब्द का प्रयोग किया। इसी तरह बांग्ला नवजागरण, तमिल नवजागरण, मराठी नवजागरण जैसे ढेरों पद चल पड़े। यह भ्रामक स्थिति है। भारतीय नवजागरण के ही छोटे-छोटे सत्य क्षेत्रीय अस्मिताएं हैं। अतः हम भारतीय नवजागरण के वृहत्तर संदर्भ में ही छायावाद को समझने का प्रस्ताव करेंगे।

निराला ने जागो फ़िर एक बार का उद्घोष किया। प्रसाद, पंत, महादेवी की कविता में ढेरों जागरण गीत लिखे गए हैं। प्रसाद की प्रसिद्ध कविता 'बीती बिभावरी जाग री' अपने बड़े अर्थ में राष्ट्रीय जागरण का पर्याय बन जाती है। निराला की कविता राष्ट्रीय जागरण का उद्घोष करती है। जयशंकर प्रसाद अपने नाटकों में उद्बोधन गीत लिख ही रहे थे। कई बार प्रश्न किया गया है कि छायावाद में राष्ट्रीय आंदोलन गायब है। यह भी कहा गया कि किसी भी छायावादी कवि ने राष्ट्रीय आंदोलन के ऊपर कविता नहीं लिखी। वस्तुतः छायावाद में सांस्कृतिक जागरण मुख्य है। नवजागरण के विशेषता सांस्कृतिक-आत्मिक जागरण की होती ही है।

10.4.6 व्यक्ति सत्य व शाश्वत बोध के द्वंद्व की कविता

छायावादी कविता व्यक्ति सत्य व शाश्वत बोध के द्वंद्व के रूप में हमारे सामने आती है। एक ओर इस पर आधुनिक जीवन, मूल्य व दर्शन-विचार का प्रभाव है तो दूसरी ओर भारतीय दर्शन का प्रभाव भी कम नहीं है। जयशंकर प्रसाद शैव दर्शन के प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रभावित हैं। प्रसाद की कामायनी का मुख्य प्रतिपाद्य आनंदवाद है। निराला वेदांत से प्रभावित हैं। महादेवी के ऊपर बौद्धों के करुणावाद का गाढ़ा प्रभाव है। हां इनमें पंत जरूर आधुनिक अरविंद दर्शन से प्रभावित हैं। वर्तमान व अतीत के दर्शनों की टकराहट या संयुक्त समवाय छायावाद को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करता है।

10.4.7 भाषा और शैली

छायावादी कविता ने हिंदी कविता में ब्रजभाषा की बजाय खड़ी बोली को प्रतिष्ठित किया। नए कथ्य नई भाषा में ही आ सकते हैं। ब्रजभाषा श्रृंगार व भक्ति के

अनुकूल भाषा थी। आधुनिक भावबोध को अभिव्यक्त करने के लिए तब हिंदी ही उचित भाषा हो सकती थी। इस दाय को हिंदी कविता में सबसे पहले छायावाद ने समझा। छायावादी शिल्प को लेकर हिंदी आलोचना में लंबा विवाद रहा है। छायावादी शिल्प को अन्योक्ति कहा गया है। लाक्षणिकता छायावाद की एक प्रमुख विशेषता रही है। आलंकारिकता से युक्त भाषा, सूक्ष्मता और अस्पष्टता ने मिलकर छायावादी कविता को विशिष्ट रूप प्रदान किया।

अभ्यास प्रश्न 1

1. 'छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है'। यह कथन किस आलोचक का है?

क. रामविलास शर्मा ख. नन्ददुलारे बाजपेयी ग. डॉ नगेन्द्र घ. रामचंद्र शुक्ल

2. पल्लव काव्य संग्रह के रचनाकार हैं**?**

क. जयशंकर प्रसाद ख. निराला ग. सुमित्रानंदन पंत घ . महादेवी वर्मा

3. छायावाद का पतन नामक पुस्तक के लेखक हैं**?**

क.डॉ देवराज ख. रामचंद्र शुक्ल ग. नन्ददुलारे बाजपेयी घ. निराला

4. मुक्त छंद की अवधारणा किसने दी**?**

क. जयशंकर प्रसाद ख़. निराला ग.रामचंद्र शुक्ल घ. नन्ददुलारे बाजपेयी

5. कामायनी को मनुष्यता के रसात्मक विकास के रूप में किस आलोचक ने देखा है**?**

क. रामचंद्र शुक्ल ख. डॉ नगेन्द्र ग. नन्ददुलारे बाजपेयी घ. जयशंकर प्रसाद

10.5 छायावाद का मूल्यांकन

10.5.1 छायावाद- आलोचकों की नज़र में

आलोचकों की दृष्टि में छायावादी कवियों का स्थान-निर्धारण

हिन्दी काव्यन्दोलन में उसके रचनाकारों के बीच ज्येष्ठता-क्रम व श्रेष्ठतत्व को लेकर इतना विवाद न हुआ होगा, जितना छायावादी कवियों को लेकर हुआ. छायावाद के बाद के काव्यान्दोलन जैसे प्रगतिवाद में त्रिलोचन, नागार्जुन व केदारनाथ अग्रवाल की त्रयी स्थापित हुई. आलोचकों के अपने रूचि-विन्यास ने किसी को श्रेष्ठ भी माना, किन्तु उनके बीच कोई क्रम स्थापित न हुआ. 'तारसप्तक' या प्रयोगवाद के सात कवियों के बीच अज्ञेय को उसका पुरस्कर्त्ता स्वीकार कर लिया गया, किन्तु उनके बीच कोई क्रम स्थापित न हुआ. बाद के दिनों में अज्ञेय और मुक्तिबोध को लेकर श्रेष्ठता का विवाद चला, फिर भी काव्यान्दोलन के सन्दर्भ में अज्ञेय और मुक्तिबोध के बीच क्रम निर्धारण का प्रश्न उपस्थित न हुआ. नयी कहानी के दौर में मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर की त्रयी को नयी कहानी आन्दोलन का नेतृत्वकर्त्ता मान लिया गया किन्तु थोड़े विवादों के अतिरिक्त उनमें भी ऊपर-नीचे करने या होने को लेकर कोई विवाद नहीं खड़ा हुआ.

छायावादी कवियों को लेकर , उनकी ज्येष्ठता को लेकर जो विवाद इस काव्यान्दोलन के प्रारंभ में चला, वह अभी तक कायम है. एक दशक पूर्व नामवर सिंह ने पन्त की रचना के ¾ को कूड़ा कहकर महादेवी को पन्त से श्रेष्ठ सिद्ध किया और पन्त को चौथे स्थान पर रखा. हालाँकि उन्होंने इसका कोई तार्किक आधार नहीं दिया. इसी क्रम में कुछ वर्ष पूर्व दूधनाथ सिंह की 'महादेवी' पुस्तक को देखना चाहिए. इस सन्दर्भ में छायावादी कवियों पर लिखी गयी आलोचनाएँ या टिप्पणियाँ देखना दिलचस्प होगा. इस सन्दर्भ में सबसे पहले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावादी कवियों में पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी का क्रम स्थापित किया. आचार्य शुक्ल की दृष्टि में महादेवी रहस्यवाद की प्रतिनिधि, प्रसाद मधुचर्या के कवि, निराला बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा के बावजूद भाषागत अव्यवस्था के शिकार हैं. इनमें पन्त जी में ही उन्हें 'शुद्ध स्वच्छतावाद' तथा' लाक्षणिक साहस' दिखा. शुक्ल जी के बाद छायावाद के महत्वपूर्ण आलोचक नंददुलारे बाजपेयी की दृष्टि में प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी का क्रम बना, किन्तु उनके इस क्रम-स्थापना व उनकी आलोचना में संगति कम असंगति ज्यादा है. यहाँ आचार्य नंददुलारे बाजपेयी जी के मतों को देखना उचित होगा. – "इनमें भी ऐतिहासिक दृष्टि से श्री जयशंकर प्रसाद का कार्य सबसे अधिक विशेषता-

समन्वित है' (हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी , पृष्ठ 96) *** 'उस समय की प्रचलित कविता की दिशा बदलने में अग्रणी श्री जयशंकर प्रसाद ही ठहरते हैं'(पृष्ठ 98) ***'श्री जयशंकर प्रसाद ने काव्य के लिए परम आवश्यक माधुर्य भाव की सृष्टि प्राकृतिक वर्णनों द्वारा आरम्भ की '(पृष्ठ 99) . प्रसाद जी को नंददुलारे बाजपेयी जी श्रेष्ठ मानते हैं, किन्तु इस श्रेष्ठता के क्रम में प्रसाद की कविताओं को पन्त और निराला की कविताओं से तुलना करके वे नहीं दिखाते, जबकि 'श्री जयशंकर प्रसाद' शीर्षक निबंध में वे रत्नाकर, गुप्त जी की कविताओं से प्रसाद की कविताओं की तुलना तो करते हैं ;किन्तु निराला या पन्त से इस प्रकार की कोई तुलना उन्होंने न की. निराला के सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है-'काव्य का चिर दिन से चले आते हुए छंद-बंध से छूटना हिन्दी में एक स्मरणीय घटना है. इस श्रेय के अधिकारी 'निराला' जी ही हैं' (पृष्ठ 117) ***'निराला जी द्वारा पेटेंट किया हुआ काव्य निर्वाह शब्द इसी बुद्धि तत्व का संकेत है. इसका 'निराला' जी ने सदैव आग्रह किया है. पन्त जी की रचनाओं में उन्हें इसी के अभाव की सबसे अधिक शिकायत रही है.' (पृष्ठ 117-118) ***'निराला जी का वास्तविक उद्देश्य अपने युग के भावना और कल्पनामूलक काव्य में सचेत बुद्धितत्व का प्रवेश है. .... निराला जी ने इस विषय में नया दिग्दर्शन कराया. आधुनिक कवियों में इस विशेषता को लिए हुए निराला जी इस क्षेत्र में एक ही हैं. इस दिशा में काम करते हुए उन्होंने पहले-पहल मुक्त छंद की सृष्टि की जो उक्त उद्देश्य के विशेष अनुकूल सिद्ध हुआ. मुक्त छंद के अतिरिक्त उन्होंने हिंदी पद-विन्यास को भी अधिक प्रोढ़ तथा प्रशस्त बनाने का सफल प्रयास किया... संगीतज्ञ होने के कारण शब्द-संगीत परखने और व्यवहार में लाने में वे आधुनिक हिन्दी के दिशा-नायक हैं. अनुप्रास के वे आचार्य हैं' (पृष्ठ 118-119) *** ' कविताओं के भीतर से जितना प्रसन्न अथवा अस्सखलित व्यक्तित्व निराला जी का है, उतना न प्रसाद जी का है और न पन्त जी का. यह निराला जी की सम्मुन्नत काव्य-साधना का प्रमाण है. निराला जी के 'कवि' में जड़त्व का अंकुश कहीं नहीं मिलता, जबकि प्रसाद जी की भावनाएं कहीं-कहीं साधारण तल तक पहुच गयी हैं और पन्त जी का श्रृंगार यत्र-तत्र ऐन्द्रियता की स्थिति तक पहुंच गया है और उनके कविता यदा-कदा 'अपनी तारीफ' तक करने लगी है. निराला जी की 'यमुना' की तुलना यदि पन्त जी की 'उच्छवास', 'आंसू', अथवा 'ग्रंथि' से की जाए- इन सबमें विषय साम्य है- तो निराला जी का निर्लेप व्यक्तित्व देखकर मुग्ध होना पड़ता है. पन्त जी के व्यक्तित्व में इतना परिष्कार नहीं है ' (पृष्ठ 120) . उपरोक्त पंक्तियों में नंददुलारे बाजपेयी जी की पक्षधरता निराला के प्रति दिखती है, जबकि जयशंकर प्रसाद को वे श्रेष्ठ छायावादी कवि मानते हैं. ज़ाहिर है यह उनके आलोचना की विसंगति है. उनकी आलोचना की विसंगति का एक नमूना और देखें- "नवीन हिन्दी कविता में सबसे श्रेष्ठ सृष्टि-प्रतिभा लेकर श्री सुमित्रानंदन पन्त का विकास हुआ". (श्री सुमित्रानंदन पन्त , पृष्ठ 128) . बाजपेयी जी अपनी आलोचना में यह सिद्ध नहीं करते कि 'सबसे श्रेष्ठ सृष्टि-प्रतिभा' वाले पन्त जी निराला और प्रसाद से ऊने किस प्रकार पड़ जाते हैं. दरअसल बाजपेयी जी पन्त, निराला और प्रसाद की काव्य-प्रतिभा से प्रभावित हैं और अलग-अलग समय पर उन्हें अपनी आलोचना में विरोधाभास उपस्थित करना पड़ा. इसीलिये कभी निराला उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं तो कहीं प्रसाद, किन्तु विचित्र ढंग से वे पन्त को छायावाद का प्रतिनिधि मान बैठते हैं- 'प्रेम और सौन्दर्य की सूक्ष्म मानसिक विवृत्ति तक में पन्त जी की कल्पना समर्थ हुई है और यत्र-तत्र यही कल्पना आध्यात्मिक उड़ान भी लेती चली है. इसे ही प्रचलित शब्दावली में 'छायावाद' कहा जाता है'. (पृष्ठ 128). महादेवी वर्मा के सन्दर्भ में बाजपेयी जी ने स्पष्ट लिखा है-और सही लिखा है—" प्रसाद के 'आंसू', निराला की 'स्मृति' जैसी उदात्त और एकतान कल्पना तथा 'पल्लव' का-सा सौन्द्रोंन्मेष महादेवी में नहीं है; किन्तु वेदना का विन्यास , उसकी वस्तुमत्ता (आब्जेक्टिविटी) का बहुरूप और विवरणपूर्ण चित्रण जितना महादेवी जी ने दिया है, उतना वे तीनों कवि नहीं दे सके हैं '(श्रीमती महादेवी वर्मा, पृष्ठ 148) . कहने का आशय यह है कि नंददुलारे बाजपेयी ने प्रसाद, निराला, पन्त , महादेवी का क्रम नियत किया है, किन्तु उनकी आलोचना में निराला और पन्त केन्द्रस्थ हैं, यही उनकी आलोचना-विसंगति है.

डॉ बच्चन सिंह ने बहुत पहले 'क्रांतिकारी कवि निराला' पुस्तक लिखी थी और निराला के प्रति अपनी पक्षधरता सिद्ध की थी जो उनके इतिहास में भी हम देख सकते हैं. निराला के बाद प्रसाद, पन्त और महादेवी का क्रम स्थिर होता है. रामविलास शर्मा के केंद्र में भी निराला ही हैं(निराला की साहित्य साधना 1, 2, 3). 'पन्त और निराला' नामक अध्याय में रामविलास जी ने पन्त और निराला जी के बीच के द्वंद्व व आत्मीयता की विस्तार से चर्चा की है. पन्त के ऊपर निराला के प्रभाव को भी उन्होंने दिखाया है और निराला के अंह भाव को भी. रामविलास जी ने इनकी कविताओं की तुलना न की . स्वाभाविक ढंग से उन्होंने निराला जी को 'जातीय चेतना का कवि' मान लिया था..हाँ उनके विवेचन के बीच बार-बार पन्त आ जाते थे. रामविलास जी ने लिखा है- 'जैसे निराला पन्त को प्यार करते थे और उनकी लोकप्रियता से कष्ट पाते थे, वैसे ही पन्त निराला को प्यार करते थे और उनके बौद्धिक दबाव से त्रस्त होते थे ' (निराला की साहित्य साधना-1, पृष्ठ 502) . हालांकि इस तुलना प्रसंग में रामविलास जी अपनी पक्षधरता दिखा जाते हैं- 'पन्त सौन्दर्य प्रेमी कारीगर अधिक रहे हैं; निराला जलते हुए मन्त्र देखने वाले, भावावेश में स्वयम भष्म होने वाले द्रष्टा. मान, अपमान, घृणा, ग्लानि, अवसाद-सब-कुछ निराला में उदात्त था, पन्त में सब कुछ वातानुकूलित. निराला ने अपनी काव्य-गरिमा की कीमत चुकाई मानसिक संतुलन देकर;पन्त अपना मानसिक संतुलन बनाये रहेकाव्य-गरमा खोकर . ' (पृष्ठ 505, पन्त और निराला, निराला की साहित्य साधना-1) . इसी प्रकार 'गंगा पुस्तकमाला और सुधा' नामक अध्याय में पन्त, निराला व प्रसाद के द्वंद्व पर रामविलास जी ने विवरणात्मक टिप्पणी की है. निराला की साहित्य साधना में निराला के साथ पन्त आते हैं , प्रसाद या महादेवी नहीं.

दूधनाथ सिंह ने निराला पर 'आत्महंता आस्था', पन्त पर तारापथ की भूमिका, संस्मरण 'लौट आओ ओ धार' व अन्य आलेख तथा महादेवी वर्मा पर 'महादेवी' लिखकर छायावादी कविता की समझने-समझाने का अच्छा प्रयास किया है. दूधनाथ सिंह कभी निराला को, कभी पन्त को कभी महादेवी वर्मा को श्रेष्ठ सिद्ध करते रहे. हालांकि उनकी पक्षधरता पन्त के प्रति अधिक रही. पन्त को 'सम्पूर्णता का कवि' कहकर दूधनाथ सिंह ने पन्त काव्य की ऐतिहासिक भूमिका को प्रसाद और निराला से ज्यादा भाष्वर मानते हैं; खासतौर से पन्त काव्य की आलोचना-दृष्टि के कारण . किन्तु अपनी आलोचना के उतरार्द्ध में दूधनाथ जी विचित्र ढंग से पन्त कविता को ' निर्वासन की कविता' कहते हैं .(देखें- आलोचना में प्रकाशित दूधनाथ सिंह का लेख, आलोचना शताब्दी अंक, 2000) यह उनकी आलोचना के नामवर-प्रभाव का दौर है. डॉ देवराज जी चारों छायावादी कवियों में पन्त को श्रेष्ठ मानते हैं-'छायावादी कवियों में पन्त जी सबसे अधिक बोधगम्य रहे हैं' (पृष्ठ 41, छायावाद:उत्थान,पतन,पुनर्मूल्यांकन). पन्त के बाद प्रसाद, महादेवी का स्थान है. निराला क्रमशः आते हैं. डॉ देवराज जी ने दर्शन और विचार की तुला पर छायावादी कवि और कविता को कसते हैं और इसी के बीच अपने निष्कर्ष निकालते हैं. क्लासिक साहित्य के प्रशंसक होने के कारण पन्त, प्रसाद की कवितायेँ उन्हें कालिदास, रवीन्द्र से कमतर लगती हैं. दूसरे शब्दों में कहा जाए तो उन्होंने क्लासिक मानदंडों से रोमांटिक कविता को देखा है. इसलिए आचार्य शुक्ल की तरह वे उसकी कमियों को तो अच्छे ढंग से देखते हैं, किन्तु छायावाद की ऐतिहासिक भूमिका नहीं देख पाते. हाँ इस आलोचना में तार्किकता है, विचार है, उच्च कलात्मक मान हैं. जब वे कामायनी के सौन्दर्य चित्र को मेघदूत के चित्रों से कमतर सिद्ध करते हैं तो आप उनके तर्कों से प्रभावित होंगे, स्वीकार भी करेंगे, किन्तु आप के मन में यह प्रश्न उठेगा कि पन्त, प्रसाद की कविता की तुलना कालिदास से क्यों? कालिदास और छायावाद के बीच शताब्दियों का अंतर है, और यह अंतर इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि छायावादी कविता ने लम्बे गैप को पाटने का कार्य किया है. संभवतः यही छायावादी कविता की ताकत है.

इधर के वर्षों में छायावादी कवियों और उनकी कविता पर रमेशचंद्र शाह ने अच्छा काम किया है. हालंक यह कार्य मुख्यतः तुलनात्मक रूप में ज्यादा हुआ है. इस तुलना में उनकी रूचि व पक्षधरता स्पष्ट है, बावजूद उनका कार्य

महत्वपूर्ण है. पुस्तक के कुछ उदाहरण/ अंश देखें- 'उनकी (प्रसाद) प्रारम्भिक कविताओं की भाषा और शिल्प में पन्त और निराला जैसा विस्फोटक नयापन नहीं है, किन्तु जहाँ इन दोनों कवियों की कविता में उनकी अपनी व्यक्तिगत आवाज़ काफी देर बाद सुनाई पड़ती है, वहां प्रसाद का कवि अपेक्षाकृत जल्दी ही वयस्क होकर अपनी आवाज़ में अपनी बातें कहने का आत्मविश्वास प्राप्त करने लगता है.(छायावाद की प्रासंगिकता , पृष्ठ 56) ***'पन्त में अर्थ (भाव-कथ्य) अधिकतर सामान्य मनोभूमि का होता है, उसको वे कल्पना (और फैंसी) से, चिंतन और शब्द-शिल्प में फैला देते हैं. प्रसाद अपने बोध में छने हुए अर्थ को शब्द के जरिये और भी ज्यादा छानकर गाढ़ा कर लेते हैं. पन्त में शब्द ही वस्तुएं हैं; प्रसाद में शब्द केवल इंगित हैं.....उन्हें शब्दों के रूपरंग में ज्यादा दिलचस्पी नहीं. यदि पन्त की कविता में शब्द ठोस हैं अपेक्षाकृत, तो निराला में वे अधिक द्रवित हैं और प्रसाद में सीधे उद्वाष्पन.' (छायावाद की प्रसंकिता, पृष्ठ 32) **** 'शिल्प का सजग अध्यवसाय और उत्साहमय प्रयोगशीलता हमें प्रसाद की अपेक्षा पन्त और निराला में ज्यादा स्पष्ट देखने को मिलती है. पन्त का शिल्पी-मन ज्यादा उजागर दिखता है; 'उच्छ्वास' या 'आंसू' जैसी कविताओं को ही ले लीजिए; एक ही कविता के अन्दर कवि का यह वैविध्य , यह विन्यास, भाव के अनुकूल उसका दक्ष परिवर्तन हमें मुग्ध कर देता है. शब्दों के चुनाव , उसके रख-रखाव के बारे में पन्त, निराला और प्रसाद की अपेक्षा अधिक सावधान मालूम पड़ते हैं, अधिक कुशल भी. किन्तु जब हम इस प्रयोगशीलता को समूचे काव्य-व्यक्तित्व के साथ क्या रिश्ता रहा है, इस पर विचार करने चलते हैं तो हम पाते हैं कि जिस प्रकार का 'विकास' , जिस प्रकार की समग्रता और एकता का अनुभव प्रसाद और निराला की कविता देती है, उस प्रकार की समग्रता और एकता का अनुभव पन्त नहीं देते ' (छायावाद की प्रासंगिकता, पृष्ठ 11) . ****' प्रसाद और निराला के कृतित्व में यह प्रक्रिया (व्यक्तिगत विलक्षणता का-संवेदना का महत्व) ज्यादा गहरे स्तरों पर अनुभव की जा सकती है. पन्त में अपेक्षाकृत कम और महादेवी में सबसे कम . पन्त की काव्य संवेदना का विस्फोटक नयापन जरा जल्दी चुक जाता है और संघर्षशील व्यक्तित्व तथा इतिहास-बोध के अभाव में वह असमय ही मद्धिम चिन्तनशीलता की लों में ढलने लगता है.' (पृष्ठ 15, कविता के कारखाने में छायावाद, छायावाद की प्रासंगिकता) ***'उनकी (प्रसाद) विद्वता ने उनकी सूक्ष्म शब्द-संवेदना को विवेकसम्मत कराया. उनके प्रयोग साहसिकता की बजाय नम्रता हा ही अधिक परिचय देते हैं. यह उनकी सीमा है और इसी मानी में पन्त और निराला हमें अधिक प्रेरणा देते हैं. किन्तु साधकों के मितव्यय संवरण तथा अर्थ की घनीभूत एकाग्रता के लिहाज़ से वे अक्सर पन्त और निराला दोनों से बाज़ी मार ले जाते हैं. पन्त और प्रसाद के विशेषणों की तुलना करें तो पन्त निश्चय ही अधिक प्रभावशाली लगते हैं. किन्तु वे अपने विशेषणों पर निर्भर भी बहुत रहते हैं, जो खटकने वाली बात हो सकती है. शुद्ध लयात्मक उत्तेजना प्रसाद में जितनी महसूस होती है, उतनी उस तरह पन्त में नहीं होती. पन्त की आँख प्रसाद जी के मुकाबले ज्यादा निरीक्षणशील हैं. कान प्रसाद के कहीं अधिक संवेदनशील हैं. निराला आँख-कान दोनों के धनी हैं.' (पृष्ठ 142, छायावाद की प्रासंगिकता, पन्त काव्य: एक पुनरीक्षण) . ऐसे नमूने पूरी पुस्तक में मिलेंगे, यथा- ' अनुभूति की तीव्रता और सांद्रता निराला की पहचान है. प्रसाद में अपनी चित्तवृत्तियों के प्रति एक विशेष चौकन्नापन है. पन्त में जो कमी सबसे ज्यादा खटकती है, वह है मार्मिकता और तीव्रता की. चिंतनशील कवि वे भले हों, किन्तु विचार और कल्पना का विद्युन्मय संयोग उनके काव्य में मुश्किल से कभी हो पाता है' (पृष्ठ 142-143, वही) . शाह जी पिछले पृष्ठों में पन्त को वैचारिक धरातल पर कमजोर तथा कल्पना के धरातल पर सशक्त स्वीकार कर चुकें हो तब इस कथन की व्यंजना क्या हो सकती है?

'वर्णगीत का मर्म: महादेवी' शीर्षक अध्याय में शाह जी ने लिखा है-'महादेवी की कविता प्रसाद, निराला और पूर्व-पन्त की तुलना में 'साहित्यिक'कविता है.' (पृष्ठ 151) . अब इस साहित्यिक का मर्म शाह जी ही जानें. प्रश्न है कि जब महादेवी से श्रेष्ठ होते हुए भी प्रसाद, निराला, पूर्व-पन्त कम साहित्यिक हैं, तब वे श्रेष्ठ कैसे हुए? यह विरोधाभासी वक्तव्य तुलनात्मकता की अतिवादिता का नमूना है. 'महादेवी का अंतर्जगत और महादेवी का 'अनुभव' जैसे बराबर

एक सुरक्षित दूरी बनाये रखते हैं. दोनों में आमना-सामना शायद ही कभी होता हो; (पृष्ठ 158-159). फिर महादेवी वर्मा की साहित्यिकता किस्में है? आगे देखें-' ये शब्द नहीं, छायावादी शब्द हैं, यानी छायावादी कवियों द्वारा धड़ल्ले से इस्तेमाल किये हुए शब्दों की परछाइयाँ हैं. महादेवी की कविता इन धूमिल परछाइयों से कभी मुक्त नहीं हो. अर्थ यह कि रमेशचंद्र शाह की आलोचना महत्वपूर्ण होते हुए वस्तुनिष्ठ नहीं है.

अभ्यास प्रश्न 2

1. छायावादी कविता में रहस्यवाद विषय पर टिप्पणी कीजिये।

2. छायावाद की परिभाषा दीजिए।

10.5.2 छायावाद-प्रदेय

छायावाद की देंन क्या रही? यह प्रश्न अक्सर पूछा जाता रहा है. हिन्दी कविता को आधुनिक वृत्तियों से जोड़ने की कड़ी के रूप में , नए सौन्दर्य चित्र देने, सौन्दर्य दृष्टि का विस्तार करने में, प्रकृति-स्त्री को केंद्र में लाने या आलंबन बनाने में , भाषा-कथ्य के विस्तार के लिए , सभ्यता प्रश्न के निर्माण के लिए, राग निर्माण के लिए ....आदि अनेक बिंदु हैं, जिनसे छायावादी कविता हमें समृद्ध करती है. कोई भी कविता हमें स्थूल चित्र नहीं देती, बल्कि वह सांस्कृतिक उपादान ही होती है, इस दृष्टि से छायावाद को पढ़ा जाना चाहिए.

छायावादी कविता हिंदी का श्रेष्ठ कवितान्दोलन है। इस श्रेष्ठता का कारण है सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि। यह सौंदर्य दृष्टि रचना को व्यापक व शाश्वत आधार देती है। सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि किसी रचना को शाश्वत रूप देती है। शाश्वत रूप दृष्टि प्राप्त करने के पश्चात रचना स्थूल यथार्थ व मोटे विवरणों से मुक्त होकर भावजगत की गहराई में प्रवेश करती है। छायावादी कविता ने अपने समय में यह कार्य किया था। संक्षिप्त रूप में छायावादी कविता के प्रदेय के निम्न बिंदु हो सकते हैं-

* छायावाद में स्त्री को सबसे पहले मानवीय दृष्टि प्रदान की गई। छायावाद से पूर्व स्त्री या तो अबला थी या देवी। स्त्री को मनुष्य रूप में स्थापित करना छायावादी कविता की एक उपलब्धि है। सुमित्रा नंदन पंत ने लिखा है-'देवी,मां, प्राण, सहचरि, प्रिये हो तुम'।

* छायावाद ने प्रकृति को आत्मीय भाव से देखा। छायावादी कविता में प्रकृति आश्रय है। यहां प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता है। छायावाद में सर्वाधिक प्रकृति केंद्रित कविताएं लिखी गई।

* छायावादी कवितान्दोलन की एक बड़ी उपलब्धि यह भी रही कि इसने कविता में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित किया। खड़ी बोली की प्रतिष्ठा ने हिंदी कविता के विषय को व्यापक बनाया।

* छायावादी कविता ने हिंदी कविता को आधुनिक भाव बोध प्रदान किया। यदि छायावाद के माध्यम से व्यक्ति सत्य न आया होता तो आधुनिक जीवन बोध की प्राप्ति भी न होती।

* छायावादी कविता ने हिंदी कविता को चित्रभाषा की शैली थी। बिम्ब व प्रतीक विधान की दृष्टि से भी हिंदी कविता ने नए रूप दिए।

10.6 सारांश

1-छायावाद को समझने में प्राय: आलोचक असमर्थ रहे हैं. कोई इसे व्यक्तिवादी कविता के रूप में (नामवर सिंह) कोई रोमैंटिक (प्रेम व् सौन्दर्य की कविता- डॉ देवराज) , कोई रहस्यवाद की कविता के रूप में (मुकुटधर पाण्डेय , महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल) , कोई शक्तिकव्य (रामस्वरूप चतुर्वेदी), कोई नवजागरण के रूप में (डॉ बच्चन सिंह) , कोई सूक्ष्मता के रूप में (डॉ नगेन्द्र) के रूप में व्याख्यायित करता रहा; किन्तु छायावादी कविता की समझ पन्त की आलोचना सर्वाधिक देती है. हाँ अन्य आलोचकों की दृष्टि-आलोचना छायावाद को स्फुट रूप में विवेचित अवश्य करती है और छायावाद की समझ विस्तृत होती है.

2- छायावाद और रहस्यवाद को बहुत दिनों तक एक समझा जाता रहा किन्तु छायावाद और रहस्यवाद एक नहीं है, इसे स्पष्ट रूप से समझे जाने की आवश्यकता है. छायावाद मुख्यतः रोमैंटिक आन्दोलन है और रहस्यवाद अपरोक्ष की तादात्म्कता से समन्वित एक मनोवृत्ति. छायावाद की सूक्ष्मता, अपरोक्ष का आभास, जिज्ञासा रोमैंटिक तत्व है न कि रहस्यवादी प्रवृत्ति. प्रसाद और महादेवी इसे भारतीय परंपरा में खोजते रहे, किन्तु स्पष्ट रूप से समझ लें कि रोमैंटिक कविता में अपरोक्ष का आभास होता है और रहस्यवादी कविता में अपरोक्ष से तादात्म्य.

3- छायावादी आन्दोलन को नए ढंग से देखे जाने की आवश्यकता इसलिए भी है कि इसकी विवेचना में रूचि-विशेष बाधक रहा है. कोई प्रसाद को श्रेष्ठ सिद्ध करता रहा तो कोई निराला को. हालांकि हिन्दी के दो क्लासिक समीक्षक – राम चन्द्र शुक्ल, डॉ देवराज - की दृष्टि में पन्त श्रेष्ठ छायावादी कवि हैं. मेरी सम्मति में भी पन्त श्रेष्ठ छायावादी कवि हैं. छायावाद की प्रतिनिधि विशेषता पन्त काव्य में सर्वाधिक प्रकट हुई है. इस प्रकार वे छायावाद की शक्ति और सीमा का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करते हैं.

4- छायावाद के सर्वश्रेष्ठ आलोचक पन्त जी हैं. किन्तु पन्त की आलोचना को पढ़े जाने की समझ हमारे पास होनी चाहिए. पल्लव के 'प्रवेश' में छायावादी शब्दों की भरमार है-दूसरे शब्दों में कहें तो यह कि पल्लव की भूमिका छायावादी कविता की छायावादी आलोचना है. पन्त की दूसरी छायावाद पर आलोचना 'छायावाद; पुनर्मूल्यांकन' छायावाद के आक्षेपों का प्रति-उत्तर है. एक ढंग से छायावाद के भ्रमों का निराकरण

करती आलोचना. हमें इस प्रश्न का उत्तर खोजने की आवश्यकता है कि छायावादी कविता पर इतने विस्तार से आलोचना लिखने की बाध्यता केवल पन्त ही क्यों महसूस करते हैं? प्रारंभिक दिनों में जयशंकर प्रसाद ने छायावाद और रहस्यवाद को लेकर विचार किया किन्तु उनकी आलोचना छायावाद के भ्रम को और पुष्ट ही करती है.

5- छायावादी कविता आन्दोलन के सन्दर्भ में एक तथ्य को समझा जाना चाहिए कि इसका पूर्वार्द्ध और उत्तराद्ध एक ही नहीं हैं अर्थात इसे अलग ढंग से देखे जाने की आवश्यकता है. डॉ नामवर सिंह ने इस भेद को अनौचित्यपूर्ण कहा है , किन्तु मुझे लगता है कि इसे भी पन्त के सन्दर्भ में देखे जाने की आवश्यकता है. छायावाद के सन्दर्भ में कुछ बातें समझने की हैं. यह बातें इसलिए भी अनिवार्य है क्योंकि इनसे छायावाद की समझ बनाने में हमें मदद मिलती है. छायावाद के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि छायावादी आन्दोलन मुख्य है या इसकी प्रवृत्ति. देखने-सुनने में एक एक ही लगता है किन्तु इसकी व्यंजना में थोडा फर्क है. एक आन्दोलन जब चलता है तब वह किन्हीं निश्चित सिद्धांतों, मान्यताओं को लेकर चलता है. अपने उतरार्द्ध में वह आन्दोलन धीरे-धीरे अन्य वृत्तियों-प्रवृत्तियों को भी समेत लेता है, किन्तु वह वृत्ति-प्रवृत्ति (उतरार्द्ध के) उस आन्दोलन के मूल नहीं होते. ठीक उसी प्रकार जैसे एक कवि या साहित्यकार जब अपनी रचनात्मकता में प्रवृत्त होता है तो वह किन्ही निश्चित मान्यताओं को लेकर चलता है. वह निश्चित मान्यताएं ही उसके व्यक्तित्व या रचना के मूल होते हैं. समय के साथ वह अपनी रचनात्मकता को नयी दिशा देता है और अपने मूल वृत्त को विस्तृत करता है. (श्री अरविन्द के एक उदाहरण से हम अपनी बात को समझाने का प्रयास करेंगे. श्री अरविन्द ने अपने बालकाल में एक कविता लिखी थी, जिसमें प्रेम और मृत्यु के द्वंद्व को लेकर कुछ पंक्तियाँ रची थीं. युवा काल में इसी विषय पर वे कविता रचते हैं और अपनी अंतिम कृति सावित्री में वे इसे ऊंचाई पर ले जाते हैं. इसी प्रकार रामचंद्र शुक्ल के 'कविता क्या है' निबंध को लें, जिसमें वे अपनी मान्यताओं को विस्तृत करते चले हैं.) इस प्रक्रिया में हो सकता है रचनाकार अपने मूल वृत्त का विस्तार करे और यह भी हो सकता है कि वह अपने मूल वृत्त से इतर की वृत्तियों-प्रवृत्तियों को भी अपनी रचनात्मकता में शामिल करे. हाँ दोनों स्थितियां हो सकती हैं, किन्तु उसके रचना-प्रस्थान या उसके रचना-आन्दोलन के समय की वृत्तियाँ ही उस रचनाकार का मूल व्यक्तित्व होती हैं. यानी यदि रचना आन्दोलन के सन्दर्भ में बात करें तो यह कि एक रचनान्दोलन

अपनी जिस सैद्धांतिक मान्यताओं को लेकर चलता है, उठ खड़ा होता है, वह उसका मूल व्यक्तित्व होता है.... और इस व्यक्तित्व से जुड़ने वाला रचनाकार ही उसका प्रतिनिधि रचनाकार माना जाना चाहिए. कहने का अर्थ यह है कि छायावादी आन्दोलन के वृत्त से संचालित वृत्तियाँ ही छायावाद का मूल हैं. इसकी प्रवृत्तियों-विशेषताओं में विस्तार हो सकता है, इसलिए वे द्वितीयक हैं. यह स्पष्ट रूप से समझने की आवश्यकता है. छायावादी आन्दोलन और उसकी प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में बात करें तो चिंतन की सूक्ष्मता, अस्पष्टता, छायाभास् , व्यक्तिवाद, प्रेम व सौन्दर्य, कथन की भंगिमा , विद्रोह , प्रकृति का आलंबन रूप में चित्रण हैं. बाद के दिनों में इसमें सामजिक वैषम्य , संघर्ष, तनाव , वर्गीय अंतर्विरोध, सभ्यता संघर्ष...आदि भी आ जाते हैं, जो इसकी विशेषता होते हुए भी छायावादी आन्दोलन की विशेषता नहीं हैं. डॉ नामवर सिंह ने अपनी छायावाद पुस्तक में इस बात पर आपत्ति उठाई है कि 'छायावाद के भीतर छायावादी और अन्य प्रवृत्तियों का भेद सही नहीं है'. दरअसल यहाँ नामवर सिंह सत्य से मुंह मोड़ रहे हैं. तारसप्तक के माध्यम से प्रयोगवादी आन्दोलन हमारे सामने आया किन्तु वही दूसरा सप्तक नयी कविता में रूपांतरित हो गया. एक ही कवि अपने आन्दोलन के पूर्वार्द्ध, उतरार्द्ध या आन्दोलन की समाप्ति के बाद एक ही ढंग से रचना नहीं करता, इसे विविध उदाहरणों के माध्यम से समझा जा सकता है. अज्ञेय या पन्त की उतरार्द्ध काल की रचनाओं को हम प्रयोगवादी या छायावादी कैसे कह सकते हैं**?** या निराला की **1936-38** के बाद की रचनाओं को हमें छायावादी कहने में संकोच होगा. हमारे कहने का अर्थ यह है कि आन्दोलनकारी साहित्य का विकास-क्रम सपाट ढंग से नहीं चला करता.

1**0.7 शब्दावली**

आच्छादित- किडी वास्तु,विचार के प्रभाव से मन,विचार का घिर उठना

सार्वभौमिक- ऐसा सत्य, जो देश-काल की सीमाओं से परे हो

अन्तःछवियों- हृदय की आंतरिक अवस्था का प्रतिबिम्बन

नवजागरण- दो संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न वैचारिक जागरण

संध्या भाषा- सिद्ध कविता में प्रतुक्त रहस्यात्मक भाषा शैली

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न **1**

1. ग

2. ग

3. क

4. ख

5. क

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. छायावाद का पतन- डॉ देवराज

2. महादेवी-दूधनाथ सिंह

3. हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी-नन्ददुलारे बाजपेयी

4. क्रांतिकारी कवि निराला-बच्चन सिंह

5- निराला की साहित्य साधना**, 1,2-** रामविलास शर्मा

6- आत्महंता आस्था-दूधनाथ सिंह

7- छायावाद-नामवर सिंह

8- हिंदी साहित्य का इतिहास-रामचंद्र शुक्ल

9- छायावाद की प्रासंगिकता-रमेशचंद्र साह

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

1- छायावादी कविता की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिये।

2- छायावादी आलोचना पर विचार कीजिये।

3- छायावादी कवितान्दोलन के प्रदेय को रेखांकित कीजिये।

इकाई 11 - स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता का विकास

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता का विकास
11.3.1 स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता की परिस्थिति
11.3.1.1 राजनीतिक परिस्थिति
11.3.1.2 सामाजिक परिस्थिति
11.3.1.3 आर्थिक परिस्थिति
11.3.1.4 सांस्कृतिक - धामिर्क परिस्थिति
11.3.2 स्वातंत्रयोत्तर कालीन साहित्य के प्रमुख आन्दोलन
11.3.2.1 स्वातंत्रतापश्चात कविताः एक परिचय
11.3.2.2 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर
11.4 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख प्रवृत्तियाँ
11.4.1 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता की वैचारिकी
11.4.2 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता की आलोचनात्मक सदंर्भ
11.4.3 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता का भाषागत संदर्भ
11.5 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता का मूल्यांकन
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.10 सहायक पाठ सामग्री
11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता किसी भी जाति, समाज, मनुष्य का मूलभूत प्रत्यय है। स्वतंत्रता का अर्थ भैतिक - सामाजिक पराधीनता भी है और मानसिक - अस्तित्वगत समस्या भी। स्वतंत्रता का अर्थ सृजनशीलता भी है। परतंत्र व्यक्ति कभी भी सृजनशील नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि हम भैतिक - सामाजिक रुप से स्वतंत्र हों लेकिन अवरुद्ध सृजनशीलता के शिकार हों। अर्थ यह है कि स्वतंत्र व्यक्ति ही सार्थक क्रिया कर सकता है। सृजनशीलताका संबंध संवेदनशीलता से है। संवेदनशीलता का संबंध साहित्य से है। और साहित्य में संवेदनशीलता का सबसे ज्यादा वहन कविता करती है। अतः कविता की दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कविता का तेवर काफी बदला हुआ है । यहाँ हमें इस तथ्य को समझना होगा कि स्वतंत्रता में और पराधीनता में , दोनो स्थितियों में श्रेष्ठ साहित्य की रचना हो सकती हे। स्वतंत्र समाज की रचना में उल्लास का स्वर ज्यादा होसकता है तथा परतंत्र समाज के साहित्य में प्रतिरोध का स्वर । नियमतः ऐसा कोई फार्मूला नहीं है कि किस समय किस प्रकार का साहित्य लिखा जाता है या लिखा जाना चाहिए। लेकिन यह अनिवार्य रुप से तय है कि अपने समय, समाज की सांकेतिक संभावनापूर्ण क्रिया साहित्य में उपस्थित रहती है। साहित्य चाहे स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि में लिखा गया हो या परतंत्रता की पृष्ठभूमि में साहित्य हमेशा अपने समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। इसका मुख्य कारण यह है कि साहित्यकार स्वतंत्रता - परतंत्रता को सांस्कृतिक संदर्भ में देखता है। कहने का अर्थ यह है कि लेखक - सृजनकर्ता ही नही है बल्कि सामाजिक परिवेश का अतिक्रमण कर संभावनाशील समाज की रचना भी करता है।

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के विकास क्रम में भी हमें उपरोक्त तथ्य देखने को मिलते हैं। हिन्दी कविता के लिए स्वतंत्रता पूर्व जहाँ जागरण का प्रश्न मुख्य था वहीं स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के लिए सामाजिक साम्य का प्रश्न। पहले स्वतंत्रता का प्रश्न मुख्य था, अब समानता का। हिन्दी कविता की अभिन्यक्ति का स्वर भी बदला और रुपाभिव्यक्ति संबंधी प्रयोग भी हुए। कई दृष्टियों से स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता पुरानी कविता से भिन्न भावभूमि की कविता है। आधुनिकता बोध की सही मायने में अभिव्यक्ति स्वातंत्रयोत्तर कालीन कविता में ही होती है। आधुनिकता के प्रश्नों, आधुनिकता के चिह्न की दृष्टि से हिन्दी कविता पर्याप्त समृद्ध रही है। आधुनिकता की अवधारणाएँ अंतर्विरोध, विडम्बना, विसंगति, संत्रास तथा उत्तर - आधुनिकता की वैचारिकी को स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता भली - भाँति व्यक्त करती है। आगे के बिन्दुओं में हम स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेगें।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई से पूर्व आपने संपूर्ण हिंदी कविता के विकास क्रम का अध्ययन कर लिया है। यह इकाई स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- स्वातंत्र्योत्तरहिंदी कविता के विकास क्रम को समझ पायेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी सामाजिक-राजनीतिक -सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझ पायेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के आन्दोलनों से परिचित हो सकेंगें।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की प्रवृतियों को समझ सकेंगे।

- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के कलात्मक आयाम को जान सकेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की पारिभाषिकी से परिचित हो सकेंगे।

11.3 स्वातंत्र्योत्तर काल और हिंदी कविता का विकास

स्वातंत्र्योत्तर कालीन कविता का संबंध भारतीय नवजागरण, राष्ट्रीय आन्दोलन, पूँजीवाद के आधुनिक बोध, तथा विश्वयुद्ध के बाद पैदा हुई स्थितियों से है। इतिहास में बदलाव के बिन्दु को रेखांकित करना हमेशा से ही कठिन रहा है, कारण यह कि बदलाव की प्रक्रिया यांत्रिक ढ़ग से यकायक नहीं होती बल्कि लम्बी ऐतिहासि**0**क प्रक्रिया के कारण संभव हो पाती है। इसलिए यह संभव नहीं है कि सन् **1947** के पहले और बाद के साहित्य में कोई संबंध ही न हो। यह विभाजन सुविधाजनक है और भारतीय इतिहास की बड़ी घटना (भारत के स्वतंत्रता दिवस) से जुड़ा हुआ है। भारतीय स्वतंत्रता की घटना न केवल साहित्यकारों बल्कि इतिहासविदों, चिन्तकों, समाजशास्त्रियों के विश्लेषण के बिन्दु को दूसरी ही तरफ मोड़ दिया। स्वतंत्रता का लक्ष्य समानता की व्यवस्था में बदल गया, जिसकी परिणति हुई सन् **1950** ई**0** का भारतीय संविधान । हिंदी कविता भी बदली और उसके अनुरूप अपना नया कलेवर धारण किया। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों का हम अध्ययन करें, उससे पूर्व आइए हम उसकी पृष्ठभूमि का अध्ययन करें।

11.3.1 स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थिति

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि सन् **47** की घटना वह निर्णायक बिन्दु था, जिसने पूरे भारतीय इतिहास को दूर तक प्रभावित किया। स्वाभाविक था कि हिन्दी साहित्य या कविता भी उससे प्रभावित हुई। स्वातंत्र्योत्तर काल की बदली हुई राजनीतिक, सामाजिक ,आर्थिक एंव सांस्कृतिक - धार्मिक परिस्थितियों का संबंध हिन्दी कविता से है। हिन्दी कविता ने इन परिस्थितियों का सृजनात्मक उपयोग किया । आइए हम स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थितियों का अध्ययन करें।

11.3.1.1 राजनीतिक परिस्थिति

1947 ईसवी में भारत आजाद हुआ, विभाजन की कीमत पर। विभाजन के उपरान्त पाकिस्तान नामक एक नया राष्ट्र निर्मित हुआ, जिसने भारत की सुरक्षा - शांति - स्थिरता को दूर तक प्रभावित किया । अब तक भारत - पाकिस्तान के चार युद्ध हो चुके है। सन् **1947, 1965, 1971,** में प्रत्यक्षतः और **1999** में कारगिलका अप्रत्यक्ष युद्ध।

इस बीच भारत - चीन युद्ध भी सन् **1962** ई में हुआ, जिसमें भारत की पराजय हुई। इन युद्धों ने हमारे देश में राजनीतिक अस्थिरता पैदा की। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त अमरीका और रुस में पैदा हुई शीतकालीन स्थिति ने अस्तित्वादी मनः स्थितियाँ पैदा की । जिससे स्वातंत्र्योत्तर साहित्य बहुत प्रभावित हुआ। देश की स्वतंत्रा के समय संपूर्ण राष्ट्र आशान्वित था। उसे आशा थी कि अब हमारी सारी समस्याओं का समाधान प्राप्त हो जायेगा, लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा न हो सका। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ। जवाहर लाल नेहरु के नेतृत्व में पंचशील समझौता हुआ, लेकिन वह असफल रहा। राजनीतिक असफलता ने भारतीय युवाओं के मन में असंतोष भर दिया। स्वप्न टूटे, मोहभंग हुआ और समाज बिना लक्ष्य के रह गया। केंद्रीय सत्ता, केंद्रीय विचार असफल

हो गये, फलतः विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया तेज हुई, क्षेत्रीय पार्टियों की बहुतायत बढ़ गई। राजनीतिक अस्थिरता का नया सच हमारे सामने आया।

11.3.1.2 सामाजिक परिस्थिति

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय समाज सामाजिक रुप से काफी पिछड़ी हुई अवस्था में था। अंगेजी राज्य में जमींदार, व्यापारी या उनके अधीनस्थ कर्मचारियों की सामाजिक स्थिति संतोषप्रद थी, लेकिन बाकी सामान्य जनता की स्थिति काफी विषम थी। अंग्रेजों ने 'फूट डालो राज करो' की नीति के अनुरुप उच्च वर्ग को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के अखिल भारतीय समाज को एक करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । सन् **1930** के बाद सामाजिक आन्दोलनों के प्रभाव से सामाजिक समरसता एवं समानता की स्थिति बनने लगी थी। सन् **1947** के बाद भारतीय संविधान का बनना इसी दिशा में एक बड़ा कदम था। स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक विकास को समायोजित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ हुआ। शैक्षिक जगत में भी युगान्तकारी परिवर्तन हुआ । स्वतंत्रता के पश्चात् देश में कई विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एवं कालेज खुले। साक्षरता दर में स्वतंत्रता के पश्चात् काफी वृद्धि हुई । साक्षरता ने बौद्धिक जागरुकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विशेषकर स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। महिलाओं के घर से बाहर निकलने और नौकरी करने से पारिवारिक स्तर पर कई बदलाव परिलक्षित हुए। स्त्री - पुरूष समानता की स्थिति ने एक ओर जहाँ सामाजिक गतिशीलता पैदा की वहीं दूसरी तरफ पारिवारिक विघटन की स्थिति भी निर्मित हुई। ज्ञान - विज्ञान के आलोक में कार्य - कारण तर्क पद्धति विकासित हुई। अंतर्विरोध, विसंगति, विडम्बना, तनाव जैसी आधुनिक समस्याएँ सामाजिक रुप में तथा साहित्य में भी दिखाई देने लगीं। भौतिक दृष्टि से समाज उन्नतशील हुआ, लेकिन साथ ही जटिलताएँ भी बढ़ीं । इन सबका साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा।

11.3.1.3 आर्थिक परिस्थिति

स्वांतत्रयोत्तर आर्थिक विकास की स्थिति - परिस्थिति का हिन्दी कविता पर व्यापक प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता के पूर्व आर्थिक विकास का सूत्र अंग्रेजों के हाथ में था, लेकिन उनका मख्य उद्देश्य भारत की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना नहीं था, अंग्रेजों के भारत आने से पूर्व भारत की विश्व व्यापार में योगदान लगभग **16%** था, जो **1947** तक नगण्य रह गया था। अंग्रेजी राज्य का भारत विकास एक छद्म था, जिसे उन्होंने लूट के साधन के रुप में प्रयोग किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अर्थव्यवस्था को सुनियोजित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ हुआ। सन् **1952** में प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ हुआ। हमारे देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था को लागू किया गया, जो सफल साबित हुआ। किन्तु इसके साथ ही भूखमरी, बेकारी, अकाल, जनसंख्या बढ़ोत्तरी, भ्रष्टाचार, हिंसात्मक मनोवृत्ति ने आर्थिक विकास को पीछे धकेल दिया। देश में अनेक आर्थिक परियोजनाएँ चली, लेकिन हम समृद्ध राष्ट्र की कल्पना साकार न कर सके। एक ओर देश की सामान्य जनता का जीवन स्तर दिन-प्रति-दिन नीचे गिरता गया, दूसरी ओर समाज का एक छोटा वर्ग समृद्ध होता चला गया। आर्थिक विकास के विकेन्द्रीकाण एवं असमानता ने सचेत वर्ग के भीतर विद्रोह - विक्षोभ का संचार किया।

11.3.1.4 धार्मिक - सांस्कृतिक परिस्थिति

स्वांतत्रयोत्तर कविता की पृष्ठभूमि पीछे **1857** की घटना से सीधे जुड़ जाती है। हिन्दू - मुस्लिम धर्मों की एकता स्थापित होने में सैकड़ो वर्ष लग गए। मुगलकाल के पतन एवं ब्रिटिश सत्ता के वर्चस्व की घटना परस्पर जुड़ी हुई है। **1857** की क्रान्ति ने यह स्थिति उत्पन्न की कि दोनों एकजुट होकर ब्रिटिश सत्ता के प्रति धार्मिक अस्तित्व के लिए संघर्ष करें। ऐतिहासिक प्रक्रिया में यह शुभ संकेत था - राष्ट्र के लिए। इस प्रक्रिया की पूर्णाहुति हुई देश की आजादी

में। इसी समय अंग्रेजो ने मुस्लिम - लीग और हिन्दू महासभा को अपने-अपने ठंग से प्रोत्साहन देकर 'फूट डालो राज करो ' की नीति के तहत अपने स्वार्थ की सिद्धि की, जिसकी परिणति देश के विभाजन में हुई। फूट और घृणा का यह वातावरण अभी तक बना हुआ है। जिसका प्रमाण है देश मे हिस्सों में होने वाले हिन्दू - मुस्लिम दंगे। धार्मिक विद्वेष के इस वातावरण का प्रतिरोध सांस्कृतिक स्तर पर हुआ। शास्त्रीय संगीत एवं साहित्य ने सांस्कृतिक स्तर पर प्रतिरोध की संस्कृति निर्मित की, लेकिन राजनीतिक - सामाजिक बड़े आन्दोलन के अभाव में वह उतना प्रभावी न हुई।

अभ्यास प्रश्न **1)**

निम्नलिखित कथन में सत्य/असत्य बताइए।

1. संवेदनशीलता का सबसे ज्यादा वहन कविता करती है।

2. साहित्य अपने समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है।

3. स्वातंत्र्योत्तर कविता के लिए जागरण का प्रश्न मुख्य था।

4. द्वितीय विश्वयुद्ध से स्वातंत्र्योत्तरहिंदी कविता का सम्बंध है।

5. 1857 का युद्ध भारत की सांस्कृतिक परिस्थिति के कारण लिए शुभ संकेत था।

11.3.2 स्वातंत्र्योत्तरकालीन साहित्य के प्रमुख आन्दोलन

स्वातंत्र्योत्तर कविता की पृष्ठभूमि का आपने अध्ययन कर लिया है। आपने यह पढ़ा कि किस प्रकार भारतीय जनता के सपने- आकांक्षांए बिखर गई। स्वतंत्रता के पूर्व जो लक्ष्य निर्धारित किए गये थे, वे अपूर्ण ही रह गये। सामाजिक आर्थिक - राजनीतिक अव्यवस्था ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपने पिछली इकाइयों में प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद के बारे में पढ़ा । ये आन्दोलन स्वतंत्रता पूर्व के कविता आन्दोलन थे, लेकिन इनका विस्तार स्वतंत्रता बाद की किवताओं पर भी पड़ा। प्रयोगवाद का साहित्यिक विकास नयी कविता के रुप में हुआ। प्रगतिवाद का आन्दोलन के रुप में उतना प्रत्यक्ष विकास भले न हुआ हो लेकिन बाद की कविता पर प्रगतिवाद की वैचारिकी का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा। प्रगतिवाद के प्रभाव से ही क्रमशः प्रगतिशील कविता, जनवादी कविता, जन - संस्कृति की कविता, प्रतिबद्ध कविता की अवधारणाएँ सामने आईं। कह सकते हैं कि प्रगतिशीलता, समकालीनता, प्रतिबद्धता जैसी अवधारणाएँ व्यापक रुप से प्रगतिवाद का ही सम - सामयिक रुपान्तरण थीं। इतिहास में कोई पूर्ण तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। जिसे हम घटना का प्रारम्भ और समापन घोषित कर दें। तिथि निर्धारण का लचीला एवं सुविधाजनक रुप ही हमारे सामने होता है। **1947** ईसवी की घटना के समय, साहित्यिक स्तर पर प्रयोगवादी आन्दोलन चल रहा होता है, जो **1951** के दूसरे सप्तक से समाप्त होता है या नयी कविता में रुपान्तरित होता है। उसके पश्चात् साठोत्तरी कवित, अ-कविता, मोहभंग की कविता, जनवादी कविता, प्रतिवद्ध कविता, उत्तर-आधुनिक कविता, विर्मश केंद्रित कविता, समकालीन कविता, तथा इक्कीसवीं शती की कविता जैसे कई नाम हिन्दी कविता के साथ जुड़ते गए। विभिन्न काव्य आन्दोलन युग-समाज में आये बदलाव का ही संकेत करते हैं। इन बदलावों को हम एक आरेख/तालिका के माध्यम से स्पष्ट रुप से देख सकते हैं –

1951 – 1959 - नई कविता

1960 – 1965 - साठोत्तरी कविता/ अकविता

1965 – 1975 - मोहभंग की कविता

1975 – 1990 - जनवादी कविता

1990 – 2012 - उत्तरआधुनिकता/ विमर्श कविता/ समकालीन कविता

यहाँ हमें ध्यान रखना होगा कि ये नामकरण सुविधा की दृष्टि से रखे गये है। किसी भी युग में कोई एक प्रवृत्ति ही गतिशील नहीं होती, एक साथ ही कई प्रवृत्तियाँ काम करती रहती है। आलोचक अपनी दृष्टि - विचारधारा के स्तर पर किसी एक प्रवृत्ति को मुख्य मानकर उस पूरे युग का एक नामकरण स्थिर करता है। लेकिन बाद के समय में दूसरा आलोचक उस युग की दूसरी प्रवृत्ति को मुख्य मान लेता है। जैसे हिन्दी कविता के संदर्भ में कहें तो आदिकाल एवं रीतिकालीन कविता के कई नामकरण इसी सिद्धान्त के कारण मिलते है। दूसरी समस्या कालगत नामकरण को लेकर आरम्भ होती है। जैसे सन् **1960** के बाद की कविता को समकालीन कविता भी कहा गया और नवलेखन की कविता भी। लेकिन आज की स्थिति ने ये नामकरण अप्रासंगिक हो गये हैं। कालगत नामकरण की यही सीमा है, इसीलिए प्रवत्तिगत नामकरण ही इतिहास में दीर्घकालिक होत है और साहित्यिक प्रवृत्ति को समझने में हमारी मदद भी करता है।

11.3.2.1 स्वातंत्र्योत्तर कविता : एक परिचय

जैसा कि कहा गया, स्वातंत्र्योत्तर कविता यात्रा की विकास यात्रा सीधी -सपाट नहीं है। प्रयोगवाद का प्रवर्तन अज्ञेय करते हैं। नयी कविता का नामकरण भी वही करते हैं और तीसरे सप्तक का संपादन भी। इसी प्रकार रामविलास शर्मा की कृतियाँ 'तारसप्तक' में संकलित हुई हैं, लेकिन मूलरूप से वे प्रगतिशील कवि रहे है। मुक्तिबोध भी 'तारसप्तक 'के कवि हैं लेकिन रूपवादी रूझानों से उनका वास्ता नहीं रहा है। फिर भी कुछ प्रवृत्तियाँ रही है, जिनके कारण उनमें अंतर किया गया है। प्रयोगवाद के प्रारम्भ होने के पीछे 'तारसप्तक' नामक काव्य-संकलन की भूमिका रही है। 'तारसप्तक' के संपादक अज्ञेय थे ओर इसमें सात कवि शामिल हैं। द्वितीय तारसप्तक का प्रकाशन सन् **1951** ई. में हुआ। इस सप्तक का संपादन भी अज्ञेय करते हैं। लेकिन अन्य कवि बदल गए हैं। द्वितीय तारसप्तक के प्रकाशन से ही 'नयी कविता ' की शुरुआत मानी जाती है। कुछ लोगों के अनुसार अंग्रेजी साहित्य के ' न्यू पोयट्री' आन्दोलन का प्रभाव नयी कविता आन्दोलन पर पड़ा है। पश्चिम के आन्दोलन से प्रभावित होकर भी यह आन्दोलन अपने देश की भूमि, परिस्थितियों की उपज है। **1954** ईसवी में प्रकाशित 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन के उपरान्त इस आन्दोलन को विशेष बल मिला। इसके अतिरिक्त 'प्रतीक' 'कृति', 'कल्पना', 'निकष', 'नये पत्ते', 'कखग', आदि अनेक पत्रिकाओं का नयी कविता के विचारधारात्मक सरोकारों के प्रतिष्ठापन में योगदान रहा।

स्वातंत्र्योत्तर काल से ही जनता के सामने जो चुनौतियाँ और समस्यायें थी , वे साठ के बाद और गहरा गई। व्यवस्था की अमानवीयता, निर्ममता, शोषण, दमन, अत्याचार, बर्बरता बढ़ती गई। व्यवस्था के प्रति मोहभंग की सबसे तीव्र प्रतिक्रिया मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों में हुई। हिंदी के अधिकांश रचनाकारों की साठोत्तरी पीढ़ी इसी वर्ग से आयी थी। स्वभावतः साहित्य में अधैर्य की अभिव्यक्ति हुई । जगदीश चतुर्वेदी की पत्रिका सन् **1963** में 'प्रारम्भ' नाम

से प्रकाशित हुई , जिसमें उन्होंने 'अकविता' नाम की घोषणा की , परन्तु शुरू में कविता की इस नयी दिशा को 'अभिनय काव्य' कहा गया। **1965** में श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्र त्यागी और मुद्राराक्षस के सम्मिलित

सहयोग से 'अकविता' संकलन निकाला गया, जो **1969** तक निकलता रहा, जिसका 'अकविता' नामक नयी काल-प्रवृत्ति का स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। मोटे तौर पर सन् **1960** से **1963** की एब्सर्ड किस्म की कविताओं के लिए 'अकविता' नाम रूढ़ हो गया। इस धारा के कवियों में श्याम परमार, सौमित्र मोहन, जगदीश चतुर्वेदी, मोना गुलाटी, निर्भय मल्लिक, राजकमल चौधरी, कैलाश बाजपेयी, आदि मुख्य हैं। विद्रोह की अपनी नाटकीय मुद्रा के बावजूद अकविता अपने मूल रूप में यथास्थितिवाद के विरूद्ध बदलाव के संघर्ष को कमजोर बनाती हैं।

सत्ता के प्रति असंतोष एवं विद्रोह का स्वर अकवितावादी कवियों के नकार में व्यक्त हुआ वहीं दूसरा रूप विद्रोही अराजकतावाद में परिणत हुआ। पहले की अपेक्षा काम -कुंठा की अभिव्यक्ति इस धारा में कम रही। सन् **1965** के बाद विशेषकर सन् **68** के आसपास धूमिल , लीलाधर, जगूड़ी, चन्द्रकांत देवताले, वेणु गोपाल, कुमार विकल, अरूण कमल आदि की रचनाएँ सामने आई। इन रचनाकारों मे मध्यवर्गीय अराजकतावाद तो था, लेकिन अपने तीव्र -व्यवस्था विरोध के कारण इनकी रचनाएँ विशेष संदर्भवान हुई। यह युग मुख्यतः अनास्थावादी कविता का ही युग था। सब कुछ को अस्वीकार करने की यह मुद्रा केवल हिन्दी कविता में ही नहीं वरन् समस्त भारतीय भाषाओं की कविता में दिखती है। बंगाल में 'भूखी पीढ़ी', 'वीट पीढ़ी' के नाम से शुरू हुई साठात्तरी कविता, तेलगु में 'दिगम्बरी पीढी', मराठी में 'आसो' तथा गुजराती पंजाबी में ''अकविता'' नाम से जानी गयी। विदेशों में भी इसी समय इस प्रकार की कविता हेा रही थी । अमेरिका में इस तरह की कविता को 'बीट जनरेशन' कहा गया। इग्लैण्ड में 'एंग्री यंग मैन' नामक पीढ़ी व्यवस्था के असंतोष पर ही पैदा हुई थी। इसी प्रकारा जर्मनी में 'छली गयी पीढ़ी' और जापान में 'हिगकुशा' नामक क्षुब्ध पीढी का जन्म हुआ। अमेरिका में 'बीट जनरेशन' की तरह भूखी पीढ़ी भी जन्मीं, जिसका नेतृत्व एलेन गिसवर्ग ने किया। बंगाल में तो 'भूखी पीढ़ी' के साथ 'कविता दैनिकी' या 'कविता घण्टिकी'भी लिखी गई। इसी के प्रभाव से हिंदी में भी अकविता, बीट कविता, श्मशानी कविता, युयुत्सावादी कविता, विटनिक कविता, विद्रोही कविता, नवप्रगतिशील कविता आदि अनेक नाम सामने आये। डॉ**0** जगदीश गुप्त ने अपने निबंध 'किसिम की कविता' में लगभग चार दर्जन नाम गिनाये है। मूल्यहीनता के विरूद्ध इनकी प्रतिक्रिया कभी - कभी अराजक, उग्र और दुस्साहसिक विचारधारा की शक्ल में भी सामने आयी।

सन् **1975** ई**0** तक आते -आते व्यवस्था विरोध की स्थिति में आक्रामकता कम होने लगी थी। विद्रोह की वाणी को व्यवस्थित रूप प्रदान करने की कोशिश की जाने लगी । इस प्रकार की कविताओं को जनवादी कविता कहा गया है। 'जनवादी कविता' एक तरह से प्रगतिवादी आन्दोलन का ही विस्तार थी। प्रगतिवादी वर्ग-वैयम्य की भावना से इतर जनवादी कविता ने जन केंद्रित भावनाओं को केंद्र मं स्थापित करने की पहल की। सन् **1990** के बाद भूमण्डलीकाण-वैश्वीकरण की गूँज भारत में भी सुनाई पड़ने लगी थी। भारत सरकार के उदारीकरण/ मुक्त व्यापार इसी दिशा के कदम थे। यंत्रों का अधिकाधिक प्रयोग एवं तकनीक इस विचारधारा के प्रायोगिक उपक्रम बने। इस युग को 'उत्तर - आधुनिक काल' कहा गया। कुछ लोग इसे 'विमर्श केंद्रित काल' भी कहते हैं। इस युग की कविता ने पुरानें मूल्यों (आधुनिक)पर प्रश्न-चिह्न लगाया और किसी भी सिद्धान्त को अंतिम मानने से मना कर दिया। एक ओर जहाँ कविता का लोकतंत्रीकारण हुआ, वहीं दूसरी ओर विषय-वस्तु में अराजकता का दर्शन भी हुआ।

11.3.2.2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख आन्दोलनों का आपने अध्ययन का लिया है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का आपने संक्षिप्त में अध्ययन कर लियर है। आइए अब हम स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर (कवि) के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी कविता का प्रमुख काव्य-आन्दोलन 'दूसरा सप्तक' रहा है। सप्तक के माध्यम से और सप्तकेत्तर कई कवियों का आगमन हुआ। यहाँ हम प्रमख कवियोंका परिचय पाने का प्रयास करेंगं। शमशेर बहादुर सिंह को हिन्दी में 'कवियों का कवि' कहा गया है। चित्रकला, संगीत और कविता जहाँ आपस में घुल-मिल जातें हैं, वहाँ शमशेर की कविता बनती है। शमशेर कविता में कुछ बिन्दुओं, संकेतों के माध्यम से अर्थ की सृष्टि करते हैं। 'बात बोलेगी', 'चुका भी नहीं हूँ में' कविताएँ, 'कछ ओर कविताएँ शमेशर की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'मुक्तिबोध' ने अपने कविन प्रतीकों और फैंटेसी शिल्प के रचाव से तत्कालीन व्यवस्था की सभ्यता -समीक्षा की है। 'चाँद का मुहँ टेढ़ा है', 'भूरी - भूरी खाक धूल' जैसे काव्य-संग्रह में आपकी कविताएँ संग्रहीत हैं। समाज को बदलने की चिंता आपकी कविताओं की केंद्रीय समस्या है, जिसे आपने मार्क्सवादी विचारधारा को कविता में ढाल कर पूरा किया है।

भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएँ बोलचाल की भाषा और लय में जीवन की विषम स्थिति को उकेरती हैं। 'गीत फरोश' कविता अपने लोकभाषा और लय-विधान के कारण चर्चित रही हैं। 'सतपुड़ा के जंगल', 'कमल के फूल' आपकी अन्य रचनाएँ हैं। रघुवीर सहाय दूसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि है। मनुष्य जीवन की नियति को व्यापक संदर्भ में आपकी कविता उठाती है। 'सीढ़ियों पर धूव में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हँसो-हँसो जल्दी हँसो' जैसे काव्य-संग्रह वर्तमान विसंगतियों के आधार पर निर्मित हुए हैं। धर्मवीर भारती की सामाजिकतां व्यक्तिवादी धरातल से होकर निर्मित हई हैं। 'ठढ़ा लोहा' जैसी रचनाएँ किशोर अल्हड़ता से प्रभावित है। 'इन फिरोजी ओठों पर/बरबाद मेरी जिन्दगीं ' भारती के शुरूआती कविताओं की मुख्य थीम हैं। 'अंधा-युग' तक आते-आते धर्मवीर भारती पूरी व्यवस्था को कटघरे में खड़ा कर देते हैं/आस्था, मूल्य, विश्वास, कर्त्तव्य, सत्य, सभी अपना अर्थ खो चुके हैं ऐसी स्थिति में फिर समाज की अगली दिशा क्या होगी ? यह धर्मवीर भारती की भी अपनी सीमा है। मानव-नियति की सार्थकता का प्रश्न कुँवरनारायण की रचना 'आत्मजयी' की केंद्रीय समस्या है। कुँवरनारायण का पहला काव्य 'चक्रव्यह' आधुनिकता की मनोदशा के बीच निर्मित हुआ है। 'परिवेशः हम-तुम ' ओर 'अपने सामने ' जैसे काव्यों में उनकी विषय-वस्तु व्यापक संदर्भो को अपने में समेटने में सफल हई है। केदारनाथ सिंह तीसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि हैं। केदार अपने 'रुप - रस - वर्ण - स्पर्श - गंधी ' विंब योजना के कारण विशिष्ट हैं (बच्चन सिंह) 'जमीन पक रही है, अभी बिल्कुल अभी', 'यहाँ से देखो' , 'अकाल में सारस', 'बाघ तथा अन्य कविताएँ', जैसे संग्रह केदार की रचनाओं के मुख्य संग्रह हैं । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तीसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि हैं। सर्वेश्वर कविताओं में समकालीनता के कई आयाम देखने को मिलते हैं। 'काठ की घंटियाँ', 'बाँस का पुल', 'एक सूनी नाव' और गर्म हवाएँ' आपके प्रमुख काव्य-सग्रह हैं। सप्तकेतर कवियों मे श्रीकान्त वर्मा महत्वपूर्ण कवि हैं। 'दिनारंभ', 'माया-दर्पण', 'जलसाघरः मगध' आपके महत्वपूर्ण काव्य- संग्रह हैं । नरेश मेहता की कविताएँ वैदिक संस्कृति और लोक संस्कृति के संदर्भो से निर्मित हुई हैं। 'संशय की एक रात' लम्बी कविता के रुप में काफी चर्चित हुई। छठे दशक के हिन्दी कविताओं की अगुवाई राजकमल चौधरी ने की। 'कंकावती' एवं 'मुक्तिप्रसंग' में राजकमल चौधरी का कवित्व अपनी समस्त संभावनाओं एवं सीमा के साथ चित्रित हुआ है। राजकमल चौधरी ने नंगेपन को गुस्से के साथ चित्रित किया है। सामाजिक मूल्यहीनता का पर्दाफाश करते-करते आपअराकतावाद तक चले जाते हैं। सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' इस दौर का अन्य बड़ा कवि है। 'संसद से सड़क तक' एवं 'कल सुनना मुझे' आपके महत्वपूर्ण कविता संग्रह हैं। 'धूमिल' की कविता अपने चुस्त मुहावरे एवं सपाटबयानी के कारण चर्चित रही है।

अभ्सास प्रश्न **2)**

(क) निम्नलिखित वाक्यों की रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1) प्रयोगवाद का साहित्यिक विकास ..... के रुप में हुआ।

2) दूसरे सप्तक का प्रकाशन वर्ष ..... है।

3) नयी कविता का समय ..... के बीच का है।

4) न्यू पोयट्री' आन्दोलन का सम्बन्ध ..... से है।

5) प्रयोगवाद का सम्बन्ध ..... के प्रकाशन से है।

(ख) निम्नलिखित कथन में सत्य/असत्य बताइए।

1) नयी कविता का प्रकाशन वर्ष **1954** है।

2) 'प्रारम्भ' पत्रिका के सम्पादक जगदीश गुप्त है।

3) अकविता में एब्सर्ड की प्रवृत्ति मिलती है।

4) भूखी पीढ़ी का मुख्य सम्बन्ध बंगाल से है।

5) 'किसिम-किसिम की कविता' निबन्ध का सम्बन्ध जगदीश गुप्त से है।

11.4 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति क्या है **?** इसे स्पष्टतया बता पाना कठिन है। कारण यह कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् न तो कोई काव्य प्रवृत्ति लम्बे समय तक चली और न एक ही मुख्य काव्य-प्रवृत्ति थी। आधुनिक स्वचेतनवृत्ति के परिणामस्वरुप मानवीय समाज तेजी से बदल रहा है, जिसके कारण अनुभूतियों में भी बदलाव की प्रक्रिया तीव्र हो गई है। फलतः साहित्य/कविता मे भी मानवीय अनुभूतियों के बदलाव की प्रक्रिया तेज हुई है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के कई आन्दोलन अपनी विषय-वस्तु एवं ट्रीटमेंन्ट में अन्य काव्य आन्दोलनों से भिन्न थे। वस्तुतः नवीन प्रवृत्तियों ने ही नवीन काव्य-आन्दोलनों को जन्म दिया। प्रयोगवाद की प्रवृत्ति व्सक्तिवाद एवं रुप की रही। नयी कविता ने अस्तित्ववादी रूझानों के बावजूद 'लघुमानव'को नही छोड़ा । साठोत्तरी कविता में नकारवादी तत्व ज्यादा थे। मोहभंग की कविता गुस्से, विद्राह की कविता है। जनवादी कविता जनभावनाओं के साथ ही लोकवादी रूझानों को लेकर चलती है। उत्तर- आधुनिक कविता विमर्श को केंद्र में खड़ा करती है।

11.4.1 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की वैचारिकी

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रवृत्ति की तरह ही वैचारिकी के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसे भी हिन्दी कविता की प्रवृत्ति की तरह किसी निश्चित वैचारिकी से नहीं बाँधा जा सकता । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का पहला काव्यान्दोलन 'नयी कविता'था। इस आन्दोलन पर पूँजीवाद के व्यक्तिवाद फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद एवं सार्त्र के अस्तित्ववाद का गहरा प्रभाव पड़ा। व्यकितवादी भावनाएँ समाज से कटकर अपनी सत्ता स्थापित करने पर बल देती हैं। 'यह दीप अकेला' एवं 'नदी के द्वीप' जैसी भावनरएँ इसी की प्रतिध्वनि हैं। 'आधुनिक मनुष्य मौन वर्जनाओं का पुंज है' जैसे वाक्य मनोविश्लेषण की देन हैं वहीं फेंटेसी शिल्प का प्रयोग एवं जिजी विषा की भावना अस्तित्ववाद की देन हैं। पूँजीवादी बौद्धिकता ने सारे पुराने मूल्यों पर प्रश्न- चिह्न भी लगाया। 'एक क्षण-क्षण में प्रवहमान व्याप्त संपूर्णता' जैसे वाक्य अस्तित्ववाद की ही प्रतिध्वनि है। मार्क्सवादी विचारधारा ने स्वातंत्र्योत्तर साहित्य को सर्वाधिक

प्रभावित किया है। प्रगतिवादी विचारधारा के केंद्र में तो मार्क्सवाद था ही, प्रयोगवाद के अधिकांश कवि मार्क्सवादी ही थे। 'नयी कविता' के दौर के कवियों पर मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह इत्यादि की काव्य - ऊर्जा भी मार्क्सवाद ही था। मोहभंग की कविता, जनवादी कविता एवं उत्तर - आधुनिक कविताओं के मूल में भी मार्क्सवाद विचारधारा ही है। मार्क्सवाद स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता को जन - जीवन से जोड़कर सामाजिक संघर्ष को गति प्रदान की। 'अधेरे मे' कविता व्यापक लोकयुद्ध की संभावना से युक्त होकर रची गई। सन् **1990** के बाद की कविता पर उत्तर - आधुनिक विमर्शों का प्रभाव देखा जा सकता है। यह विचारधारा तकनीक को केंद्र में ले कर चलती है।

11.4.2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की आलोचनात्मक संदर्भ

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता से कई मायने में अलग है। स्वतंत्रता पूर्व की कविता (समाज की ही भाँति) सीधे-सादे ढंग से निश्चित लक्ष्यों एवं मूल्यों को लेकर चलने वाली कविता रही है। भारतेन्दु कालीन कविता भक्ति-नीति-श्रृंगार के आधार पर विकसित हुई हैं। द्विवेदी कालीन कविता के मूल में सुधारवादी भावना है। छायावाद के मूल में जहाँ नवजागरणवादी चेतना काम कर रही है, वहीं प्रगतिवाद के मूल में वर्ग-वैषम्य की भावना। वही प्रयोगवाद के मूल में नवीन सत्यों की खोज काम कर रही है। इसके विपरीत नयी कविता और बाद के काव्यान्दोलनो का हम सीधे - सादे ढ़ंग से मूल्यांकित नहीं कर सकते। मुक्तिबोध में एक ओर जहाँ प्रगतिवादी तत्व है वहीं दूसरी ओर प्रयोगवादी एवं अस्तित्ववादी रूझान भी कम नहीं हैं। विचारधारा का आग्रह तो बढ़ा लेकिल इसके संभावित खतरे की ओर भी लोगों का ध्यान कम नहीं गया। अब कविता के विषय-वस्तु में विविधता आई। समाकालीनता बोध ने कविता को ज्यादा प्रभावित किया। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता अपनी की विषयवस्तु के ऊपर सबसे बड़ा आक्षेप यह लगाया गया है कि इसमें व्यक्तित्व-निर्माण का घोर अभाव है। व्यक्तित्व-निर्माण की जगह आज की कविता उपभोक्ता पैदाकर रही है। वर्तमान की विसंगतियों का चित्रण तो है, किन्तु संवेदना का अभाव है।

11.4.3 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का भाषागत संदर्भ

साहित्यिक भाषा की सबसे बड़ी विशिष्ठता यह होती है या होनी चाहिए कि वह अर्थ की वृहत्तर छवियों को कलात्मक ढंग से सम्प्रेषणीय बनाये। यानी सबसे पहले तो यह कि उसमें बहुअर्थीय छवियों को धारण करने की क्षमता हो। कविता के इसी गुण के कारण वह हर युग में अपनी प्रासंगिकता बनाये रखती है। बड़े कवियो की कविताएँ इसीलिए हर युग में संदर्भवान होती है। कविता का दूसरा प्रमुख गुण यह होना चाहिए कि वह कलात्मकता के मानक का पूरी तरह पालन करे। कविता की बड़ी विशिष्ठता यह होनी चाहिए कि वह सम्प्रेषणीय हो । सम्प्रषणीयता के लिए सरल भाषा के साथ ही लोकबद्धता की अनिवार्यता होती है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की भाषा में जहाँ एक ओर लोकधुनों का प्रयोग है (भवानी प्रसाद मिश्र, गोरख पाण्डेय इत्यादि) वहीं दूसरी और प्रतीकों-विम्बों का सुन्दर प्रयोग है (अज्ञेय, केदारनाथ सिंह, शमशेर आदि)। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की भाषा एक ओर जहाँ विसंगतियों का पर्दाफाश कर पाने में सक्षम है (रघुवीर सहाय, धूमिल आदि) वहीं दूसरी ओर लोकवद्धता से भी जुड़ी हुई है।

अभ्यास प्रश्न **3)**

(क) कोष्ठक में दिए गए शब्दों को भरकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. 'लघु मानव' का सम्बन्ध ..... से रहा है

(प्रयोगवाद/प्रगतिवाद/नयी कविता)

2. 'यह दीप अकेला कविता' का सम्बन्ध ..... की प्रवृत्ति से है।

(मनोविश्लेषणवाद/व्यक्तिवाद/अस्तित्ववाद)

3.मुक्तिबोध ..... विचारधारा के कवि हैं।

(मनोविश्लेषणवाद/अस्तित्ववाद/मार्क्सवाद)

4. .....के मूल में वर्ग-वैषम्य की भावना काम कर रही है।

(प्रगतिवाद/प्रयोगवाद/अस्तित्ववाद)

5. बिम्ब प्रयोग की दृष्टि से ..... महत्वपूर्ण कवि हैं।

(अज्ञेय/केदारनाथ/नागार्जुन)

11.5 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का मूल्यांकन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के इतने आयाम और धरातल हैं कि उसका मूल्यांकन करना अपने आप में जटिल (कठिन) कार्य है। कारण यह कि यह एक लम्बा कालखण्ड है, इसमें कई आन्दोलन हें और यह आन्दोलन विभिन्न धरातल पर विकसित हुए हैं। एक बात जरूर यहाँ हम कहना चाहते हैं, और वह यह कि हिन्दी कविता में विचारधारा का आग्रह लगातार बढ़ता गया, जिसके कारण संवेदना गौण होती चली गई। व्यंग्य, मुहावरे, विसंगति, विडम्बना, अंतर्विरोध जैसे तत्वों से कविता जरूर समृद्ध हुई लेकिन यह अनुभूति की सघनता की कीमत पर ज्यादा हुई। कहने का भाव ज्यादा हुआ. बजाय चित्र निर्मित करने या भाव निर्मित करने के, कविता के प्राथमिक कार्य के। विचारधारा एवं विमर्श के अत्यधिक दबाव से कविता की संवेदना तत्व क्रमशः क्षीण होता गया। आज जब कविता के पाठकीय संकट का खतरा मौजूद हो तब कविता को पुनः अपनी भूमिका के तलाश की आवश्यकता है।

11.6 सारांश

- स्वातंत्र्योत्तर काल की हिन्दी कविता से तात्वर्य यन् **1947** के बाद की कविता से है। द्वितीय तारसप्तक **1951** से इसे स्पष्टतया मान सकते है।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की कविता और बाद की कविता में 'स्वतंत्रा' एक आवश्यक प्रत्यय है, इससे हम दोनों कविताओं की तुलना के माध्यम से जान सकते हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर काल की कविता पर राजनीतिक, सामाजिक,आर्थिक एवं धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर काल की कविता में कई काव्यान्दोलन निर्मित हुए, जो एक दूसरे से भिन्न धरातल पर विकसित हुए हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर कविता विषयवस्तु एवं भाषा के धरातल पर पहले की कविता से भिन्न किस्म की कविता रही है। पहले की कविता में जहाँ भावगत स्पष्टता है, वहीं स्वातंत्र्योत्तर कविता में जटिल परिवेश को जटिल ढंग से व्यक्त किया गया हैं।

11.7 शब्दावली

- संवेदनशीलता - भाव एवं बुद्धि के योग से उत्पन्न प्रत्यय
- सृजनशीलता - रचनात्मक कार्य की स्थिति
- अंतर्विरोध - परस्पर विरोधी स्थिति
- विसंगति - असंगत स्थिति
- संत्रास - भय एवं पीड़ा जनक स्थिति
- उत्तर-आधुनिकता - आधुनिकता के बाद का काल
- विकेन्द्रीकरण - किसी वस्तु ,विचार का एक केन्द्र में न पाया जाना
- प्रतिबद्धता - किसी विचार के प्रति दृढ़ निश्चय की स्थिति
- समकालीनता - अपने काल का, वर्तमान काल में, एक साथ
- अराजकता - किसी विचार, स्थिति में अनियन्त्रण की स्थिति
- वर्ग- वैषम्य- दो विपरीत वर्गो में विरोध की स्थिति

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास **1)**

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. सत्य

अभ्यास **2) (**क) **1.** नयी कविता **2. 1951** **3. 1951-1959**

4. तारसप्तक **5.** नयी कविता

(ख) 1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

अभ्यास प्रश्न **3)** **1.** नयी कविता **2.** व्यक्तिवाद **3.** मार्क्सवाद

4. प्रगतिवाद **5.** केदारनाथ सिंह

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, डॉ. धीरन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश - भाग एक, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

2. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन।

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन।

11.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

2. सिंह, डॉ बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के विभिन्न आन्दोलन का विकासक्रम स्पष्ट कीजिए।

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण कवियों का परिचय प्रस्तुत कीजिए।

इकाई **12** नई कविता: सन्दर्भ और प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 नई कविता का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य
12.3.1 छायावादोत्तर गीत धारा
12.3.2 छायावादोत्तर कविता का प्रगतिवादी स्वर
12.3.3 प्रयोगवाद
12.4 नई कविता की प्रवृत्तियाँ
12.5 नई कविता: संवेदना का स्वरूप
12.6 नई कविता: भाषा और रचनात्मक वैशिष्ट
12.7 नई कविता के कवि
12.7.1 अज्ञेय
12.7.2 मुक्तिबोध
12.7.3 शमशेर बहादुर सिंह
12.7.4 धर्मवीर भारती
12.7.5 विजयदेव नारायण साही
12.8 सारांश
12.9 शब्दावली
12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

हिन्दी कविता के इतिहास में नई कविता का दौर काव्य रचना और आलोचना के स्तर पर महत्वपूर्ण विचारोत्तेजना और बहस का दौर है। नयी कविता में जिस बदली हुई संवेदना, जीवनानुभव व भाषा का रूप दिखाई देता है उसके आरम्भ की स्थिति **1930** के आस-पास उभरती देखी गई है। सन **1936** में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ। पं**0** जवाहर नेहरू ने इस अधिवेशन की अध्यक्षता की और घोषित किया कि कांग्रेस का लक्ष्य स्वतंत्रता और समाजवाद है। इस घटना का एक समानार्थक रूप हमें लखनऊ में सन् **1936** में ही आयोजित प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन में दिखाई देता है जिसकी अध्यक्षता महान उपन्यासकार प्रेमचंद ने की थी और साहित्य को जनता की मुक्ति के लक्ष्य से जोड़कर देखा था। प्रेमचंद भी अपने लेखन में महाजनी सभ्यता की शोषक प्रवृत्तियों की आलोचना कर रहे थे। कहा जा सकता है कि नई कविता की यथार्थोन्मुखता की भूमिका के पीछे इन संक्रान्त स्थितियों के दबाव थे जो नये कवियों के भीतर उनकी अपनी वैचारिकी तथा रचनात्मकता के अनुरूप प्रतिफलित और स्थिर हुए। यहाँ जिस तथ्य को हम निर्णायक रूप में देखते हैं, वह है छायावादोत्तर कविता का छायावादी रूमानियत से मुक्ति का संघर्ष तथा अपने समय के यथार्थ को समझने और व्यक्त करने के लिए नयी अभिव्यक्ति प्रणालियों को अर्जित करने का उसका प्रयत्न। इस प्रक्रिया के कारण वह पूर्ववर्ती कविता से काफी भिन्न दिखाई देती है तथा 'नई कविता' कही गई है।

1**2**.2 उद्देश्य:

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

नई कविता के आरम्भ को उसके ऐतिहासिक वस्तुगत परिप्रेक्ष्य सहित समझ सकेंगे।

नई कविता का अपने से पूर्व की कविता से अन्तर समझ सकेंगे।

नई कविता में निहित प्रवृत्तियों के अन्तर को जान सकेंगे।

नई कविता की संवेदना को समझ सकेंगे।

नई कविता के रचनात्मक वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।

नई कविता के कवियों के विषय में जान सकेंगे।

12.3 नई कविता का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य

नई कविता का समय प्रायः दूसरा सप्तक (**1951)** से **1960** तक माना जाता है। अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती और जगदीश गुप्त नई कविता के प्रमुख कवि हैं। अज्ञेय, साही, भारती और जगदीश गुप्त की कविताओं में काव्य प्रकृति और काव्य प्रवृत्ति के स्तर पर काफी समानता पाई जाती है। अज्ञेय की कविता का विकास आत्मपरकता के विशेष अर्थ के साथ हुआ है। नई कविता के सन्दर्भ में अज्ञेय को प्रायः उसके पुरोधा कवि के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका कारण 'सप्तकों' के सन्दर्भ में उनकी भूमिका है। 'सप्तकों' में आये कवि वक्तव्यों और अज्ञेय के सम्पादकीयों को लेकर कुछ अन्य प्रकार की चर्चायें भी हुई किन्तु कहा जा सकता है कि इतिहास की शक्ति ने अज्ञेय को नई कविता के पुरोधा के श्रेय से नवाजा है। अज्ञेय के संपादन में तारसप्तक (**1943)**

दूसरा सप्तक (**1951**) और तीसरा सप्तक (**1959**) में प्रकाशित हुआ। अज्ञेय के ही सम्पादन में 'चौथा सप्तक' भी प्रकाशित हुआ है मगर उसे ज्यादा चर्चा नहीं प्राप्त हुई।

'तारसप्तक' में संकलित कवि थे- गजानन माधव मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नेमिचन्द जैन, गिरिजा कुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे और अज्ञेय। 'दूसरा सप्तक' में शामिल कवि थे- हरिनारायण व्यास, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, शंकुत माथुर, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती तथा प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कुँअर नारायण, कीर्ति चौधरी, केदार नाथ सिंह, मदन वात्स्यायन, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना 'तीसरा सप्तक' के कवि थे। नई कविता का स्वरूप स्थिर करने में इन तीनों सप्तकों का विशेष योगदान था। विशेष रूप से 'तारसप्तक' और 'दूसरा सप्तक' की कविताएं इसके आरम्भ और क्रमशः अर्जित हुई संवेदना और शिल्प की परिपक्वता को सूचित करती है। इन दोनों काव्य संकलनों में उल्लेखनीय रूप से वैचारिकी का अंतर देखा गया जो 'तारसप्तक' में प्रायः अपने आभासी रूप में है और नई कविता के भीतर उनके बीच अंतर और स्पष्ट होता है। 'तारसप्तक' के अधिकांश कवियों पर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव है। विशेष रूप से मुक्तिबोध, नेमिचंद जैन, रामविलास शर्मा और भारतभूषण अग्रवाल पर। कविता का यह समाजवादी स्वर प्रगतिवादी कविता के मेल में था। यह कहा जा सकता है कि 'तारसप्तक' के कवि तेजी से बदलते समाज की मानवीय पुनर्रचना के संघर्ष से जुड़े हैं। वे समाज की संक्रान्त स्थितियों की जटिलता को समझ कर मनुष्य को उसके रूपान्तरण के संघर्ष से जोड़ना चाहते हैं और इसी परिप्रेक्ष्य में वे कविता की बदलती हुई भूमिका के विषय में गंभीर है। रचनात्मक स्तर पर बदले हुए भावबोध की समस्या के साथ संप्रेषण की समस्या भी आ जुटती है और अनुभावन की रूढ़ियों को तोड़ने की चुनौती भी, अतः इस दौर में कवियों के सामने चुनौतियाँ कई तरह की हैं। अतः हमें नई कविता का वस्तुसंगत विश्लेषण करने के लिए इस परिप्रेक्ष्य को समझ कर चलना होगा।

छायावादोत्तर कविता को छायावाद से अलगानेवाली काव्य प्रवृत्ति उसकी यथार्थ दृष्टि है। नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान' में सन् **1938** से नई काव्य प्रवृत्तियों को पूर्ववर्ती छायावादी काव्य प्रवृत्तियों से भिन्न होते देखा। उन्होंने लिखा कि- 'इस युग का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है यथार्थवादी रूझान' (नामवर सिंह, 'कविता के नये प्रतिमान')इस प्रकार छायावाद के बाद सामने आने वाली कवि पीढ़ी के सामने प्रमुख चुनौती थी अपने समय के यथार्थ के साक्षात्कार की तथा इस यथार्थ के लिए अर्जित यथार्थवादी दृष्टि के साथ छायावादी यथार्थविरोधी प्रवृत्तियों से संघर्ष की।

12.3.1 छायावादोत्तर गीत धारा

छायावादोत्तर काव्य परिदृश्य में प्रमुखतः तीन प्रकार की काव्यधाराएँ दिखाई देता है। छायावादोत्तर गीतधारा ने छायावादी स्वच्छन्द चेतना और स्वस्थ रागात्मकता की छायावादी विरासत को नया किया। यही नहीं बल्कि युगबोध का स्वरूप अपने बदलाव के साथ इसमें विन्यस्त हुआ। विशेषरूप से हरिवंशराय बच्चन की हालावादी कविताओं ने भाषा का एक नया मिजाज दिया जिसमें सहजता और रवानी थी। इस धारा के प्रमुख कवियों में बच्चन समेत गोपालदास नेपाली, अंचल, सोहनलाल द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा आदि कवि थे। विजयदेव नारायण साही ने इस काव्यधारा में छायावाद का अंत देखा साथ ही इसी के भीतर उन्हें नई कविता का आरम्भ भी दिखाई दिया। यह अवश्य है कि नई कविता की पृष्ठभूमि को छायावादोत्तर गीतों में घटित संवेदना और भाषा के बदलाव को एक तरफ करके नहीं देखा जा सकता। यह भी देखा जा सकता है कि इस काव्य धारा में नरेन्द्र शर्मा, दिनकर, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', शिवमंगल सिंह 'सुमन', शैलेन्द्र आदि कवि थे जिन्होंने बहुत सुन्दर गीत लिखे। इन गीतों में विसंगतियों के चित्र उभरे। जीवन संघर्ष का एक अनूठा पहलू किंचित दार्शनिक झलक देता हुआ सा इसमें प्रकट हुआ, विशेष रूप

से बच्चन के गीतों में। इसके अतिरिक्त इन गीतों का विषय प्रकृति, प्रेम, राष्ट्रीयता, मानवता, वेदना, ओज और प्रहार आदि थे। जहाँ तक इन गीतों की संवेदना का प्रश्न है तो इसमें अनुभूतिप्रवणता अधिक थी।

12.3.2 छायावादोत्तर कविता का प्रगतिवादी स्वर

प्रगतिवादी प्रवृत्तियाँ केवल कविता में प्रकट न होकर समस्त साहित्यिक विधाओं में प्रकट हुई। सन् **1936** में प्रगतिशील लेखक संघ का लखनऊ में प्रथम अधिवेशन हुआ। प्रगतिवादी कवि मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित थे। उनके लिए शोषित वंचित जन का आर्थिक सामाजिक मुक्ति का प्रश्न महत्वपूर्ण था। अपनी कविता को उन्होंने इस मुक्तिचेतना का पैरोकार बनाया। छायावादोत्तर दौर की प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविताओं के सन्दर्भ में एक तथ्य की समानता मिलती है। इन दोनों धाराओं में कवियों ने सचेतन रूप से छायावादी प्रवृत्तियों के प्रभाव को अस्वीकार किया। प्रगतिवादी कवियों ने अपने बदले हुए संघर्षधर्मी काव्यबोध के निकट छायावादी ढंग की भाषा की अनुपयुक्तता समझी, अतः अपने ऐसे परिवर्तित काव्य विषयों के लिए उन्हें व्यापक जीवन से जुड़ी हुई भाषा अनुकूल लगी। वस्तुतः यह काव्य भाषा वंचित मनुष्य के जीवन संघर्ष की कठिन दुनिया में अपनी प्रतिबद्धता के साथ प्रवेश कर रही थी और सौन्दर्य प्रतिमान बदल रहे थे। ये श्रम के जीवन से उभरते हुए सौन्दर्यबोधीय मूल्य थे। इस प्रकार प्रगतिवादी कविता ने अपने लिए जो मूल्य स्थिर किये वे प्रायः सर्वहारा यानी किसान मजदूर जनता की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति की पक्षधरता, समानतामूलक समाज का स्वप्न, सक्रिय सामाजिकता और मैत्रीभाव, जनता के संघर्ष की अभिव्यक्ति और उसकी शक्ति का चित्रण आदि थे।

12.3.3 प्रयोगवाद

नई कविता के सन्दर्भ में सबसे ज्यादा चर्चा प्रयोगवाद की हुई है तथा कुछ आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद का ही विकास माना है। यहाँ एक तथ्य समझ लेना चाहिए कि 'प्रयोगवाद' से नई कविता का इस प्रकार का सम्बन्ध मान लेने पर इसके भीतर निहित दो विपरीत स्वरों का विश्लेषण संभव नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त प्रयोगवाद की चर्चा कविता के संरचना विषयक प्रयोगों के सन्दर्भ में अधिक हुई है। अतः नई कविता को काव्यभाषा सम्बन्धी बदलाव के सन्दर्भ में समझने की स्थितियाँ बन जाती हैं। 'तारसप्तक' के सम्पादक अज्ञेय ने 'प्रयोग' शब्द का उपयोग कविता के रचनात्मक नवोन्मेष के सन्दर्भ में किया। वे भाव और भाषा की नवीनता के साथ-साथ इस प्रकार की नवीन संरचनाओं के अनुभावन या कि संप्रेषण के प्रश्न को भी उठा रहे थे। इस तरह 'तार सप्तक' में संग्रहीत कवियों की रचनाओं के सम्बन्ध में अज्ञेय के वक्तव्य की प्रातिनिधिकता मानी गई और 'प्रयोग' के प्रभाव की व्याप्ति समझकर उसे कविता के स्वर का प्रभावी अनुशासक मान लिया गया। अन्यत्र भी हम देख चुके हैं कि 'तारसप्तक' में संग्रहीत कवियों में सामाजिक सरोकार, रचनादृष्टि और संवेदना में परस्पर पर्याप्त अंतर था। यह अंतर इसी प्रकार नयी कविता के भीतर भी कायम रहा। इन्हें परस्पर दो विरोधी प्रवृत्तियों के रूप में पहचाना गया। 'नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में मुक्तिबोध ने लिखा है कि 'नई कविता में अनेक अवधारणाएं तथा अनेक वैयक्तिक दृष्टियाँ काम कर रही थीं'। (मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र)

अज्ञेय ने प्रयोग को दोहरा साधन कहा। इसमें शामिल कवियों को उन्होंने 'राहों के अन्वेषी' कहा है। प्रयोग को जो दोहरा दायित्व निभाना था वह क्रमशः इस प्रकार था- **(1)** नई वास्तविकता को उसकी जटिलता में प्रवेश कर समझना तथा **(2)** उस वास्तविकता में निहित आशयों की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम नयी अर्थ भंगिमाओं वाली भाषा की तलाश करना। इस प्रकार इस प्रयोगधर्मिता का बीज शब्द बन कर जो शब्द उभरा वह था 'अन्वेषण'। आगे चलकर विशेष रूप से अज्ञेय की कविता में इस 'अन्वेषण' को हम अतिरिक्त गरिमा के साथ प्रतिफलित होते देखते हैं। 'तारसप्तक' में संग्रहीत कवियों के स्वर की पहचान करते हुए हमने देखा कि प्रयोगधर्मिता का उनके लिए अपना

भिन्न अर्थ है। वे सभी अपने रचना स्वभाव के अनुसार चले हैं तथा उनमें से अनेक का झुकाव समाजवादी विचारधारा के प्रति है। इसके अतिरिक्त हमें विशेष रूप से 'तारसप्तक' की कविताओं में मध्यवर्गीय अनुभवों पर निर्भरता दिखाई देती है। यहीं से कवि की वह आत्मोन्मुखता समझी जा सकती है जिसका कारण विसंगतियों को गहराता हुआ वह सामाजिक अलगाव है जो सबसे ज्यादा शहरी मध्यवर्ग के अनुभव में आता है। छायावादी रूमानियत का अतिक्रमण करने के लिए प्रयोगवादी कवियों की कविता में बौद्धिकता का सन्निवेश दिखाई देता है। इस बौद्धिकता ने उनकी यथार्थ दृष्टि को तीखा किया। इसके कारण वे कवि अपने संक्रान्त समय के जटिल अनुभवों का साक्षात्कार संभव कर पाये तथा उसमें निहित विद्रूप को उधेड़ सके। यहाँ हम 'तारसप्तक' में संग्रहीत अज्ञेय की 'शिशिर का राकानिशा' शीर्षक कविता की ये पक्तिंया देखें : वंचना है चांदनी सित/झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार/शिशिर की राकानिशा की शांति है निस्सार/निकटतर- धंसती हुई छत, आड़ में निर्वेद/मूत्रसिंचित मृत्तिका के वृत्त में/तीन टांगो पर खड़ा नतग्रीव/धैर्यधन गदहा। (तारसप्तक-संपा, अज्ञेय) इस प्रकार हम यहाँ शुद्ध तत्सम की शब्द भंगिमाओं द्वारा यथार्थ का विद्रूप उद्घाटित होते देखते हैं। छायावादी कविता में रचनात्मकता को उभारने वाले शब्द यहाँ उस पूरे ऐश्वर्यमय बिंब को झूठ बता रहे हैं। अज्ञेय ने संक्रांत समय के बोध को कई तरह से देखा है। आधुनिक मनुष्य के मन और चेतना पर ऐसा समय एक भारी दबाव की तरह था। मूल्य संक्रमण की टकराहटें अलग थीं कहीं विद्रोह था तो कहीं कुण्ठा, कहीं प्रणयानुभूति की मांसलता के दबाव से उभरा आवेग तो कहीं संशय और पलायन। इस प्रकार इन कवियों के अन्तर्द्वन्द्वों के कई रूप थे। प्रयोगवादी कवियों में शब्दान्वेषण की प्रवृत्ति प्रमुख थी। प्रचलित शब्दों का नया उपयोग भी इनके विधान में था। डॉ. जगदीश गुप्त ने लिखा भी कि- 'आधुनिक कविता की भाषा खड़ी बोली केवल **50-60** वर्ष पुरानी है किन्तु कुछ कारणों से उसका दायित्व देशगत चेतना की उस विधा की अभिव्यक्ति करना हो गया है, जो उसकी अपेक्षा कहीं अधिक विकसित हो गई। (नयी कविता: डॉ. जगदीश गुप्त)।

अतः हम देखते हैं कि प्रयोगवादी कविता के लिए प्रयोग और अन्वेषण के साथ 'शब्द' का महत्व भी प्रमुख होकर सामने आया, बल्कि अन्वेषण धर्मिता की एक प्रमुख दिशा के रूप में सामने आया है, जो क्रमशः इस प्रकार है-

1. भाषा के रचनात्मक सामर्थ्य का अन्वेषण।

2. शब्दों की अर्थसंभावना की खोज।

3. शब्दों के अंतराल में गर्भित मौन का सृजनात्मक उपयोग।

4. जाने-पहचाने शब्दों की नयी अर्थ छवियों की खोज।

5. बहुआयामी जीवन के विस्तार में शब्दों का उनकी वैविध्यमयी अर्थक्षमता के साथ उपयोग।

अभ्यास प्रश्न: एक

प्रश्न **1:** रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

तार सप्तक का प्रकाशन वर्ष ..... है।

प्रयोगवाद का प्रवर्तक ..... को माना जाता है।

प्रगतिवाद का सम्बन्ध ..... विचारधारा से है।

'नई कविता और अस्तित्ववाद' शीर्षक किताब के लेखक ..... हैं

प्रश्न **2:** तीन या चार पक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) छायावाद से छायावादोत्तर कविता को अलगाने वाली काव्य प्रवृत्ति के विषय में बताइए।

.....

.....

.....

ख) 'प्रयोग' को दोहरा साधन किसने कहा है**?** इससे क्या अभिप्राय है।

.....

.....

.....

ग) 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' में संकलित कवियों के नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

प्रश्न **3:** सही और गलत लिखिए

क) प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ था।
ख) 'तारसप्तक' में संकलित कवियों में हरिनारायण व्यास हैं।
ग) प्रगतिवादी कविता का सम्बन्ध किसान मजदूर जनता के मुक्ति संघर्ष से है।

प्रश्न **4:** पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) नई कविता का स्वरूप स्थिर करने में सप्तकों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

ख) प्रयोगवादी कविता की अन्वेषण धर्मिता पर प्रकाश डालिए।

12.4 नई कविता की प्रवृतियाँ

हमने देखा है कि अनेक आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद का विस्तार माना है किंतु उसके निकट आकलन के बाद यह तथ्य सही नहीं लगता। नई कविता के भीतर एक ओर हम प्रयोगवादी कविता की भाषिक और अन्तर्वस्तुपरक नवीनता के अतिरिक्त आग्रह का स्थगित होना लक्ष्य करते हैं तो दूसरी ओर प्रगतिवादी कविता की वैचारिकी का अधिक सर्जनात्मक प्रतिफलन भी देखते हैं। 'नई कविता' का अभ्युदय 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के

साथ माना जाता है। नन्दकिशोर नवल ने उल्लेख किया है कि- दूसरा सप्तक के प्रकाशन के बाद अज्ञेय ने अपने एक रेडियो साक्षात्कार में सप्तकीय कविता के लिए 'नई कविता' नाम की प्रस्तावना की (बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य: संपा, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी)

नई कविता की अन्तर्वस्तु के विषय में एक मान्यता यह भी मिलती है कि इसका मुख्य स्वर अस्तित्ववादी है अर्थात् व्यक्ति स्वातंत्र्यवादी है। डॉ. रामविलास शर्मा ने नई कविता के भीतर अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों का प्रतिफलन लक्षित किया तथा इसकी कठोर आलोचना की। मुक्तिबोध की कविताओं पर भी उन्होंने अस्तित्ववाद का गहरा प्रभाव देखा है तथा उनमें समाजवादी दृष्टि की स्पष्ट और मजबूत पक्षधरता का अभाव माना। नई कविता के सन्दर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा ने लक्षित किया कि- 'हिन्दी के अधिकांश नई कविता लिखने वालों का हाल रोकांते जैसा है। ऊब, ऊबकाइ, अकेलापन, त्रास, भीड़ में अजनबीपन का अहसास होने की समस्या से परेशानी आदि-आदि लक्षण इनमें भी मिलते हैं। . . . . सार्त्र के नायक रोकांते को हर चीज थुलथुल, निर्जीव, लिजलिजी मालूम होती थी। हिन्दी के अस्तित्ववादी कवि आत्मवत् सर्वभूतेषु देखते हुए उसी प्रकार संसार और उसमें सजीव-निर्जीव पदार्थों का वर्णन करते हैं।' (डॉ. रामविलास शर्मा: 'नयी कविता और अस्तित्ववाद') . इस प्रकार रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी विचारधारा के केन्द्र से नई कविता के कवियों की व्यक्तिवादिता को चरम पर जाकर देखा और उनके खण्डित इतिहास बोध और अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों की आलोचना की। यद्यपि अज्ञेय जैसे कवि पर अस्तित्ववाद के ऐसे विघटनकारी अर्थ प्रभावी नहीं थे। कार्ल यास्पर्स जैसे विचारकों का प्रभाव उन पर अधिक था और वे व्यक्तित्व की खण्डित स्थिति से ज्यादा आत्मपर्याप्त सर्जनात्मक इकाई की बात करते थे और उसी अर्थ में उसकी सामाजिक भूमिका पर जोर देते थे। यह देखा गया कि मानव अस्तित्व को जानना-सहेजना नई कविता का केन्द्रीय आग्रह है। इस प्रकार 'अस्तित्ववाद' का इकहरे ढंग का प्रभाव' नई कविता' पर नहीं हैं किन्तु उसके भावबोध पर इसके प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता। यहाँ से हम क्रमशः नई कविता की प्रवृत्तियों की पहचान करें। इस प्रकार नई कविता के भीतर दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ पाई गई। एक, जिसमें व्यक्तिनिष्ठता प्रधान थी। यहाँ अभिव्यक्त मनुष्य की अन्तःप्रक्रियायें और संघर्ष एक संक्रान्त जटिल समय के अनुभवों से प्रभावित थे। दूसरे काव्यधारा पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव है। समाजोन्मुखता इस कविता के लिए जरूरी तत्व है। वस्तुतः कविता का यह प्रगतिशील स्वर है जो 'तारसप्तक' के बाहर तो मौजूद था ही 'तारसप्तक' में भी मौजूद था। यही नहीं बल्कि 'दूसरा सप्तक' के दौर में भी उससे बाहर के कवियों में ज्यादा सुसंगत ढंग से अभिव्यक्त हुआ। इस प्रकार इन दो अनुशासक प्रवृत्तियों के प्रभाव से 'नई कविता' में क्रमशः उभरने वाली विशेषताएं इस प्रकार थी।

व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना - नई कविता में इस आशय में हमें कई प्रयोग मिलते हैं। कुछेक बारीक अंतरों के साथ यही आत्मान्वेषण या कि व्यक्तित्व की खोज भी है। 'अनुभूति की प्रामाणिकता' में भी इसी आशय की ध्वनि है। मार्क्सवादी आलोचकों ने इसे यथार्थवाद विरोधी रचनादृष्टि की उपज माना है तथा रेखांकित किया है कि इसके भीतर व्यक्तिवादी रूझान काम कर रही थी। व्यक्ति केन्द्रिकता के ऐसे प्रभाव के कारण ही नई कविता की संवेदना में अनुभववादी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हुई। 'भोगा हुआ यथार्थ' जैसे प्रयोग भी इसी भावबोध के निकट के है। मैनेजर पाण्डेय ने नई कविता की इस प्रवृत्ति की कड़ी आलोचना करते हुए लिखा कि ''गैर यथार्थवादी लेखक समाजवाद के विरोधी, जनता की आकांक्षा की उपेक्षा करने वाले और व्यक्तिवाद के सहारे पूंजीवाद के पोषक सिद्ध होते हैं . . . साहित्य को आत्माभिव्यक्ति का पोषक मानते हुए व्यक्तित्व की खोज को ही अपनी रचना का लक्ष्य मानते हैं। (साहित्य और इतिहास दृष्टि- मैनेजर पाण्डेय.)

अज्ञेय के लिए 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' का अर्थ उसका संपृक्त सर्जनात्मकता में संभव होने का संघर्ष है। साही की चिन्तन भूमि में भी हम 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' के प्रश्न को 'लघुमानव' जैसे प्रत्यय से संवरते देखते हैं। उन्होंने भी इस व्यक्ति को

युगसंकट के सापेक्ष देखा है। इस प्रकार व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना के अलग-अलग रूप नई कविता के कवियों में प्रतिफलित हुए। विशेष रूप से अस्तित्ववादी वैचारिकी के प्रभाव भी कवियों में भिन्न-भिन्न ढंग से घटित होते दिखाई देते हैं। मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि कहीं यह अस्तित्वबोध संकट बोध के रूप में है, कहीं अस्मिता की खोज है तो कहीं अस्मिता के सर्जनात्मक संगठक तत्वों की तलाश का संघर्ष है।

अनुभूति की प्रामाणिकता - जैसा कि हमने देखा कि आत्मकेन्द्रिकता के सघन प्रभाव के कारण 'नई कविता' के कवियों ने 'अनुभूति की प्रामाणिकता' पर विशेष बल दिया। आलोचकों ने इसे ही लक्ष्य कर इस प्रकार की कविता को अनुभववादी कविता कहा है। मैनेजर पाण्डेय ने सन् **1951-52** से **60-61** के दौर में साहित्य की प्रधान प्रवृत्ति वैयक्तिकता और आत्मनिष्ठता मानी यद्यपि इस दौर की कविता में यथार्थवादी प्रवृत्ति भी मौजूद थी। किन्तु वैयक्तिकतावादी प्रवृत्तियों के फैलाव ने उसे प्रमुखता से उभरने नहीं दिया। 'अनुभूति की प्रामाणिकता के तर्क से उभरते यथार्थबोध तथा संवेदना को समाजवादी आलोचकों ने खण्डित या विच्छन्न माना। अनुभूति की प्रामाणिकता ने जीवनानुभवों के सामने आत्मबोध का वह सांचा रख दिया जिसकी सीमाएं थी। यहाँ से कवि ने यह अनुभव किया कि संक्रान्त और जटिल समय का यथार्थ उसकी अस्मिता को खण्डित कर कुंठा निराशा इत्यादि की ओर ढकेल देता है।

नई कविता के प्रखर प्रवक्ता लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'अनुभूति की प्रमाणिकता' को अनुभूति की ईमानदारी कहा है। उनके अनुसार यह व्यक्ति की स्वतंत्रता से सन्दर्भित सत्य का साक्षात्कार है। स्पष्ट है कि 'स्वविवेक' को वे कवि की सर्वोपरि शक्ति मानते हैं। जिसके द्वारा वह यथार्थ जगत से अपनी संवेदना, अर्थ और भाषा का चुनाव करता है। वस्तुतः 'अनुभूति की प्रामाणिकता' में कवि की आत्मोन्मुखता ही सबसे ज्यादा ध्वनित है।

क्षणबोध - नई कविता के कवि के अनुसार यह क्षणबोध क्षणिकता का बोध नहीं है। वे यह भी उद्घाटित करते हैं कि इसे परम्परा या भविष्य से कटा हुआ निरपेक्ष या खण्डित समझना भी ठीक नहीं है। यह 'क्षण' कविता में 'सृजन' का क्षण है इसलिए रागात्मक और गरिमामय है। अज्ञेय ने इसकी 'अद्वितीयता' को बहुत महत्व दिया है। वस्तुतः सृजनात्मकता के कारण ही यह आलोकित और अद्वितीय हो उठता है। अन्यत्र अज्ञेय कहते हैं कि सृजनात्मकता की गरिमा से भरापूरा 'क्षण' मनुष्य को मुक्त करता है। इस प्रकार के क्षणबोध में वे भौतिक स्थूलता का तिरस्कार करते दिखाई देते हैं। अज्ञेय की इस कविता में ऐसे क्षणबोध का अर्थ इस प्रकार उद्घाटित हुआ है-

एक क्षण क्षण में प्रवहमान/व्याप्त सम्पूर्णता/इससे कदापि बड़ा नहीं था महा अम्बुधि /जो/पिया था अगस्त्य ने।/एक क्षण। होने का/अस्तित्व का अजस्र अद्वितीय क्षण। (अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या: रामस्वरूप चतुर्वेदी में)।

यथार्थोन्मुखता - नई कविता के अस्तित्ववादी प्रभाव के अन्तर्गत काव्य रचना करने वाले कवियों ने यथार्थ को 'निजता' के केन्द्र से देखा है। उनके लिए यथार्थ 'संकटबोध' के रूप में उपस्थित होता है। वे जटिल और संक्रान्त परिवेश के दबाव से त्रस्त मनुष्य के अकेलेपन यातना और पीड़ा का साक्षात्कार तो करते हैं किन्तु एक ओर तो वे ऐसे यथार्थ को वस्तुगत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में न देखकर इतिहास से विच्छिन्न रूप में देखते हैं तथा दूसरे वे मनुष्य को इसके प्रति संघर्ष में प्रायः नहीं देखते। हम देखते हैं कि ऐसे भयावह यथार्थ के समक्ष उनका मनुष्य अपना 'अकेलापन' चुन लेता है और इसके द्वारा विभाजित और संत्रस्त पड़ी अपनी अस्मिता के अनुभवों को कहता-सुनता है। धर्मवीर भारती विजयदेवनारायण साही जैसे कवियों के यहाँ प्रायः ऐसे मनुष्य के अकेलेपन का साक्षात्कार मिलता है। लक्ष्मीकांत वर्मा के लिए नये कवि के समक्ष उपस्थित यथार्थ विषम और तिक्त है। उस परिवेश का सामना करते हुए उसे अपने अस्तित्व को संभालना है। अतः हम कह सकते हैं कि 'व्यक्ति की निजता' की धुरी मान कर चले

कवियों और आलोचकों ने अपने भावबोध में एक तरफ तो व्यक्ति की स्वतंत्रता का पहलू महत्वपूर्ण माना है और परिवेश को ऐसे व्यक्ति से द्वन्द्व में देखा है, तो दूसरी ओर परिवेश से अलगाव के इर्द-गिर्द गहराते यथार्थ की समझ उन्हें ऐसे व्यक्ति के अकेलेपन का अनुभव देती है। अतः व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ यह अकेलापन लगभग एक नियति की तरह आ जुड़ता है। हम अन्यत्र देखेंगे कि व्यक्तिवादी रचना प्रवृत्तियों ने अपने आशय को लेकर चलने वाली रचनाओं को गहराई का काव्य कहा है और व्यापकता को अर्थात् मनुष्य की सामाजिक सम्बद्धता यानि व्यापकता को लेकर चली रचनाशीलता पर उथलेपन का आरोप भी लगाया है। यहाँ तक कि प्रेमचंद तक पर सतहीपन का आरोप लगाया है।

अब हमें नई कविता की आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों के प्रतिरोधी पक्ष पर ध्यान देना चाहिए। मुख्य रूप से हमें मुक्तिबोध और शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं में व्यक्ति स्वातंत्र्य की सामाजिक सम्बद्धता और मनुष्य की मुक्ति के संघर्ष से जुड़ कर चली अर्थ छवियाँ दिखाई देती हैं। मुक्तिबोध नई कविता में कल्पनाप्रवण, भावुकतापूर्ण वायवीय आदर्शवादी व्यक्तिवाद के विरुद्ध यथार्थवादी व्यक्तिवाद की बगावत देखते हैं। (नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध,) अतः मुक्तिबोध व्यक्ति की जिस स्वतंत्रता की बात करते हैं उसमें यह देखा जा सकता है कि 'कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम' **(1950** में बर्लिन में उदित एक संगठन, जिसे शीतयुद्धीय राजनीति का सांस्कृतिक मूल्य निर्धारक माना जाता है) की प्रतिध्वनि नहीं है। इस तथ्य को ज्यादा अच्छी तरह से समझने के लिए हम चाहें तो एक रूपक का उपयोग कर सकते हैं। अस्तित्ववादी प्रभाव की आत्मकेन्द्रिकता की परवाह करने वाले कवियों के लिए मम और ममेतर के बीच का दरवाजा भीतर की ओर यानि 'मम' की ओर खुलता है, ममेतर में अवस्थित बहुत सारी चीजें सन्देहपूर्वक देखी जाती हैं जैसे वे 'मम' को निरर्थक या प्रदूषित कर देगी। मुक्तिबोध के लिए 'मम' की मुक्ति 'ममेतर' यानि समाज की मुक्ति से जुड़कर है। वे कहते भी हैं कि 'मुक्ति के रास्ते अकेले नहीं मिलते'। व्यक्ति स्वातंत्र्य को एक आदर्श मानते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है कि- ''फिर भी वह मानव गौरव की आधारभूत शिक्षा है। व्यक्ति स्वातंत्र्य का प्रश्न जनता के जीवन से उसकी मानवोचित आकांक्षाओं से सीधे-सीधे सम्बन्धित है किन्तु व्यवहारिक रूप से देखा जाए तो समाज में ऐसी आर्थिक स्थिति और सामाजिक स्थिति पैदा हो गई है जिसके कारण व्यक्ति स्वातंत्र्य व्यक्ति केन्द्रिकता का ही दूसरा नाम रह गया है।'' **(**मुक्तिबोध रचनावली खण्ड-**5)**

इस प्रकार मुक्तिबोध ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को प्रतिरोध से जोड़कर देखा है। यही नहीं बल्कि आधुनिकतावादी नई कविता के कवियों के क्षणबोध को भी चुनौती देते हुए वे लिखते हैं- ''केवल एक क्षण का उत्कर्ष करने के बजाय हमें लम्बी नजर फेंकनी होगी और वह सारा ताना बाना अंकित करना होगा जिससे वह समस्या एक विशेष काल और परिस्थिति में विशेष रंग और रूप में विकसित ग्रन्थिल हुई है। यह सब कार्य तथाकथित सौन्दर्यानुभूति से बाहर का कार्य है।'' **(**मुक्तिबोध, नई कविता का आत्मसंघर्ष **)**

12.5 नई कविता: संवेदना का स्वरूप

नई कविता की संवेदना में भी हम यथार्थवादी और यथार्थवाद विरोधी दृष्टि का अन्तर देखते हैं। अज्ञेय की कविता में संवेदना के विन्यास का आधार मूलतः वे व्यक्तिवादी या व्यक्तित्ववादी प्रवृत्तियाँ हैं जो यथार्थ को व्यक्ति के केन्द्र से देखती है और व्यक्ति की विशिष्ट निजता की बात करती है। कुछेक अन्तर के साथ व्यक्ति की विशिष्ट अस्मिता का बोध विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त आदि कवियों में है। यही नहीं बल्कि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और रघुवीर सहाय पर उस दौर में अज्ञेय का घना प्रभाव था और वे उसी ढंग की कविताएं लिख रहे थे, यद्यपि बाद में वे उस प्रभाव से बाहर आए। हम इसे क्रमशः देखें कि नई कविता में संवेदना के स्तर पर इन प्रवृत्तियों का कैसा प्रतिफलन है तथा किस अर्थ में यह संवेदना अपनी पूर्ववर्ती कविता से भिन्न और नई है।

आधुनिक भाव बोध - नई कविता के कवियों ने सचेत रूप से अपनी पूर्ववर्ती कविता की संवेदना को आधुनिक जीवन बोध के समक्ष पिछड़ी हुई बताया। वे अपने समय के यथार्थ की चुनौतियों को देख रहे थे। यह 'यथार्थ' कविता में रूपायित होने के लिए दबाव बना रहा था। कविता की पूर्वपीढ़ी से नई कविता की संवेदना की भिन्नता को व्यक्त करने के लिए हम अज्ञेय की 'कलंगी बाजरे की' जैसी कविता को देख सकते हैं। मुक्तिबोध ने 'आधुनिक भावबोध' को नई कविता की आत्मा कहा है वे लिखते हैं, ''विज्ञान के इस युग में उसकी दृष्टि यथार्थोन्मुख तथा संवेदनशील होती है। वह यथार्थ सम्बन्धों को ग्रहण कर यथार्थबोध द्वारा संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएं करता है।'' (मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र,)

आधुनिक भावबोध के बारे में नई कविता के कवियों को हम अनेक बार यह कहते सुनते हैं कि यह संक्रान्त समय का बोध है। अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव से जुड़े कवि इसे भयानक मूल्य ध्वंस के रूप में अनुभव करते हैं। वे एक ऐसे देश काल का अनुभव करते हैं जिसमें आदर्शों, मूल्यों, मान्यताओं, परम्पराओं और आस्थाओं की चूलें हिला देने वाली पतनशीलता है। 'अंधायुग' में धर्मवीर भारती 'मिथक' में जिस आधुनिक बोध को रूपायित कर प्रस्तुत करते हैं, वह यही है। नई कविता के इन कवियों के सामने आत्यंतिक रूप से विसंगत अनुभव थे। मूल्यविचलन के सन्दर्भों ने उन्हें 'विडम्बनाबोध' दिये। इस प्रकार आधुनिक भावबोध एक प्रकार से उनके लिए 'संकटबोध' के रूप में प्रस्तुत हुआ। अब हम इसके परिप्रेक्ष्य को देखे तो पायेंगे कि यह भारत की आजादी के बाद का समय है। एक तरफ आर्थिक विकास की पूंजीवादी प्रणालियाँ जारी हो रही थीं और इसके चलते शहरों, महानगरों की वे संरचनाएँ उभर रही थीं जिनमें नये सामाजिक सम्बन्ध थे। पूंजीवादी प्रभाव के कारण सामाजिक विच्छिन्नता का समाज उभर रहा था। संवेदनशील मनुष्य पर सबसे बड़ी चोट यह थी कि उसके सामने एक परायेपन से भरी दुनिया थी। मनुष्य और मनुष्य के बीच सम्बन्धों को जटिल बनाने वाली वर्ग स्थितियाँ चतुर्दिक थीं। कई बार कवि ने इस परिदृश्य से निजी पराजय या निष्फलता को अनुभव किया और उसमें अपने समय के मनुष्य की निष्फलता को व्यंजित करना चाहा। नई कविता में अभिव्यक्त रिक्तता, व्यर्थताबोध या परायापन की भूमिका यही है। इस परिदृश्य को समझकर रामदरश मिश्र ने लिखा है कि ''समाज और व्यक्ति आज की अपेक्षा अधिक गहरे अभावों से गुजरा था किन्तु सामाजिक सम्बन्धों की ऐसी विच्छिन्नता, व्यक्तिमन में ऐसी अकुलाहट और मूल्यों के प्रति ऐसी उदासीनता शायद ही कभी आई थी। . . . . वास्तव में यांत्रिक सभ्यता पूरे विश्व को प्रभावित कर रही है, किन्तु वह देशगत परिस्थितियों से कटी हुई कोई सिद्ध सत्ता नही है। . . . . . हम अपने अनुभवों से यह पा रहे हैं कि इस नवस्वतंत्र देश की यात्रा भटक गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के आरम्भिक वर्षों में उभरने वाली स्थितियाँ भविष्य की कुछ सम्भावनाएँ लिए हुए थी। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, मोहभंग होता गया। जिस सामाजिकता और मूल्य का हम सपना देखते आये थे वह कभी उभरा ही नहीं और रहे-सहे मूल्य भी बुरी तरह टूटते गए।'' (आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना और दृष्टि: रामदरश मिश्र) रामदरश मिश्र ने अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों के अधीन होकर देखे जाते हुए इस विसंगत यथार्थबोध की आलोचना भी की है। उन्होंने माना है कि यह व्यापक यथार्थबोध नहीं है बल्कि वैयक्तिक बोध के रूप में देखा गया विच्छिन्न यथार्थ है। यही हम मुक्तिबोध को देखें। वे आधुनिक भाव बोध के लिए सच्चे आधुनिक भावबोध जैसे वाक्य का प्रयोग करते हैं। उनके लिए इसका अर्थ यथार्थ को उसकी समग्रता में जानना है और समग्रता को वे इस 'यथार्थ के परस्पर अन्तःसम्बन्धों को उसकी गहराई समेत' मानते हैं (नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध)। जीवन का वैविध्य इस प्रकार प्रस्तुत हो कि उससे हम कोई निष्कर्ष निकाल सकें। (वही)

स्पष्ट है कि मुक्तिबोध ने 'आधुनिक भावबोध' को उसमें निहित अग्रगामी गतिशीलता के अर्थ में देखा है।

मध्यवर्गीय जीवनानुभवों की प्रधानता - नई कविता के केन्द्र में मध्यवर्गीय जीवन के अनुभव हैं। देखा जाए तो प्रायः ये शहरी या कस्बाई जीवन के अनुभव हैं। शहरी जीवन प्रायः मानवीय सामूहिकता का जीवन नहीं होता। पूंजी का

चरित्र व्यक्तिवादिता को बढ़ावा देना है। इस कारण मनुष्य में सामाजिक सम्बन्धों में स्वार्थ या आत्मकेन्द्रिकता के कारण जड़ता यथास्थितिवादिता ही नहीं कभी-कभी प्रतिगामिता भी आ जाती है। नई कविता मध्य वर्ग की कविता है। स्वाधीनता के लिए संघर्ष में मध्यवर्ग की एक प्रगतिशील भूमिका भी थी। जिसके अन्तर्गत आजादी के अर्थ में साम्राज्यवाद सामंतवाद से मुक्ति का अभिप्राय भी शामिल था। मध्यवर्गीय युवाओं ने गहरी छटपटाहट के साथ इस आजादी से अपनी उम्मीदों को भंग होता अनुभव किया। इस तथ्य को हम यदि वस्तुपरक ढंग से देखेंगे तो पायेंगे कि वे व्यापक जीवन में क्रान्तिकारी बदलाव के लिए जरूरी संघर्ष से कटे हुए व्यक्तियों का मोहभंग था जिनकी इस प्रकार की उम्मीदों में वैयक्तिक आकांक्षाओं में पूरा होने का भाव प्रबल था। कई बार तो इस प्रकार की वैयक्तिक रूझानों वाले कवियों ने निष्फलता या मोहभंग को व्यक्तिवाद के लगभग अतिरेकी छोर पर जाकर देखा और व्यक्त किया, इस सन्दर्भ में यह उद्धरण देखें- 'ओ मेरे अफसर/तुम्हारी एक लाइन ने/मेरे जीवन की कविता को निरर्थक कर दिया/बीच ज़िन्दगी में मैं एकाएक/विधवा हो गया' (तीसरा सप्तक, संपा- अज्ञेय)

हम देख सकते हैं कि इस कविता में आत्मग्रस्तता का ही एक रूप व्यंजित है। नई कविता की प्रवृत्तियों को समझने के क्रम में हमने देखा कि अनुभूति की प्रामाणिकता का आग्रह उसके लिए नियामक तत्त्व की तरह हैं। इस प्रकार स्वाभाविक रूप से कविता निजी अनुभवों पर निर्भर हो जाती है। दूसरी ओर नई कविता के अधिकांश कवि मध्यवर्ग के है। अतः उनकी कविता में मध्यवर्गीय अनुभव प्रमुखता से अभिव्यक्त होते हैं। अन्यत्र हमने जिस विडम्बनाबोध की अभिव्यक्ति नई कविता में लक्षित है उसके मूल में भी अधिकांशतः ये मध्यवर्गीय जीवन के अनुभव ही हैं।

इस प्रकार नई कविता के भीतर व्यक्ति केन्द्रिकता के इस छोर से यथार्थ की वे जटिलताएं प्रकट हुई जिनमें कवि की अपनी टकराहट, संघर्ष और संकट के अनुभव थे। अपनी प्रतिभा के द्वारा कवि ने इन्हें युग संकट के रूप में स्फीत करके प्रस्तुत किया। जिसे यहाँ लघुमानव का बोध कहा गया वस्तुतः वह वैयक्तिक अनुभवों का वह रूप था जिसमें समाज और सामाजिकता के घटित को मिलाकर प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई थी। गिरिजा कुमार माथुर की इस कविता में देखें- हम सब बौने हैं/मन से मस्तिष्क से भी/भावना से, चेतना से भी/बुद्धि से, विवेक से भी/क्योंकि हम जन हैं, साधारण हैं/हम नहीं हैं विशिष्ट/क्योंकि हर ज़माना हमें चाहता है/बौने रहें।//हमको हमेशा ही/घायल भी रहना/सिपाही भी रहना है/दैत्यों के काम निभा/ बौने ही रहना है (जो बंध नहीं सका, गिरिजा कुमार माथुर)

यह परिवेश की जटिलता के दबाव में आये मनुष्य का अनुभव है। यहाँ जीवन एक संकटबोध के रूप में उपस्थित है। हमें नई कविता में सक्रिय यथार्थवादी और आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों के अन्तर को भी समझते हुए चलना है इसलिए हम यह अवश्य देखें कि मुक्तिबोध के यहाँ मध्यवर्गीय मनुष्य का रास्ता संघर्ष का है। वह स्वयं को जनता की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति के लक्ष्य से संयुक्त करता है और इसके लिए अपनी व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों से संघर्ष करता है। शमशेर ने भी भावबोध और सौन्दर्यबोध को व्यापक जनता के जीवन से जुड़कर अर्जित करने का संघर्ष किया है। यह प्रगतिशील कविता का स्वर है। अज्ञेय के यहाँ व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का प्रतिफलन वैसे अवरूद्ध या यथास्थितिवादी रूपों में नहीं है न ही मध्यवर्ग की दिशाहारा होने की नियति को वे अन्तिम मानते हैं। उनके यहाँ भी मनुष्य की सामाजिक सोद्देश्यता का संघर्ष है किन्तु उसकी दिशायें अन्तर्मुखी हैं।

नगरीय बोध का प्रतिफलन - नई कविता के संवेदनशील कवियों ने शहर को एक अमानुषिक तत्व के रूप में अनुभव किया है। उद्योग, प्रौद्योगिकी, मशीनें, कारखानें, सड़कें, अट्टालिकाएं जिस सुविधाजनक रिहाइशी स्थल का स्वरूप पैदा करती है। उसमें मनुष्यों के मानवीय गुण नष्ट कर देने की स्थितियाँ हैं। अज्ञेय ने भी इसे प्रविधि के अन्तर्गत देखते हुए प्रकृति को इसके विरुद्ध रखना चाहा है। वे मनुष्य की मानवीय स्वाभाविकता की रक्षा चाहते हैं। प्रविधि से उभरते

विकास ने मानवीय मूल्यों का क्षरण किया है। नई कविता के कई कवियों को हम प्रकृति, गांव, पहाड़ आदि के प्रति गहरे मोह में पड़ा हुआ देख सकते हैं। छायावाद के प्रकृति प्रेम की प्रवृत्ति से अलग नई कविता में कवि इसे अपने समय की बड़ी चुनौती के रूप में लेते हुए दिखाई देते हैं। उनका कहना है कि पूंजी प्रौद्योगिकी के ऐसे विकास के सम्मुख आधुनिक मनुष्य पलायन का रास्ता चुन कर किसी नीरव एकांत को नहीं चुन सकता। उसे इनके बीच में रह कर मानवीय सम्बन्धों मूल्यों हार्दिकताओं को बचाने का संघर्ष करना पड़ेगा। इसलिए वह शहर केन्द्रित संस्कृति के क्षरण के प्रति आलोचनात्मक है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की इस कविता में आये प्रश्न में हम इस आलोचना की ध्वनि सुन सकते हैं। यही कहीं एक कच्ची सड़क थी/जो मेरे गांव को जाती थी/अब वह कहाँ गयी?/किसने कहा उसे पक्की सड़क में बदल दो/उसकी छाती बेलौस कर दो/स्याह कर दो यह नैसर्गिक छटा/विदेशी तारकोल से (बांस का पुल- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,)

बौद्धिकता - नई कविता के आलोचकों ने रूमानियत के विरोध को नई कविता की प्रवृत्ति माना है। इस सन्दर्भ में हम देखते हैं कि नई कविता की रूमानियत छायावादी कविता से भिन्न अवश्य है किन्तु यह पूरी तरह से रूमानियत या भाववादिता से मुक्त नहीं है। रामविलास शर्मा ने तो इससे प्रतिफलित नई रूमानियत को समझते हुए इसे छायावादोत्तर छायावादी कविता कहा है। वस्तुतः नई कविता संवेदना की बौद्धिक बुनावट की कविता है। नई कविता का कवि 'मोहभंग' आदि स्थितियों को कविता में रूपायित करने के लिए बौद्धिकता का आश्रय लेता है। कई बार हम देखते हैं कि इस बौद्धिकता का सम्बन्ध उसकी यथार्थवादी दृष्टि से न होकर भाववादिता से ही है। विशेष रूप से अपने कहने के ढंग को बौद्धिकता के द्वारा वह नया तेवर देता दिखाई देता है। बौद्धिकता कई बार उसकी रचनात्मक मदद करती हुई भी दिखाई देती है। अनुभवों की सघनता, रचनात्मक तनाव या विडम्बना को वह इसके द्वारा नये रूप में निर्मित कर पाता है और भाषा की प्रचलित रूढ़ियों को तोड़कर अनुभव के नये क्षेत्रों में प्रवेश करता दिखाई देता है। जहाँ कहीं इस बौद्धिकता के साथ यथार्थवादी दृष्टि का संयोग होता है कविता ज्यादा अर्थ समृद्ध होती दिखाई देती है किन्तु ऐसा न होने पर वह शाब्दिक चमत्कार होकर रह जाती है।

रागात्मकता - नई कविता ने जिस मनुष्य को परिभाषित किया है उसे मनुष्य के उस मानवीय गुणों को आधार देने वाले रागात्मक संसार की आकांक्षा है। यह अलग प्रश्न है कि कुछ कवियों को इस आकांक्षा के असंभव होने का बोध हुआ है। तो कुछ कवियों को लगा है कि ऐसे रागात्मक मानवीय संसार की रचना के लिए संघर्ष का दायित्व भी मनुष्य का है और कविता को ऐसे संघर्ष के साथ होना चाहिए। नई कविता के रागात्मक क्षेत्र मानवीय सम्बन्ध हैं, प्रेम और प्रकृति है, और रूढ़ियों दुहरावों से मुक्त होती हुई काव्य भाषा है। अज्ञेय के यहाँ सत्य या यथार्थ 'रागदीप्त' होकर सार्थक होता है। नई कविता के कवियों की आधुनिकता 'रागात्मकता' को भी बौद्धिक संस्पर्श के साथ नया करती है। अज्ञेय का मानना है कि विघटनकारी परिस्थितियों में भी मानवीय अस्मिता को उसकी आंतरिक रागानुभूति ही सुरक्षित रख सकती है। इस प्रकार 'रागात्मकता' का नया अन्तर्गठन नई कविता के लिए जरूरी हो उठता है। यह रागात्मकता अपने समय की बौद्धिक उपलब्धियों से यथा विज्ञान, दर्शन, राजनीति, समाज चिन्तन आदि से निरपेक्ष नहीं है। युगबोध को निर्मित करने वाली इन सरणियों को भी उसे पहचान कर चलना है। साथ ही आदर्शवादी रूमानियत से अलग यथार्थवादी सरोकारों के साथ कविता की अन्तर्वस्तु और शिल्प को निर्मित करने की चुनौती भी है। इस नई रागात्मकता की छवियाँ अनेक हैं। इसे विजयदेव नारायण साही की इस कविता में देखें- मृत्यु के सुनसान दर्पण में प्रतिबिम्बित/केवल यह फुफकारता हुआ/अग्निकमल बच रहता है/यही परम्परा है, यही क्रान्ति है/यही जिजीविषा है/यही आयु है यही नैरन्तर्य है। (समकालीन काव्य यात्रा: नन्द किशोर नवल)

इस प्रकार मुक्तिबोध ने क्रान्तिकारी जनसंघर्षों में जुटे जन को गहरी आत्मीयता और प्यार से सम्बोधित किया। रागात्मकता के ये रूप नई कविता में कई बार कविता में सहज ही पहचाने जा सकें ऐसे सरल रूपों में नहीं हैं। अपनी पक्षधर काव्यचेतना के स्वभाव के अनुरूप कवियों ने इसे कविता की अन्तर्रचना में शामिल किया है।

प्रकृति - नई कविता के कवि अज्ञेय के आरम्भिक काव्य में हम छायावादी कवियों जैसा प्रकृति का सम्मोहन भी देख सकते हैं। आधुनिक भावबोध के साथ बदलती हुई उनकी चेतना प्रयोगवादी कविता के दौर में प्रकृति का इस प्रकार तिरस्कार करती है कि जैसे ऐसा करते हुए वह कहीं न कहीं छिछली ढंग की भावुकता रूढ़िवाद या प्रतीकों के रूढ़ प्रचलित रूपों से मुक्त हो सकती है। इस सन्दर्भ में हम उनकी 'शिशिर की राकानिशा' जैसी कविता को देखें जिसमें वे चांदनी को वंचना कहते हैं। एक अन्य कवि की कविता में चांदनी को खोटे सिक्के की तरह कहा गया है, जिसमें चमक है पर खनक गायब है। इस प्रकार यहाँ पूर्व प्रतिमानों को ही नहीं पूर्व भावबोध को भी छोड़ा जा रहा था। नई कविता तक आते-आते कवि ने प्रकृति को अपनी मुक्त आकांक्षा चिंतन और संघर्ष से जोड़ा। अन्तर्वस्तु के क्षेत्र में अब उसकी मनोरमता मात्र नहीं थी बल्कि उसका वह चेतन विकसित रूप था जो मनुष्य की चेतना को तमाम जटिलताओं के बावजूद संघर्ष में बने रहने की शक्ति दे रहा था। प्रकृति के स्वायत्त अनदेखे रूप भी कविताओं में आये, विशेष रूप से अज्ञेय की कविता में प्रकृति मानवीय स्निग्धता धारण करती दिखाई देती है। देखा जाए तो जिस नगरीकरण, बढ़ती यांत्रिकता, असामंजस्य और विषमता के अनुभव कवि के यथार्थबोध का अंग बने उन्हें स्वभावतः प्रकृति के लिए कोई जगह नहीं छोड़नी थी किन्तु अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता मे ही नहीं रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती में भी प्रकृति से जुड़े बोध ने अपने नयेपन के साथ प्रवेश किया। इन कविताओं में प्रकृति छायावादी प्रकृति से बहुत भिन्न रूपों में है भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में इसे देखें- बूंद टपकी एक नभ से/ये कि जैसे आँख मिलते ही/झरोखा बंद हो ले और नुपुर ध्वनि, झमक कर/जिस तरह द्रुत छंद हो ले/उस तरह बादल सिमट कर/चंद्र पर छाये अचानक/और पानी के हजारों बूंद/तब आये अचानक (दूसरा सप्तक)

भवानी प्रसाद मिश्र की इस कविता में नई आँख से देखी जाती हुई वर्षा है। कई बार नगर की संक्रान्त अमानुषिक स्थितियों के बरक्स प्रकृति को रखकर कवि ने अपने संवेदनात्मक जुड़ावों को व्यक्त किया है। इस छोर से उसकी संवेदना का विस्तार होता है।

अभ्यास प्रश्न: दो

प्रश्न **1:** रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क) 'नदी का द्वीप' या 'दीप अकेला' जैसी अज्ञेय की कविताओं का केन्द्रीय आग्रह ..... है।
ख) नई कविता में कवि के अनुसार यह क्षणबोध ..... का बोध नहीं है।
ग) लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार नये कवियों के समक्ष उपस्थित यथार्थ..... है।

प्रश्न **2:** पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) नई कविता की मूल प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
ख) नई कविता की संवेदना की विशेषताएँ बताइए।

प्रश्न **3:** दो या तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) नगरीय जीवन बोध से क्या तात्पर्य है**?**

.....

.....

ख) 'क्षणबोध' से क्या अभिप्राय है?

.....

.....

ग) 'अस्तित्ववाद' का प्रभाव नई कविता के किन कवियों पर है।

.....

.....

12.6 नई कविता: भाषा और रचनात्मक वैशिष्ट्य

नई कविता की भाषा के सामने नये यथार्थ बोध को अभिव्यक्त करने की चुनौतियाँ थीं। भाषा के सामने एक बड़ा प्रश्न संप्रेषणीयता का होता है। प्रयोगवादी कविता के दौर में अज्ञेय ने भाषा के दुहरे दायित्व की बात कही है। हमने देखा है कि नई भाषा के समक्ष अपनी पूर्वरूढ़ भाषा के प्रभावों से मुक्त होने का संघर्ष तो होता ही है साथ ही पाठकों की अवरूद्ध हुई स्वाद प्रक्रिया को भी बदलने का प्रश्न होता है। नई होती हुई रचनात्मक विधाओं ने नएपन के ऐसे प्रत्येक मोड़ पर इन समस्याओं का सामना किया है। 'हरी घास पर क्षणभर' शीर्षक अपने काव्य संग्रह की 'कलंगी बाजरे की' शीर्षक कविता में अज्ञेय काफी हद तक नई रचनात्मक भाषा की समस्या से टकराते दिखाई देते हैं। एक साथ यह नये अछूते ताजे शब्द पाने की समस्या है, साथ ही नई अन्तर्वस्तु को समग्रता में कहने की समस्या है और अनुभावन की समस्या तो है ही। इसके अतिरिक्त जटिल संक्रान्त स्थितियों के उन दबावों को समझने की समस्या भी है जिनका प्रभाव मनुष्य के संवेदन तंत्र पर पड़ रहा है तथा जिसके कारण प्रचलित रूढ़ चीजों में नये सत्य के बोध और अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं रह गयी है। यह इसी प्रकार हुआ है कि जैसे- 'कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है' (कलंगी बाजरे की, अज्ञेय)।

नई कविता की भाषा - नई कविता के कवियों ने अपने अनुभवों के अनुरूप नई भाषा को अर्जित करने का संघर्ष किया है। भाषा की तलाश में वे जीवन के वृहत्तर क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं।

तद्भव शब्दों की शक्ति - नई कविता की दृष्टि भाषा की पुनर्रचना पर है। यह एक प्रकार की नवोन्मेषी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत कविता के संसार में व्यापक अछोर जीवन के तद्भव शब्द अपनी स्मृति और साहचर्य के साथ दाखिल होते हैं इस प्रकार के शब्द सुसंस्कृति का अंग बनकर स्थापित हुए शब्दों के अगल-बगल आकर बैठ जाते हैं और अपने नयेपन से उन शब्दों को भी नया आलोक प्रदान करते हैं। यहाँ हम इन दो उद्धरणों को देख सकते हैं।

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे/भोर का नभ/शंख से लीपा हुआ चौका/अभी गीला पड़ा है. (कवितांतर: संपा. जगदीश गुप्त)

ये शमशेर की कविता की पंक्तियाँ हैं जो नये बिंब की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं किन्तु यहाँ हम 'लीपा' क्रिया को विशेष रूप से देखें। यह लोक जीवन से सीधे ले ली गई है और यहाँ अपनी गहरी अर्थवत्ता के साथ दिखाई देती है। इसी तरह अज्ञेय की इस कविता को देखें जो जापानी 'हाइकू' छंद में है।

खेत में एक डरोने पर/बैठा है डरा हुआ कौआ/पूस की हवा कटखनी सी बहती है (अरी ओ करुणा प्रभामय, अज्ञेय)

ठण्डी हवा के स्वभाव के लिए 'कटखनी' विशेषता लोक में पर्याप्त प्रचलित है। तद्भवों के ऐसे प्रयोग की प्रवृत्ति नई कविता के कवियों में खूब दिखाई देती है। नई कविता के प्रत्येक कवि के समक्ष यह बात लगभग प्रधानता में निश्चित है कि नये भावबोध के हिसाब से नई काव्यभाषा को रूप देना है। तद्भव शब्दों के सहारे कवि की भाषा की व्यंजकता बढ़ जाती है और अभिव्यक्ति को अपेक्षित सृजनात्मकता प्राप्त होती है। इन शब्दों की निकटता से 'तत्सम' शब्दों में आ गई जड़तायें टूट जाती हैं तथा उनका ओज बढ़ जाता है। इस प्रकार तद्भव शब्द तत्सम के रूढ़ आभिजात्य मूलक प्रभाव को भी मांजकर सहज बना देते हैं। अज्ञेय की कविताओं में तद्भव शब्दों की अर्थ क्षमता सबसे ज्यादा दिखाई देती है, जबकि विजयदेव नारायण साही और कुँअर नारायण में यह सबसे कम है। भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में इसकी ताजगी का अनूठा रंग भरपूर है। रघुवीर सहाय की इस कविता में देखिए: अपनी कथा की व्यथा का अथाह शून्य / मेरे छटंकी भर दुख से लिया करो /तो क्या करोगे कम वह जो दरद है / हाँ थकन हमारी कभी-कभी हर लिया करो।'

इस प्रकार तद्भव के प्रभाव से हम नई कविता के वाक्य रचना में आए नयेपन को भी देख सकते हैं। तद्भव से निर्मित कुछ क्रियाओं को अज्ञेय की कविता में देखें।

1. तुम पर्वत हो अम्रभेदी शिलाखण्डों के गरिष्ठ पुंज/चांपे इस निर्झर को रहो, रहो (कवितांतर: संपा. जगदीशगुप्त,)

2. क्या मैं चीन्हता कोई न दूजी राह (हरी घास पर क्षण कर: अज्ञेय)

3. हम आ जाते हैं अभी लौट कर छिन में (हरी घास पर क्षण कर: अज्ञेय)

मुक्त छंद - नई कविता छंद से मुक्त है किन्तु वाक्यों की गद्य में 'लय' का नया प्रयोग इसे कविता की विधा में बनाए रखता है। इसे हम गद्य में अन्तर्लय का विधान भी कह सकते हैं। गद्य की सहजता और गति को कवि इसी अन्तर्लय के द्वारा रचनात्मकता प्रदान करता है। रघुवीर सहाय जैसे कवि ने तो 'सपाट बयानी' में भी कविता को संभव किया है। इस विधान से कविता में उभरते रचनात्मक तनाव को हम सबसे ज्यादा मुक्तिबोध की कविता में प्रतिफलित होते देखते हैं। इस प्रकार की भाषा अल्पविराम, बिन्दु, डैश, कोष्ठक आदि का भी सृजनात्मक उपयोग करती देखी जा सकती है। नई कविता के सन्दर्भ में खड़ी बोली के गद्य को अधिक तीक्ष्णता, बौद्धिकता और गहरी परिपक्व गत्यात्मकता के द्वारा संवरते देखते हैं। अपने समय के कठिन यथार्थ को कविता की रचनात्मकता में बदलता हुआ नई कविता का कवि एक सक्षम भाषा का निर्माण करता दिखाई देता है।

शब्द संसार - नई कविता की भाषा की शब्दान्वेषिणी प्रवृत्ति को समझने के लिए हम उसके विकसित, व्यापक शब्द संसार को देख सकते हैं। हमें यहाँ बिना किसी दुराव के तद्भव देशज ग्रामज शब्दों के साथ अंग्रेजी और उर्दू भाषा के शब्दों का भी व्यवहार मिल जाएगा।

बिंब विधान - नये बिंबों की दृष्टि से नई कविता अत्यधिक समृद्ध है। इन बिम्बों के द्वारा साकार होता हुआ क्रिया व्यापार या रचनानुभव लगभग अछूता होता है। इनमें आधुनिक संवेदना को संवेद्य बनाने की क्षमता है। वस्तुतः नई

कविता के कवि के सामने भाषा की इसी प्रकार की चुनौतियों का क्षेत्र है। अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही आदि कवियों की काव्य भाषा में नये बिम्बों के प्रयोग से सशक्त होती अर्थछवियों को हम देख सकते हैं। केदारनाथ सिंह को बिंब इतने प्रिय हैं कि उन्हें बिंबों का कवि कहा गया है। इन बिम्बों के कुछ उदाहरण देखें-

जिसकी सुधि आते ही पड़ती

ऐसी ठंडक इन प्राणों में

ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है

मीठी हरियाली खुशबू मंद हवाओं में' (धूप के धान, गिरिजा कुमार माथुर)

श्री माथुर के कविता संग्रह का 'घूप के धान' जैसा शीर्षक ही नये बिम्ब को सूचित करता है। ध्यान देने की बात है कि ये बिम्ब अपनी सहज भाषा की रवानी के कारण छायावादी बिम्बों से अलग है। इन बिम्बों की ऐन्द्रिकता भी उल्लेखनीय है। कठिन जीवनानुभवों से जुड़कर इनकी संश्लिष्टता निखर जाती है। जहाँ कहीं वे छायावादी कविता में प्रचलित उपमाओं को स्पर्श करते हैं। वहाँ भी अपनी संवेदना का अछूतापन रचने का संघर्ष भी करते हैं। इसे हम उपर्युक्त उद्धरण में तो देख सकते हैं, इसके अलावा भी हमें चांदनी, ओस, दीपक, सांझ, सवेरा, नदी, भोर, आदि का बिम्बों में भरपूर उपयोग दिखाई देता है किन्तु कवि का ध्यान नई अर्थ छवियों के प्रति एकाग्र दिखाई देता है। प्रतीकों की दृष्टि से मुक्तिबोध के सौन्दर्यबोध का उल्लेख करना आवश्यक है। वे कविता की सर्वाधिक नई अर्थ संभावनाओं के अन्वेषक कवि हैं। मुक्तिबोध मराठी भाषी थे। सम्भवतः इसलिए संस्कृत भाषा पर उनकी निर्भरता अधिक थी। इसके अतिरिक्त वे प्रगतिशील चेतना के कवि थे। उनका रचनात्मक संघर्ष भाषा को मनुष्य की आर्थिक-सामजिक मुक्ति के संघर्ष से जोड़ने का था। हम देखते हैं कि उन्होंने अनेक प्रचलित बिम्बों और प्रतीकों को अपनी रचना के प्रगतिशील अर्थ से नया किया है। उनके कविता संग्रह के शीर्षक ने ही रोमेंटिक मिजाज़ वालों को पर्याप्त चौंकाया था। यह शीर्षक है 'चांद का मुंह ढेढ़ा' है। अनेक सुन्दरियों के सौन्दर्य के लिए प्रचलित यह 'चाँद' टेढ़े मुंह का हो गया। मुक्तिबोध ने इस प्रयोग के द्वारा पूंजीवादी प्रवृत्तियों में धंसे रोमान को यथार्थवादी ढंग से उद्घाटित करना चाहा। यहाँ वे नया सौन्दर्य शास्त्र निर्मित करते दिखाई देते हैं। उनका सौन्दर्यबोध पूंजीवादी सामंती पतनशील प्रवृत्तियों की आलोचना करता है। इस प्रकार 'ब्रह्मराक्षस' 'अंधेरे में' 'लकड़ी का रावण' आदि सभी उनके नये प्रतीक हैं, दूसरी तरफ अज्ञेय के यहाँ भी 'कलंगी बाजरे की' सांप' 'नदी के द्वीप' 'दीप/अकेला', 'चक्रान्त शिला' 'असाध्य वीणा' आदि सब नये प्रतीक हैं। वस्तुतः प्रतीक वह योजना है जो मूल संवेद्य को सादृश्य आदि के आधार पर पुनर्नियोजित करती है। सांकेतिकता इसका प्रधान गुण है। नई कविता ने प्रतीकों का प्रयोग कर भाषा में अर्थ सामर्थ्य को गहराई से भरा और कलात्मक बनाया है। उनके सामने जटिल संक्रान्त यथार्थ है इसलिए 'चांद' का मुंह यहाँ आकर ढेढ़ा हो जाता है, मछली 'हाँफती हुई मछली' में बदल जाती है, जूते का कील, खाली गुलदस्ते सा सूर्योदय, बांस का पुल, अग्निकमल, आदि कितने ही नये-पुराने प्रतीक नये अर्थ की रचना में जुटे दिखाई देते हैं

नये मिथ - धर्मवीर भारती, कुँअर नारायण, नरेश मेहता, अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि कवियों ने इतिहास पुराण के मिथकीय सन्दर्भों का समकालीन अर्थवत्ता के साथ पुनराविष्कार किया है। कुँअर नारायण ने 'आत्मजयी' में कठोपनिषद् के एक आख्यान में आई प्रश्नाकुलता को नये अर्थ से जोड़कर प्रस्तुत किया है। मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्मराक्षस' का अर्थ वह बुद्धिजीवी है जिसने अपने ज्ञान का सामाजिक उपयोग नहीं किया है और व्यक्तिवादी किस्म का आत्मसम्मोही जीवन बिताया है, इसलिए वह अभिशप्त ब्रह्मराक्षस हैं। नरेश मेहता की लम्बी कविता

'संशय की एक रात' में हम 'राम' का समकालीन मनुष्य की संशयग्रस्तता के अर्थ से जुड़कर पुनरावतार लक्ष्य कर सकते हैं। राम उस आधुनिक मनुष्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अन्तर्द्वन्द्व की जटिलता से गुजर रहा है। अज्ञेय की कविता 'इतिहास की हवा' में महाभारत युग का प्रसंग है। धर्मवीर भारती का 'अंधायुग', 'कनुप्रिया' आदि काव्यकृतियाँ मिथक को आधुनिक युगबोध के साथ जोड़ कर प्रस्तुत करती हैं, इस प्रकार नई कविता मिथकीय आख्यानों का नया प्रयोग करती है।

फैंटेसी - फैंटेसी का सबसे अधिक उपयोग मुक्तिबोध ने किया है। 'असाध्यवीणा' में वीणा बज कर फैंटेसी का ही सृष्टि करती है। फैन्टेसी वस्तुतः एक भाववादी संरचना है, जो यथार्थ की तार्किक सुसंगति को तोड़ती है किन्तु नई कविता के कवियों ने अपनी यथार्थवादी रचना दृष्टि की शक्ति के रूप में इसका सृजनात्मक उपयोग किया है। मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' शीर्षक कविता में फैंन्टेसी की गढ़न से एक नाटकीयता उभरती है जो कविता के प्रभाव को सघन बनाती है।

नये उपमान - नई कविता के कवि ने असंख्य नये उपमान गढ़े हैं। यही नहीं बल्कि भाषा को नया करते हुए वे पुराने उपमानों को भी नये अर्थ में बदल देते हैं। इस प्रकार यहाँ भाषा को वह नया संस्कार मिलता है जो इन कवियों को अभीष्ट है। सुलगती अंगीठी, सिगरेट का धुआँ, चाय की पत्तियों, चाय की प्याली, मेज कुर्सी, चटाई, राख, धूल, दीवारें, खुले मैदान, कमरे, फाइलें, जूते, लाठी जैसे कितने ही उपमान इस कविता संसार में दाखिल होते दिखाई देते हैं।

नया अप्रस्तुत विधान - अप्रस्तुत विधान के कई नए रूप अपनी सृजनात्मकता के साथ नई कविता में मिलते हैं, मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत विधान, मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत विधान, अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत विधान, अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत विधान, रूपक के रूपमें अप्रस्तुत विधान, मानवीकरण आदि के लिए प्रयुक्त अप्रस्तुत विधान इसके अन्तर्गत मिलते हैं। नए प्रतीक, बिंब, रूपक आदि इस विधान की रचना में संलग्न दिखते हैं, एक उदाहरण देखें-

आवारा मछुओं सी शोहदों सी चांदनी/लहरें घायल सांपों सी, मणि खोये सांप सा समय (कवितांतर, संपा.: जगदीश गुप्त)

12.7 नई कविता के कवि

सप्तक श्रृंखला में जो कविता के दौर में भी रचनाशील रहे तथा साठोत्तर दौर की रचनाशीलता में भी जिनकी रचनात्मक सक्रियता कुछेक बदलावों के साथ कायम रही है उनमें से अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुअँर नारायण, केदारनाथ सिंह का नाम लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, गिरजाकुमार माथुर आदि कवि नई कविता के कवि हैं। नई कविता के सन्दर्भ में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन महत्वपूर्ण कवि हैं। प्रयोगवाद के साथ-साथ नई कविता के भी पुरस्कर्ता कवि के रूप में आपका नाम लिया जाता है।

12.7.1 अज्ञेय

अज्ञेय ने आधुनिक संवेदना और कविता के सृजनात्मक सार्थक सम्बन्ध की चिंता की है। नई कविता को नये सौन्दर्यबोध, पारिभाषिक और आधुनिक चिंतन के सन्दर्भ में वे सबसे ज्यादा रेखांकित करते हैं और उसके पक्ष में धारणाएं और विमर्श रचते हुए दिखाई देते हैं। उस दौर में नई कविता पर हुए आक्रमणों ने सबसे ज्यादा अज्ञेय को

ही लक्ष्य किया और उन्होंने उसके सुचिंतित उत्तर देने का प्रयत्न भी किया। अज्ञेय चिंतक कवि हैं। विशिष्ट प्रकार की बौद्धिकता उनका स्वभाव है। पारिवारिक परिवेश शिक्षा और जीवन संघर्ष ने उन्हें आधुनिकता के चिन्तनपूर्ण सृजनात्मक रूप से जोड़ कर विकसित किया है। उनकी काव्य संवेदना का आधार एक सुसंकृत ढंग का आभिजात्य है। सरल ढंग की जनोन्मुखता के पक्षधर कवियों और समीक्षकों ने उनके आभिजात्य पर बड़ा प्रहार किया है।

अज्ञेय की प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं 'भग्नदूत', 'चिन्ता', 'इत्यलम्', 'हरीघास पर क्षणभर', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, 'बावरा अहेरी,' 'अरीओ करुणा प्रभामय, 'आँगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'सागर मुद्रा', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ ', 'महावृक्ष के नीचे', 'ऐसा कोई घर आपने देखा है'। 'तार सप्तक', 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' उनकी संपादित कृतियाँ हैं। शेखर:एक जीवनी के दो खण्ड, 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं तथा 'उत्तर प्रियदर्शी' शीर्षक से उन्होंने नाटक भी लिखा है। अज्ञेय की गद्य कृतियाँ भी अनेक हैं जिनमें कहीं संस्मरण है, यात्रा वृतान्त है अथवा साहित्यिक चिन्तन है। कुछ प्रमुख गद्यकृतियाँ इस प्रकार हैं- 'आलवाल', 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'एक बूंद सहसा उछली,' 'अरे यायावर रहेगा याद' आदि।

12.7.2 मुक्तिबोध

मुक्तिबोध की कविताएँ 'तारसप्तक' में संग्रहीत थीं। कवि का विकास मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़कर हुआ है। यही कारण है कि उनकी कविता में क्रान्तिकारी जनोन्मुखता का रूप दिखाई देता हैं। 'जनमन की उष्मा' उनकी कविताओं का प्राणतत्त्व है। मुक्तिबोध 'लम्बी कविताओं' के कवि हैं। कविता को उन्होंने क्रान्तिकारी जनसंघर्ष में भागीदारी की गहरी मानवीय उम्मीद के साथ देखा और उसे निरन्तर चलने वाली कालयात्री कहा है। उनकी कविताओं में शोषित उत्पीड़ित जन के प्रति बहुत गहरा प्यार दिखाई देता है। वे जन की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति का स्वप्न देखते हैं। तथा ऐसी शिक्षा-दीक्षा की आलोचना करते हैं जो मनुष्य को जनता की मुक्ति के लक्ष्य से काट कर सुविधाभोगी, परजीवी और पतनोन्मुख बनाती है। रामविलास शर्मा ने मुक्तिबोध पर सार्त्र, कामू जैसे अस्तित्ववादी चिन्तकों का प्रभाव माना था तथा उनकी कविता में अस्तित्ववादी प्रकार के अर्थ की छायाएं देखी थीं। जबकि नामवर सिंह जैसे आलोचक ने मुक्तिबोध की कविता की क्रान्तिकारी चेतना के संघर्ष को रेखांकित किया और उन्हें कबीर तथा निराला की परम्परा का कवि माना है। वस्तुतः मुक्तिबोध की रचनाशीलता के केन्द्र में मध्यवर्ग के व्यक्तित्वांतरण की चुनौतियाँ रही है। हिन्दी कविता के इतिहास में मध्यवर्ग की अवसरवादी संरचनाओं की जटिलता में प्रवेश करने वाले वे पहले कवि हैं। मध्यवर्गीय व्यक्तित्व के भीतर पड़ी सामंती पूंजीवादी प्रवृत्तियों के दबाव को पुर्जा-पुर्जा खोलकर देखते हैं और इसी के साथ बाह्य परिवेश के विघटन, मूल्यहीनता और पतन को भी समूचा पहचानते हैं। मुक्तिबोध की कविता में छठें-सातवें दशक के भारत के आर्थिक-राजनैतिक अन्तर्विरोधों के असली रूप दिखाई देते हैं।

मुक्तिबोध के यहाँ हमें 'संवेदनात्मक ज्ञान' और 'ज्ञानात्मक संवेदना' जैसे प्रत्यय मिलते हैं। इसे उन्होंने व्यक्ति की रचना प्रक्रिया के सन्दर्भ में विश्लेषित भी किया है। वस्तुतः यह अनुभव के रचनात्मक अनुभव में बदलने की ऐसी प्रक्रिया है जिसे मार्क्सवादी विचारधारा के द्वारा प्रगतिशील आशय की चमक मिल जाती है। 'चांद का मुंह ढेढ़ा है' शीर्षक उनकी काव्यकृति को अत्यधिक प्रसिद्धि मिली है। साठोत्तर दौर के कवियों ने अपने लिए मुक्तिबोध को सबसे ज्यादा संभावनापूर्ण रचनात्मक विरासत माना है। मार्क्सवादी दृष्टि का सृजनात्मक सौन्दर्य के साथ सबसे प्रभावी रचनात्मक तालमेल मुक्तिबोध की कविता में ही दिखाई देता है। विचारधारा को वे अपना मूल्यवान अर्जित मानते हैं। और मार्क्सवाद को विश्वदृष्टि कहते हैं। पूंजीवादी विकास द्वारा पैदा की गई विषमताओं को वे मनुष्य के लिए सबसे ज्यादा घातक मानते हैं। पूंजीवाद की विशाल संरचना के प्रत्येक पुर्जे को जिस प्रकार मुक्तिबोध ने पहचाना

है उस प्रकार शायद ही किसी ने पहचाना हो। क्रान्ति में उन्होंने ऐसे पूंजीवाद को चुनौती देने वाली शक्ति देखी। इसलिए वे मध्यवर्ग से जनता का सही नेतृत्व बनने की मांग करते हैं। इसीलिए उन्होंने मध्यवर्ग के व्यक्तित्वांतरण की बात कही है क्योंकि जनता से एकमएक हुए बिना केवल सहानुभूति या निष्क्रिय करुणा के द्वारा समाज के क्रान्तिकारी बदलाव की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। अपनी कल्पना में जनता को क्रान्ति के लिए एकजुट होते देखते हैं और लिखते हैं कि जिन्दगी बुरादा तो बारुद तो बनेगी ही' (मुक्तिबोध)

12.7.3 शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह की कविताएं दूसरा सप्तक में संकलित हैं। इन्हें नई कविता की प्रगतिशील धारा से सम्बद्ध कवि माना जाता है। शमशेर ने स्वयं को मार्क्सवाद से प्रभावित माना है। वे अपनी रचनादृष्टि का मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़कर दृष्टिवान होना स्वीकार करते हैं। 'बात बोलेगी', 'कुछ कविताएं', 'कुछ और कविताएं' 'चुका भी हूँ नहीं मैं', 'इतने पास अपने' आदि उनके काव्य संग्रह हैं। शमशेर में गहरी संवेदना और तीव्र प्रतिभा थी। उर्दू और अंग्रेजी भाषा के साहित्य को उन्होंने डूब कर पढ़ा और उसमें निहित रचनात्मक अर्थ की गहराइयों से प्रभावित हुए। शमशेर साहित्य के बड़े तन्मय पाठक थे। उनकी चेतना को साहित्य और संस्कृति की गहरी निकटता मिली। उनके साहित्यिक संस्कार तुलसी, मतिराम, निराला और मैथिलीशरण गुप्त को पढ़ने के साथ-साथ ग़ालिब, हाली, टेनिसन, एज़रा पाउंड आदि को पढ़कर विकसित हुए। चौथे दशक के आस-पास प्रगतिशील लेखकों के सम्पर्क में आये और मार्क्सवादी दर्शन में निहित मनुष्य की मुक्ति की आकांक्षा का महत्व पहचाना। शमशेर कविता में एक चितेरे की सी भूमिका चुनते हैं। उन्हें लगता है कि शब्द और चित्रकारी में बड़ा घना आदान-प्रदान का सम्बन्ध है। शमशेर की कविता में उनके ज्ञान अनुभव और विश्वासों के रंग खुल पड़े हैं। नई कविता के इतिहास के सर्वाधिक ऐन्द्रिक कवि शमशेर ही हैं। शमशेर के लिए यथार्थ का रचनात्मक रूपान्तरण प्रमुख है। वे उसके भीतर रूप, रस, गन्ध की सुन्दरता खोजते हैं। शमशेर की काव्य संवेदना में गहरी आवेगात्मकता का स्पन्दन मिलता है। अज्ञेय ने शमशेर को कवियों का कवि कहा है। शमशेर की कविता में बारीक संश्लिष्टता मिलती है। उनकी कविताएं सतह पर अर्थ खोलने वाली कविताएं नहीं हैं। छायावादी सौन्दर्यप्रियता को शमशेर ने अपनी कविता में नया किया है। उनकी कविता में अभिव्यक्त वस्तुसंसार छायावादी विषयों से बहुत मिलता जुलता है, विशेषरूप से प्रकृति की नाना छवियाँ, किन्तु हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि वे भाव बोध की नवता के द्वारा नये रूप में आविष्कृत छवियाँ हैं।

यहाँ से अगर हम देखें तो प्रेम सौन्दर्य और उन्मुक्त उल्लास के निकट का जो एक और भाव शमशेर की कविता में मिलता है वह करुणा का है। शमशेर का काव्य लोक गहरी मानवीय संवेदनाओं के जीवित लोक की तरह है जिसमें स्पन्दन व्यापता है। उनकी काव्य पंक्तियाँ अर्थ की गतिशीलता में स्फुरित होती हैं। वहाँ एक अद्भुत सकर्मकता दिखाई देती है जिसमें सहज ही ठहरावों को तोड़ देने का उद्यम है। यहाँ तक कि उदासियों के सघन चित्रण में भी गति के ये रूप अंकित हैं। संवेदना के इन रूपों में कवि में आत्मविस्तार का उदात्त व्यक्त हुआ है। मनुष्य की गति, संघर्ष, प्रेम और असफलताएं शमशेर को आकृष्ट करती हैं। मजदूर किसान और वंचित भारतीय जन की मुक्ति आकांक्षा उनकी कविता में व्यक्त हुई है। शमशेर ने जनता के लिए आर्थिक-सामाजिक समानता का मानवीय भविष्य चाहा है। मेहनतकश जन का शोषण करने वाली व्यवस्था और संस्कृति की आलोचना भी शमशेर की कविता में दिखाई देती है। किन्तु उनके सौन्दर्यबोधीय मूल्य वहाँ उस मानवीय आवेग को धारण करते हैं जिनसे उस भाव का प्रभाव विशिष्ट हो उठता है। शमशेर कविता की संश्लिष्ट मितव्ययी संरचना के कवि हैं। उनकी कविताओं में अर्थ समृद्धि आंतरिक स्तर पर दिखाई देती है।

12.7.4 धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती की कविताएं भी दूसरा सप्तक में संग्रहीत हैं। भारती नई कविता को गति देने वाली संस्था 'परिमल' के संयोजकों में से एक थे, इलाहाबाद के साहित्यिक रचनात्मक परिदृश्य ने धर्मवीर भारती की रचनात्मक चेतना को संवारा है। भारती सन् **60** में धर्मयुग के यशस्वी सम्पादक हुए। उनके सम्पादन काल में इस पत्रिका ने स्तरीय साहित्यिकता को भरपूर योगदान दिया। 'अंधायुग' 'कनुप्रिया' जैसे नाटकों से उनके कवि को अत्यधिक प्रतिष्ठा मिली है। 'अंधायुग' में धर्मवीर भारती ने महाभारत युद्ध के महाविध्वंस को समकालीन संकट से जोड़कर नई अर्थछवि प्रदान की है। इस प्रकार नई कविता में अभिव्यक्त संकटबोध का सर्वाधिक तनावपूर्ण और सृजनात्मक रूप 'अंधायुग' में व्यक्त हुआ। इस कृति में भारती की प्रतिभा का उत्कर्ष दिखाई देता है। 'अंधायुग' में भारती प्रबन्धात्मकता का वह नया प्रयोग करते हैं जिसका परम्परा से बड़ा ही सृजनात्मक सम्बन्ध है। इस काव्यनाटक के नियोजन में उन्होंने नाट्य तत्वों में भी भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्यकला के तत्वों का बड़ा ही सार्थक सम्मिलन कराया है। भारती ने भारतीय मिथकों का समकालीन अर्थ की विराटता और प्रभाव को निर्मित करने के लिए एक प्रकार से अन्वेषण किया है। भारती की कविताओं में गहरी रागात्मकता और ऐन्द्रिकता परिलक्षित होती है। अपने समय के इतिहास के प्रश्नों से वे बौद्धिकता और रागात्मकता के सृजनात्मक मेल के द्वारा टकराते हैं। मनुष्य के अधीन लघु या क्षुद्र होने की स्थिति का नियति बन जाना भारती को स्वीकार नहीं है। भारती ने 'मिथक' द्वारा निर्दिष्ट नायकों के प्रभाव का अतिक्रमण करते हुए युगसंकट की जटिलता को व्यक्त करने वाले नायकों और प्रतिनायकों का निर्माण किया है।

'सप्तक' में संग्रहीत कविताओं के अतिरिक्त 'ठंडा लोहा' 'सात गीत वर्ष' आदि भारती के काव्य संग्रह हैं जिनकी कविताएं गहरी जिम्मेदारियों के साथ अपने समय के विसंगत स्वरूप से टकराती हैं। भारती की काव्य संवेदना में अभिजात्य और लोक का घुला मिला रूप दिखाई देता है। गहरी आवेगात्मक रूमानियत से इनके शिल्प का अलग प्रभाव निर्मित होता है। भाषा में भी लोक का प्रभाव उसकी व्यंजकता को रचता हुआ दिखाई देता है। धर्मवीर भारती के काव्यानुभव के केन्द्र में भारतीय मध्यवर्ग का संघर्ष और आकांक्षा है।

12.7.5 विजयदेव नारायण साही

विजयदेव नारायण साही 'तीसरा सप्तक' के कवि हैं। नई कविता के कवियों में अज्ञेय और मुक्तिबोध के बाद विजयदेव नारायण साही ही ऐसे कवि हैं जो कविता को चिंतन के निष्कर्षों से जोड़ते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत के आर्थिक-सामाजिक संकट का तीव्रतर बोध साही की कविता को रागात्मक बौद्धिक भूमिका के लिए प्रेरित करता है। वे लोहिया, जय प्रकाश और आचार्य नरेन्द्र देव के समाजवादी विचारों के निकट रहे हैं तथा उनके चिंतन का प्रभाव भी उन पर पड़ा है। 'मछलीघर' और 'साखी' उनकी कविताओं के संग्रह हैं। साही की रचनादृष्टि यथार्थबोध की जटिलता को समझते हुए परिपक्व हुई है। कठिन जीवन की चुनौतियों को साही ने सरल समाधान में नहीं लेना चाहा है। अपने समय के मनुष्य को वे संकट को पहचान कर उससे संघर्ष की क्षमता में देखना चाहते हैं, इसलिए संकट के दृश्य अदृश्य तंतुओं को कविता में उद्घाटित करते दिखाई देते हैं। विसंगति और विडम्बना से भरे समय में मनुष्य की तैयारी उसका विवेक है और निर्वैयक्तिकता भी, ऐसा साही का मानना है। साही एक प्रतिभाशाली कवि हैं। उनकी कविताएं संवेदना को चिंतन से जोड़ती दिखाई देती है। जैसे संघर्ष, जिजीविषा, सृजन, सौन्दर्य, परम्परा, आस्था, सार्थकता, विषाद और पूर्णता आदि को साही ने एक चिन्तक कवि के रूप में देखा है। 'आत्मोन्मुखता' का एक अलग रूप साही की कविताओं में प्रतिफलित होता है। उनके वैचारिक आदर्श उन्हें अपने अनुभवों और विश्वासों को व्यापक समाज के पक्ष में परखने के लिए प्रेरित करते हैं। साही की कविताएं मनुष्य के अन्तहीन संघर्ष को देखती है।

विजयदेव नारायण साही की भाषा में बौद्धिकता ज्यादा है। उनमें रूपक बिम्ब और प्रतीक बहुधा अमूर्तन की ओर चले जाते हैं। साही भाषा के द्वारा काव्यानुभव का एक नाटकीय तनाव भरा रूप निर्मित करना चाहते हैं। मुक्तिबोध की तरह साही ने भी अधिकांश लम्बी कविताएं लिखीं हैं, जिनमें नाटकीय एकालाप और चिंतन है। 'अलविदा' 'एक आत्मीय बातचीत की याद' 'सन्दर्भहीन बारिश', 'घाटी का आखिरी आदमी' आदि उनकी चर्चित कविताएं हैं।

इन कवियों के अलावा भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, केदार नाथ सिंह आदि नई कविता के महत्वपूर्ण कवि हैं। इन कवियों का भी अपना भिन्न रचनात्मक स्वर है। अन्तर्वस्तु के स्तर पर भी ये अलग-अलग काव्य संसार के रचयिता हैं।

अभ्यास प्रश्न: तीन

प्रश्न **1:** सही विकल्प बताइए (सही /गलत चिह्नित करें)

क) 'प्रात नभ था बहुत गोला शंख जैसे' काव्य पंक्ति किस कवि की है**?**

शमशेर बहादुर सिंह

गजानन माधव मुक्तिबोध

गिरिजा कुमार माथुर

ख) 'कवितांतर' के संपादक है:

अज्ञेय

जगदीश गुप्त

गोविन्द रजनीश

ग) 'ब्रम्हराक्षस' शीर्षक कविता के कवि हैं

कुंवर नारायण

नरेश मेहता

गजानन माधव मुक्तिबोध

प्रश्न **2:** तीन या चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) नई कविता के प्रमुख कवियों का नाम बताइए

.....

.....

.....

ख) 'फैंटेसी' से क्या अभिप्राय है।

.....

.....

.....

ग) नई कविता द्वारा खोजे गए नये उपमानों के विषय में बताइए।

.....

.....

12.8 सारांश

नई कविता में नये भावबोध की केन्द्रीयता है तथा इसमें नया सौन्दर्यबोध प्रतिफलित होता दिखाई देता है। आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद के आगे की स्थिति माना है और इसमें वे संवेदना और शिल्प की दृष्टि से विकास लक्षित करते हैं। सन् **1952** में रेडियो से प्रसारित अपने व्याख्यान में अज्ञेय ने 'नई कविता' सम्बन्धी कई मान्यताओं को स्पष्ट किया था। नई कविता के विकास के सन्दर्भ में अज्ञेय द्वारा संपादित सप्तकों का महत्वपूर्ण योगदान है, इसके अतिरिक्त सन् **1946** से प्रकाशित 'ज्ञानोदय', सन् **1947** से प्रकाशित 'प्रतीक' नामक पत्रिकाओं के द्वारा नई कविता का स्वरूप सामने आने लगा था। सन् **1949** में प्रकाशित 'कल्पना' के द्वारा नई कविता के साथ-साथ 'नई कहानी', 'नई आलोचना' आदि का स्वरूप भी सामने आने लगा। सन् **1953** में 'नये पत्ते' पत्रिका सामने आई और सन् **1955** में जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी के सहयोग से 'नई कविता' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसके अतिरिक्त 'निकष', 'कविता' आदि ने नई कविता को आधार और प्रचलन दिया। अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही, जगदीश गुप्त, गिरिजा कुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, आदि नई कविता के कवि थे। नई कविता में व्यक्तिवादी व वस्तुवादी रूझानों की कविताएं मिलती हैं। कार्ल मार्क्स और सार्त्र, काल यास्पर्स जैसे दार्शनिकों के साथ-साथ गांधी, लोहिया, जयप्रकाश, आचार्य, नरेन्द्र देव की वैचारिकी ने भी नई कविता के कवियों को प्रभावित किया है। नई कविता की संवेदना का आधार आधुनिक भावबोध है। ये कविताएं जीवन के व्यापक क्षेत्रों से अर्थग्रहण करना चाहती हैं। वैयक्तिक रूझानों वाली आधुनिकतावादी कविता की संवेदना के केन्द्र में 'संकट बोध' है तो मार्क्सवादी प्रभाववाली यथार्थवादी कविता के भावबोध का सम्बन्ध प्रतिरोध और संघर्ष की चेतना से है। इसके अतिरिक्त बौद्धिकता, क्षणबोध, अनुभूति की प्रामाणिकता आदि इसके भावबोध की विशेषताएं हैं। भाषा में नया बौद्धिक संस्पर्श दिखाई देता है। नाटकीयता और अप्रस्तुत विधान आदि भी यहाँ अपनी नवीनता में दिखाई देते हैं।

12.9 शब्दावली

1. संप्रेषणीयता: श्रोता सहृदय पाठक या भावक द्वारा अर्थ ग्रहण संप्रेषण है।

2. अनुभूति की प्रमाणिकता: विश्वसनीय आंतरिक अनुरूप।

3. विडम्बनाबोध: आधुनिक जीवन की जटिलता के कारण अनुभव में निहित वैषम्य को सूचित करने वाला पद है।

4. अमानुषीकरण: मानवीय संवेदनशीलता का अभाव इसे पूंजीवादी उपभोक्ता संस्कृति में मौजूद व्यक्तिवादिता के अतिरेक में देखा गया है।

5. लघुमानव: व्यापक यथार्थ की विकटता के निकट मध्यवर्गीय मनुष्य का निजताबोध जिसमें वह अपने व्यक्तित्व की सीमाओं से अनजान नहीं किन्तु उससे लज्जित भी नहीं।

6. मोहभंग: सन् **1947** में मिली स्वतंत्रता के प्रति उम्मीद के टूटने का अनुभव।

7. अस्तित्ववाद: विचारधारा नहीं अपितु दर्शन है जिसमें मनुष्य की अस्मिता की चिंता कार्ल यास्पर्स, हेडेगर, सार्त्र, कीकेगार्द आदि अस्तित्ववादी दार्शनिक हैं। इस दर्शन का आविर्भाव विश्वयुद्धोत्तर योरोप में हुआ। यह मृत्यु, अजनबीपन, सामाजिक अलगाव आदि परिणतियों पर विचार करता है।

8. मार्क्सवाद: सर्वहारा जन की आर्थिक सामाजिक मुक्ति का दर्शन है। मार्क्सवाद समाज का आधार पूंजी को मानता है, कला संस्कृति, दर्शन, राजनीति, कानून, उसकी अधिरचना है। आधार और अधिरचना का सम्बन्ध द्वंद्वात्मक होता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के द्वारा वह सामाजिक विकास की व्याख्या करता है। इसका बल पूँजीवादी समाज व्यवस्था की आलोचना है तथा साम्यवादी समाज अर्थात आर्थिक-सामाजिक समानता का मानवीय समाज इसका स्वप्न है जिसे वह क्रान्तिकारी जन एकता और संघर्ष के द्वारा संभव होता देखता है।

9. व्यक्ति स्वातंत्र्य: व्यक्ति की आत्मपर्याप्त निजता का बोध।

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न: एक

प्रश्न **1:** रिक्त स्थानों की पूर्ति

क) 'तारसप्तक' का प्रकाशन वर्ष **1943** है।
ख) प्रयोगवाद का प्रवर्तक अज्ञेय को माना जाता है।
ग) नई कविता और अस्तित्ववाद शीर्षक' किताब के लेखक हैं डॉ. रामविलास शर्मा

प्रश्न **2:** दो या तीन पंक्तियों में उत्तर

क) छायावाद से छायावादोत्तर कविता को अलगानेवाली काव्य प्रवृत्ति कविता की यथार्थदृष्टि है। छायावादोत्तर कविता ने अपने समय के यथार्थ को वस्तुनिष्ठ ढंग से देखने और व्यक्त करने का संघर्ष किया।
ख) प्रयोग को दोहरा साधन अज्ञेय ने कहा है। उनके अनुसार कविता की रचना प्रक्रिया में इस प्रयोग का दायित्व नई वास्तविकता को उसकी जटिलता में प्रवेश कर समझना है तथा उस वास्तविकता की अभिव्यक्ति के लिए नई अर्थभंगिमा युक्त भाषा का अन्वेषण है।
ग) दूसरा सप्तक के कवि हैं हरिनारायण व्यास, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, शकुंत माथुर, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती तथा 'तीसरा सप्तक' के कवि हैं प्रयाग नारायण त्रिपाठी,

कुँवर नारायण, कीर्ति चौधरी, केदारनाथ सिंह, मदन वात्स्यायन; विजय देव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

प्रश्न **3.** कुछ सही कुछ गलत कथन-

क) प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ था - सही कथन
ख) 'तारसप्तक' में संकलित कवियों में हरिनारायण व्यास हैं - गलत कथन
ग) प्रगतिवादी कविता का सम्बन्ध किसान मजदूर जनता के मुक्ति संघर्ष से है - सही कथन

प्रश्न **4:** पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर-

क) 'दूसरा सप्तक' सन् **1951** में प्रकाशित हुआ। प्रायः इसके साथ ही नई कविता का आरम्भ माना जाता है। विशेष रूप से सप्तकों के सम्पादक अज्ञेय की भूमिका इस संदर्भ में उल्लेखनीय मानी गई है। सप्तकों की भूमिका में अज्ञेय ने निरन्तर बदले हुए काव्यबोध की अभिव्यक्ति की चुनौतियों को रेखांकित किया। 'सप्तकों में आई कविताओं ने नई संवेदना और भाषा की बानगी भी प्रस्तुत की।
ख) 'प्रयोग' अज्ञेय के लिए एक सृजनात्मक मूल्य है जिसे वे काव्यवस्तु के साक्षात्कार और अभिव्यक्ति तक सक्रिय मानते हैं। 'अन्वेषण' इस प्रयोग का बुनियादी आधार है। कविता को रचनात्मक नवोन्मेषता प्रदान करने के लिए यह नये भावों की खोज से लेकर नई भाषिक भंगिमा की खोज तक अग्रसर है। कवि के सामने सम्प्रेषण की समस्या भी है। अतः इस अन्वेषण का सम्बन्ध प्रयोगधर्मी रचना प्रक्रिया से है।

अभ्यास प्रश्न: दो

प्र.**1:** रिक्त स्थानों की पूर्ति-

क) 'नदी के द्वीप' या 'दीप अकेला' जैसी अज्ञेय की कविताओं का केन्द्रीय आग्रह व्यक्ति की स्वातंत्र्य चेतना है।
ख) नई कविता के कवि के अनुसार क्षण बोध क्षणिकता का बोध नहीं है।
ग) लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार नये कवियों के समक्ष उपस्थित यथार्थ विषम और तिक्त है।

प्र. **2:** पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर:

क) नई कविता की मूल प्रवृत्तियाँ हैं- **1.** व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना **2.** अनुभूति की प्रामाणिकता **3.** क्षणबोध **4.** यथार्थोन्मुखता। अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही और मुक्तिबोध की कविताओं में ये प्रवृत्तियाँ प्रायः उनकी वैचारिक प्राथमिकताओं के कारण भिन्न रूपों में प्रतिफलित होती हैं। मोटे तौर पर हम इन्हें आधुनिकतावादी और मार्क्सवादी प्रभावों के अनुरूप घटित होते देखते हैं।
ख) नई कविता की संवेदना का फलक प्रायः मध्यवर्गीय जीवनानुभवों के प्रसार और गहराई से रूप लेता दिखाई देता है। प्रायः इसे आधुनिक भावबोध जो संकटबोध के साथ संघर्ष चेतना के अर्थ में हैं, उसके प्रतिफलन के रूप में देखते हैं। इसके अतिरिक्त रागात्मकता और प्रकृति के बदले हुए रूपों का नगरीयबोध के सापेक्ष साक्षात्कार यहाँ सम्मिलित है।

प्र.**3.** दो या तीन पंक्तियों में उत्तर:

क) नगरीय महानगरीय मनुष्य का भावबोध उसके सामाजिक सम्बन्ध, उसकी चेतना और मर्म को प्रभावित करने वाले दबाव और उनसे बनती जटिलताओं का साक्षात्कार नगरीय जीवनबोध में निहित है।

ख) क्षणबोध: यह एक सृजनात्मक आभा से भरा देशकाल के अलावा काल की निरन्तरता से सम्बद्ध रागात्मक क्षण के रूप में हैं। अज्ञेय ने इसकी अद्वितीयता पर बल दिया है।

ग) अस्तित्ववाद का प्रभाव अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकांत वर्मा, कैलाश बाजपेई आदि कवियों पर देखा गया है। माना गया है कि अस्तित्ववाद के प्रभाव के कारण नई कविता के कवियों में मोहभंग, अजनबीपन, आत्मविघटन आदि घटित हुए।

अभ्यास प्रश्न: तीन

प्रश्न **1:** सही विकल्प

क) प्रात नभ था बहुत गीला शंख 'जैसे' पंक्ति शमशेर बहादुर सिंह की है।

ख) 'कवितांतर' के सम्पादक जगदीश गुप्त हैं।

ग) 'ब्रह्मराक्षस' शीर्षक कविता के कवि हैं गजनान माधव मुक्ति बोध।

प्रश्न. **2.** तीन या चार पंक्तियों में उत्तर।

क) नई कविता के कवि हैं अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह, जगदीश गुप्त, गिरिजाकुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुँअर नारायण, नरेश मेहता आदि।

ख) 'फैंटेसी' को अतियथार्थवादी कला कहा जाता है। इसका सम्बन्ध स्वप्न या अवचेतनमन के असम्बद्ध बिंब विधान से भी माना गया है। इसकी प्रक्रिया में बिंब प्रतीक मिथक आदि स्वप्न के तर्क से नियोजित होते हैं अर्थात् कार्य कारण पद्धति या सुसम्बद्धता को परे करते हुए निर्मित हो सकते हैं।

ग) नई कविता द्वारा अनेक नये उपमान खोजे गये हैं। आधुनिक भाव के अनुरूप बाजरे की कलंगी, मुलम्मा लगा बेसन, चाय की प्याली, सिगरेट का धुंआ, मेज, कुर्सी, चटाई, फाइलें, जूते वगैरह।

12.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

2. बाजपेई, नन्द दुलारे, हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी।

3. कुंतल, रमेश 'मेघ', क्योंकि समय एक शब्द है।

4. मिश्र, रामदरश, आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना और दृष्टि।

5. डॉ. रघुवंश, साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य।

6. राय, डॉ. रामबचन, नयी कविता: उद्भव और विकास।

7. शुक्ल, डॉ. ललित, नया काव्य: नये मूल्य।

8. चतुर्वेदी**,** रामस्वरूप**,** नई कविताएँ: एक साक्ष्य।

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. नई कविता से आप क्या समझते हैं ? सविस्तार स्पष्ट कीजिए . नई कविता कि पृष्ठभूमि एवं प्रमुख प्रवृतियों को भी स्पष्ट कीजिए .

2. नई कविता पर एक विस्तृत निबंध लिखिए तथा नई कविता के दो प्रमुख कवियों का समीक्षात्मक परिचय दीजिए .